ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्त:सम्बन्ध

दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक
डॉ. उमाशंकर
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

शोधार्थी
प्रवीण ममगाईं

परामर्शदाता
डॉ. राजीव रंजन
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

परामर्शदाता
डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज
पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक

संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

2022

ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तःसम्बन्ध

दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक
डॉ. उमाशंकर
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

शोधार्थी
प्रवीण ममगाई

परामर्शदाता
डॉ. राजीव रंजन
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

परामर्शदाता
डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज
पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक

संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

2022

विज्ञप्ति

"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तःसम्बन्ध" शीर्षक प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध डॉ० उमाशंकर, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के वैदुष्यपूर्ण निर्दर्शन में लिखा गया है। शोधकर्ता यह घोषित करता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उसका मौलिक कार्य है तथा शोध कार्य के रूप में इसका प्रस्तुतीकरण एवं प्रकाशन पूर्णतः या अंशतः कही नही लिखा गया है।

शोध- निर्देशक

डॉ० उमाशंकर
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

शोधकर्ता

प्रवीण ममगाई

विभागाध्यक्ष

वरिष्ठ आचार्य प्रो० रमेश चन्द्र भारद्वाज
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली - ११०००७

प्रो. रमेश चंद्र भारद्वाज
Prof. RAMESH CHANDRA BHARADWAJ
वरिष्ठ प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
Senior Professor and Head
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
Department of Sanskrit, University of Delhi

Department of Sanskrit
University of Delhi
Delhi-110007, India

Date: 27/01/2022

Certificate of Originality

The research work embodied in this thesis titled **"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्त:सम्बन्ध"** has been carried out by me at the Department of Sanskrit, University of Delhi, Delhi, India. The manuscript has been subjected plagiarism check by Ouriginal (Urkund) software. The work submitted for consideration of award of Ph.D. is original.

Praveen Mamgai
Name & Signature of the Candidate

Student Approval Form

Name of the Author	PRAVEEN MAMGAI
Department	SANSKRIT
Degree	DOCTOR OF PHILOSOPHY
University	UNIVERSITY OF DELHI
Guide	DR. UMA SHANKAR
Thesis Title	ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तःसम्बन्ध
Year of Award	TO BE AWARDED

Agreement

1. I hereby certify that, if appropriate, I have obtained and attached hereto a written permission/statement from the owner(s) of each third party copyrighted matter to be included in my thesis/dissertation, allowing distribution as specified below.

2. I hereby grant to the university and its agents the non-exclusive license to archive and make accessible, under the conditions specified below, my thesis/dissertation, in whole or in part in all forms of media, now or hereafter known. I retain all other ownership rights to the copyright of the thesis/dissertation. I also retain the right to use in future works (such as articles or books) all or part of this thesis, dissertation or project report.

Conditions:

1. Release the entire work for access worldwide	
2. Release the entire work for 'My University' only for 1 Year 2 Year 3 Year and after this time release the work for access worldwide	

3. Releasing the following parts of the work (eg: because other parts relate to publications) for worldwide access a) Bibliographic details and Synopsis only b) Bibliographic details, synopsis and the following chapters only c) Preview/Table of Contents/24 page only	
4. View only (No Downloads) (worldwide)	

Signature of the Scholar

Signature and seal of the Guide

Place: DELHI

Date: 27/01/2022

University of Delhi

Supervisor's Certificate for Exclusion of Self-Published work

The content of the chapters Five have been published in

1. वैदिक साहित्य में वर्णित मूल ज्योतिषीय तत्व एवं उनका संक्षिप्त परिचय
2. वैदिक साहित्य में नक्षत्र विवेचन
3. वैदिक संहिताओं में काल की स्थूल एवं सूक्ष्म इकाइयाँ
4. वैदिक संहिताओं में (अंक) संख्यात्मक पद्धति
5. वैदिक संहिताओं में ज्योतिष आधारित विभिन्न यज्ञ-होमादि विधान

This published work has been included in the thesis and has not been submitted for any degree to any University/institute.

Signature of Student

Signature of Supervisor

प्राक्कथन

सभी विद्याओं का आधार वेदों को माना गया है वेदों का ज्ञान जलधारा की भांति निरन्तर युग - युगान्तर से प्राणीमात्र के जीवन का मार्ग प्रशस्त करता रहा है वेदों के अन्य भाग ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, वेदाङ्ग आदि सभी ग्रन्थ माने गये हैं। इन सभी भागों में वेदों की व्याख्याएं विद्यमान है। वेदों के इन सभी भागों में इतस्ततः सभी विद्याओं का प्रचुर मात्रा में उल्लेख किया गया है। इन सभी विद्याओं में ज्योतिष एक अन्यतम श्रेष्ट विद्या है जो जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाने तथा दु:खों का निराकरण करके सुख पूर्वक जीवन जीने का एक दर्शन है। ज्योतिष शास्त्र अथाह समुद्र के समान है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण भौगोलिक घटनाओं का, कालमान के स्थूल तथा सूक्ष्म परिमाणों का, ग्रहों के आदिभौतिक, आदिदैविक और आध्यात्मिक स्वरूप का, आकाशस्थ नक्षत्र तारामण्डल का तथा इनसे इतर सिद्धान्त, संहिता, होरा, वास्तु,सामुद्रिक, कुण्डली विज्ञान, आदि विद्याओं का ग्रहण किया गया है। षडवेदाङ्ग में ज्योतिष शास्त्र को श्रेष्ठतम बताया गया है जिसे वेदपुरुष का नेत्र कहा गया है। जिस प्रकार व्यक्ति के जीवन में सम्पूर्ण सृष्टि का रूप से प्रत्यक्ष करने के लिए व्यक्ति के शरीर में नेत्रों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार व्यक्ति के जीवन को सुख पूर्वक सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिए वेदपुरुष के नेत्ररूपी ज्योतिष शास्त्र की आवश्यकता है।

जब हम ज्योतिष के दृष्टिकोण से वैदिक साहित्य को देखते हैं तब इसी बृहद वैदिक साहित्य में इतस्ततः अनेक मन्त्रों तथा प्रशंगों में वैदिक ज्योतिष के अनेक उद्धरण देखने को मिलते हैं। ऋग्, यजु, अथर्व में देखें तो वहाँ हमें प्रकृति का स्वरूप देवत्त्व रूप देखने को मिलता है और उस प्रकृति के द्वारा मानव अपने जीवन को जीने योग्य बनाता है। इसी प्रकृति के अनेक रूपों को जैसे – सूर्य, चन्द्र, शुक्र बृहस्पति, तारा, धूमकेतु, ऋतु, मास, नक्षत्र, रात्रि, दिवस, अहोरात्र, तिथि, अमावस्या, पूर्णिमा तथा मुहूर्त के अनुसार किये जाने वाले अनेक यागादि कर्म, इन सभी प्रकृति रूपी वैदिक देवताओं को ज्योतिषशास्त्र ने अपने मूल तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया है तथा अपना आधार माना है। ज्योतिषशास्त्र ने इन्ही को वर्तमान, भूत तथा भविष्य का आधार बनाया है। कालान्तर में हमें (गणित)सिद्धान्तज्योतिष, संहिता(फलित), होरा(वार्षिकी) आदि ज्योतिष के सभी भाग एक के बाद एक वेदाङ्गपर्यन्त, कालक्रम के अनुसार अपने विस्तार को प्राप्त करते हुए दिखाई देते हैं।

ज्योतिष शास्त्र प्रकृति के गहनतम रहस्यों का उद्घाटन करता है। सूर्य और चन्द्रमा तथा प्रकृति के अन्य घटकों के प्रत्यक्ष होने से यह शास्त्र एक प्रत्यक्ष शास्त्र माना गया है। यह एक विज्ञान है इसके साथ साथ इसका आधार आध्यात्म है। इसके महत्त्व को केवल भारतीयों ने ही नहीं अपितु पश्चिम देशीय विद्वानों ने भी आदरपूर्वक स्वीकार किया हैं।

"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध" शीर्षक वाला यह शोध ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है जो की निम्न प्रकार से उल्लिखित है -

प्रथम अध्याय – ग्रन्थ का प्रथम अध्याय **"वैदिक साहित्य में वर्णित मूल ज्योतिषीय तत्त्व एवं उनका संक्षिप्त परिचय"** है। इस अध्याय में वेद से लेकर वेदाङ्ग पर्यन्त सभी भागों के साथ साथ ज्योतिष किस प्रकार इन सभी में विद्यमान है इसका संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया गया है। यहाँ ज्योतिष के विकास की चर्चा की गयी है। वैदिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान ज्योतिषीय तत्त्वों का यहाँ वर्णन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से वैदिक साहित्य में उल्लिखित सूर्य-चन्द्र सहित पञ्चदेव ग्रहों का तथा स्वर्भानु रूप में वर्णित छाया ग्रहों का, ज्योतिषीय दृष्टिकोण से उल्लेख तथा विश्लेषण किया गया है। इसी के साथ गौण रूप में कालमान की कुछ स्थूल एवं सूक्ष्म इकाइयों का वर्णन यथा नक्षत्र, ऋतु, मास, अहोरात्र, दिवस-रात्रि, मुहूर्त, वासर आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन स्थूल-सूक्ष्म कालमान के सभी विषयों का विस्तृत रूप में अग्रिम अध्यायों में उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय - ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय **"वैदिक संहिताओं में नक्षत्र विवेचन"** है। यह पूरा अध्याय वैदिक साहित्य में वर्णित नक्षत्रों पर आधारित है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद संहिताओं में उल्लिखित नक्षत्रों की भिन्न-भिन्न संख्याओं का उल्लेख एवं नक्षत्रों के व्युत्पत्ति परक अर्थ किये गये हैं। वैदिक नक्षत्रों का देव तथा यम दो भागों वर्गीकरण किया गया है जिनका पित्रि तथा देवपक्ष में निर्णय किया जाता है। वेदों में वर्णित नक्षत्रों से प्रार्थना एवं उनसे फल की कामना की गयी है जिसकी यहाँ चर्चा की गयी है। वहीं ज्योतिष में सांकेतिक रूप में प्राप्त होने वाले नक्षत्रों का यहाँ उल्लेख किया गया है। अथर्वज्योतिष में नक्षत्रों का ऋग्याजुष् से भिन्न रूप प्राप्त होता है। जिनमें जन्म, सम्पद् आदि नौ संज्ञाओं के साथ साथ वृहद् आदि नक्षत्रों की तीन उपाधियों का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त कृतिकादि

भरण्यन्त वैदिक नक्षत्रों का भौगोलिक स्वरूप एवं उनके प्रभाव का उल्लेख किया गया है। ऋग्यजुर्वेद एवं अथर्ववेद ज्योतिष के आधार पर नक्षत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

तृतीय अध्याय – ग्रन्थ का तृतीय अध्याय **"वैदिक संहिताओं में वर्णित काल की स्थूल एवं सूक्ष्म इकाईयाँ"** है। प्रस्तुत अध्याय कालमान (काल परिमाण) पर केन्द्रित है। यहाँ वेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त, काल सम्बन्धित काल परिमाण की अनेक भिन्न-भिन्न इकाइयों का वर्णन किया गया है। जैसे - युग, सम्वत्सर, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, मुहूर्त आदि का उल्लेख। वैदिक संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में जहाँ स्थूल से स्थूल काल परिमाण की इकाइयों का वर्णन किया गया है वहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुटि, प्राण आदि कालरूपी इकाइयों का वर्णन भी किया गया है। काल के समस्त स्थूल खण्ड जैसे - कल्प, मन्वन्तर, युग (चतुर्युग), सम्वत्सर (वर्ष), अयन (उत्तर-दक्षिण), ऋतु, मास, पक्ष (कृष्ण-शुक्ल), आदि का उल्लेख है। वहीं काल की सूक्ष्म इकाइयों यथा – लव, कला, त्रुटि, नाडी, दिवस मुहूर्त, रात्रि मुहूर्त, सूक्ष्म मुहूर्त, अहोरात्र आदि का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष के आधार पर अन्त में तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय - ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय **"वैदिक संहिताओं में (अंक) संख्यात्मक पद्धति"** है। प्रस्तुत अध्याय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित गणनात्मक पदों का विवेचन किया गया है। जहाँ संहिताओं में युगात्मकसंख्याओं, गुणात्मकसंख्याओं तथा अर्धसंख्याओं के विषय में चर्चा की गयी है वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में एकसंख्यात्मक, द्वि संख्यात्मक तथा तीन संख्याओं वाले पदों का उल्लेख एवं त्रैराशिक विधि का उल्लेख किया गया है। ऋग्याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में प्राप्त संकलन (जोड़ना), व्यकलन (घटाव), गुणज (गुणन) भाग, आदि गणितीय संक्रियाओं का उल्लेख किया गया है और व्युत्पतिपरक परिभाषाओं के साथ साथ उनके विशेष उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष में उल्लिखित सभी गणनात्मक संक्रियाओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

पञ्चम अध्याय - ग्रन्थ का पञ्चम अध्याय **"वेदों में ज्योतिष आधारित विभिन्न यज्ञ-होमादि विधान"** प्रस्तुत अध्याय का केन्द्र विन्दु यज्ञ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में सम्पादित होने वाले यज्ञ - होमादि माङ्गलिक कार्य किस प्रकार ज्योतिष के आधार पर सम्पादित किये जाते थे इस विषय में यहाँ उल्लेख

किया गया है। वेदकालीन संस्कृति में "यज्ञ" करना प्रधान कर्म के रूप में स्वीकृत था। इसीलिए तत्कालीन जीवन पद्धति में प्रत्येक वस्तु को तथा सामान्य जन – जीवन को यज्ञ की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय यागादि कर्म प्रक्रिया मनुष्य की प्रत्येक दिवस की दिनचर्या में सामिल था जो कि एक प्रकार का नित्यकर्म सा था। जिन कर्मों को मनुष्य सम्वत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस, अहोरात्र मुहूर्त आदि वैदिक ज्योतिष द्वारा निर्दिष्ट कालानुसार करता था। इन यागादि विधानों का वैदिक ज्योतिष विषयानुसार इसमें उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष के आधार पर अन्त में तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

उपसंहार को ग्रन्थ के अन्त में सम्मिलित किया गया है। जिसमें सम्पूर्ण शोध ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय तथा शोध का सारांश वर्णित है।

आभारोक्ति

आभार अभिव्यक्त करना किसी भी गुरुतर कार्य के लिए सफल समापन की स्थिति में उन मार्गदर्शक विभूतियों का कृतज्ञता पूर्ण स्मरण करना सदैव ही गौरव एवं आत्मसन्तोष का विषय होता है। यद्यपि परमपिता परमेश्वर की इच्छा इन सभी में सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ है फिर भी शोध-प्रबन्ध लेखन रूपी यह कार्य मौलिक प्रयास होने के उपरान्त भी अनेक महान् व्यक्तियों के मार्गदर्शन, स्नेह, सद्प्रेरणा तथा वात्सल्य भाव का प्रतिफल मात्र ही है। अपने अध्ययन एवं शोधकार्य सम्पन्न करने की प्रक्रिया का जब अनुभव करता हूँ तो मुझे लगता है कि अपने गुरुजनों एवं स्वजनों की सहायता के बिना मेरा यह कार्य उसी प्रकार असम्भव होता जिस प्रकार गंगा प्रवाह में घोष का निर्माण करना, क्योंकि उनके गहन ज्ञान, सुदीर्घ अनुभव परम्परा एवं स्नेहपूर्ण सहयोग ने मेरे कार्य के मार्ग को प्रशस्त और सम्पन्न किया है। प्रस्तुत शोध कार्य पूर्ण रूप से वैदिक साहित्य में विद्यमान ज्योतिषीय तत्त्व एवं वैदिक ज्योतिष पर आधारित है। वैदिक संहितायें एवं वेदाङ्ग ज्योतिष अत्यन्त प्राचीन होने के कारण प्रारम्भ से ही दुर्बोध हैं। वैदिक संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष की दुरूहता को दूर करने तथा सरलता से समझने के लिए ऋषियों एवं आचार्यों ने अपने कठिन परिश्रम से अनेक भाष्यों एवं व्याख्या ग्रन्थों की रचनाएँ की है। इन आचार्यों में आचार्य शंकर, आचार्य यास्क, सायण, महर्षिदयानन्द, सोमाकर, सुधाकर, बाल गंगाधर तिलक, शंकर बालकृष्ण दीक्षित, नेमिचन्द्रशास्त्री, भगवत दत्त, पाश्चात्य विद्वान - सर विलियम जोन्स, कोलब्रुक आदि प्रमुख हैं। उपरोक्त आचार्यों की रचनाओं एवं इनसे इतर जो अन्य सहायक ग्रन्थ हैं जिनसे शोधकार्य में शोधकर्ता को काफी सहायता प्राप्त हुई उन सभी विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

सर्वप्रथम मैं ईश्वर के प्रति प्रणाम करता हूँ। कृतज्ञता की इसी परम्परा के अग्रिम सोपान में सर्वप्रथम विभागाध्यक्ष प्रो . रमेश चन्द्र भारद्वाज महोदय के प्रति मैं अपनी श्रद्धा व्यक्त करता हूँ जिनके आचार्यत्त्व में यह कार्य अपनी पूर्णता को प्राप्त कर रहा है।

"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध" शोध कार्य के शोध निर्देशक, डॉ . उमाशंकर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली का अत्यन्त आभारी हूँ जिनका अनवरत

प्रोत्साहन, सहयोग, कुशल निर्देशन, मेरे कार्य के प्रति सहानुभूति एवं वात्सल्य सम्बन्ध बना रहा। इनके कुशल निर्देशन में कार्य करते हुए शोधकर्ता में कभी भी आत्मविश्वास की कमी या निराशा के भाव नहीं आये।

ज्योतिषशास्त्र के प्रति रुचि उत्पन्न करने वाले तथा समय समय पर इस शास्त्र की सूक्ष्मता तथा विशालता का मान कराने के लिए मैं डॉ. राजीव रंजन, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके स्नेह एवं परामर्शो से यह कार्य सम्भव हो पाया। शोध कार्य में समय समय पर मार्गदर्शन करने प्रो. सुद्धीकान्त भारद्वाज भूतपूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, का आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध कार्य एक दीर्घकालिक कार्य होता है जिसको करने में अनेक संशयरूपी समस्याओं का सामना करना पड़ा है और इन समस्याओं के निराकरण में संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के उन सभी गुरुजनों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके कौशलपूर्ण अध्यापन से मैं इस कार्य को अच्छी तरह से कर सका।

शोध कार्य हेतु पुस्तकालय एक सर्वप्रमुख अवयव है और इस सन्दर्भ में केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पुस्तकालय राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जनकपुरी, दिल्ली, लाल बहादुर शास्त्री, संस्कृत विद्यापीठ, पुस्तकालय रघुनाथ परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड, पुस्तकालय, शोध गंगा ऑनलाइन इलैक्ट्रोनिक शोधप्रबन्ध भण्डार- इन्फ्लिबनेट केन्द्र, ई-बुक्स, सभी पुस्तकालायों के अधिकारियों और कर्मचारियों तथा जिनका भी इस कार्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग रहा उन सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

परम पूज्य माता-पिता ने लालन-पालन और शिक्षण सब प्रकार से मुझे समर्थ बनाने का अनुकरणीय प्रयास किया है। माता - पिता के ऋण से तो मैं वैसे भी उऋण नहीं हो सकता हूँ। अत: मैं उनकी कृतज्ञता शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। मैं परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि इन्हीं माता-पिता की सन्तति होने का सौभाग्य मुझे बारम्बार मिले। उन सभी सहयोगियों, मित्रों एवं सहपाठियों (सूर्यदेव, संजीव,

अंगीरश) का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनका स्नेह एवं प्रेरणा मुझे निरन्तर प्रोत्साहित करती रही, उनके सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ तथा उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

अन्त में मैं शोध-प्रबन्ध के टंकणकर्ता रुपेश जी का भी धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस कार्य को यथासमय शुद्ध टंकण करके विद्वज्जनों के समक्ष लाने का प्रयास किया। सब कुछ ध्यानपूर्वक करने पर भी यदि इस शोध-प्रबन्ध में किसी प्रकार की त्रुटि रह गयी है तो इसके लिए शोधकर्ता क्षमा प्रार्थी है।

।।**तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु**।।

संकेत सूची

अथर्व०	–	अथर्ववेद
अष्टा०	–	अष्टाध्यायी
आर्य०	–	आर्यभटीयम
अ० पु०	–	अग्नि पुराण
आथर्व० ज्यो०	–	आथर्वण ज्योतिषम्
आप० धर्म०	–	आपस्तम्भ धर्मसूत्र
आश्व० गृह्य०	–	आश्वलायन गृह्यसूत्र
आश्व० श्रौत०	–	आश्वलायन श्रौतसूत्रम्
ईशा०	–	ईशावास्योपनिषद्
ई० प्र० वि०	–	ईश्वरप्रतिभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी
ऐ० आ०	–	ऐतरेय आरण्यक
ऐ० ब्रा०	–	ऐतरेय ब्राह्मण
ऋ०	–	ऋग्वेद
ऋ० ज्यो०	–	ऋग ज्योतिष
ऋ० प्रा०	–	ऋग्वेद प्रातिशाख्य
कपि० सं०	–	कपिष्टल संहिता
का० सं०	–	काठक संहिता
कौ० अर्थ०	–	कौटिल्य अर्थशास्त्र
कौ० ब्रा०	–	कौषीतकीय ब्राह्मण
गो० ब्रा०	–	गोपथ ब्राह्मण
च० सं०	–	चरक संहिता
छ० सू०	–	छन्दसूक्त
छा० उ०	–	छान्दोग्योपनिषद्
ज्योति० भि०	–	ज्योतिर्विदाभरणम्
त० सि० र०	–	तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली
तै० उप०	–	तैत्तिरीय उपनिषद्
तै० सं०	–	तैत्तिरीय संहिता
ना० शा०	–	नाट्य शास्त्र
ना० महा०	–	नारद महापुराण

ना० सं०	–	नारद संहिता
निरू०	–	निरूक्त
पञ्च० ब्रा०	–	पञ्चविंश ब्राह्मण
पञ्च० सि०	–	पञ्च सिद्धान्तिका
पा० गृ०	–	पारस्कर गृह्यसूत्र
प्र० उ०	–	प्रश्न उपनिषद्
बृहद० उप०	–	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृ० पा० हो०	–	बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्
ब्रह्म० वै० पु०	–	ब्रह्मवैवर्त पुराण
ब्र० सि०	–	ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त
भवि० पु०	–	भविष्य पुराण
मनु०	–	मनुस्मृति
महा०भा०	–	महाभारतम्
महा० भा०	–	महाभाष्य
माण्डू० उप०	–	माण्डूक्योपनिषद्
मु० उ०	–	मुण्डकोपनिषद्
मु० चि०	–	मुहूर्त्तचिन्तामणि
मैत्रा० उप०	–	मैत्रायणी उपनिषद्
मैत्रा० सं०	–	मैत्रायणी संहिता
यजु०	–	यजुर्वेद
याजु० ज्यो०	–	याजुष् ज्योतिष
याज्ञ० स्मृ०	–	याज्ञवल्क्यस्मृति
ल० ज्यो०	–	लगध ज्योतिष
लीला०	–	लीलावती
व० सं०	–	वशिष्ट संहिता
वा० पदी०	–	वाक्यपदीयम्
वा० रा०	–	वाल्मीकि रामायण
वा० सं०	–	वाजसनेयी संहिता
वा० पु०	–	वायु पुराण
वे० ज्यो०	–	वेदाङ्ग ज्योतिष
वै० ज्यो०	–	वैदिक ज्योतिष

श० ब्रा०	–	शतपथ ब्राह्मण
शांखा० आ०	–	शांखायन आरण्यक
शांखा० श्रौ०	–	शांखायन श्रौतसूत्र
श्वेता० उ०	–	श्वेताश्वेतरोपनिषद्
ष० ब्रा०	–	षड्विंश ब्राह्मण
श्री० भग० गी०	–	श्रीमद्भगवद्गीता
सा० सं०	–	सामवेद सहिता
सा० ब्रा०	–	सामविधान ब्राह्मण
सि० द०	–	सिद्धान्तदर्पण
सि० शि०	–	सिद्धान्तशिरोमणि
सू० सि०	–	सूर्यसिद्धान्त

विषय-अनुक्रमणिका

क्र.सं.

“ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध”

“ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध” प्रस्तुत शीर्षक वाला यह शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है जिनका निम्न रूप में उल्लेख किया गया है -

प्रथम अध्याय – शोध-प्रबन्ध का प्रथम अध्याय “वैदिक साहित्य में वर्णित मूल ज्योतिषीय तत्त्व एवं उनका संक्षिप्त परिचय” है। इस अध्याय में वेद से लेकर वेदाङ्ग पर्यन्त सभी भागों के साथ साथ ज्योतिष किस प्रकार इन सभी में विद्यमान है इसका संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया गया है। यहाँ ज्योतिष के विकास की चर्चा की गयी है। वैदिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में विद्यमान ज्योतिषीय तत्त्वों का यहाँ वर्णन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से वैदिक साहित्य में उल्लिखित सूर्य-चन्द्र सहित पञ्चदेव ग्रहों का तथा स्वर्भानु रूप में वर्णित छाया ग्रहों का, ज्योतिषीय दृष्टिकोण से उल्लेख तथा विश्लेषण किया गया है। इसी के साथ गौण रूप में कालमान की कुछ स्थूल एवं सूक्ष्म इकाइयों का वर्णन यथा नक्षत्र, ऋतु, मास, अहोरात्र, दिवस-रात्रि, मुहूर्त, वासर आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन स्थूल-सूक्ष्म कालमान के सभी विषयों का विस्तृत रूप में अग्रिम अध्यायों में उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अध्याय - ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय “वैदिक संहिताओं में नक्षत्र विवेचन” है। यह पूरा अध्याय वैदिक साहित्य में वर्णित नक्षत्रों पर आधारित है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद संहिताओं में उल्लिखित नक्षत्रों की भिन्न-भिन्न संख्याओं का उल्लेख एवं नक्षत्रों के व्युत्पत्ति परक अर्थ किये गये हैं। वैदिक नक्षत्रों का देव तथा यम दो भागों वर्गीकरण किया गया है जिनका पित्रि तथा देवपक्ष में निर्णय किया जाता है। वेदों में वर्णित नक्षत्रों से प्रार्थना एवं उनसे फल की कामना की गयी है जिसकी यहाँ चर्चा की गयी है। वहीं ज्योतिष में सांकेतिक रूप में प्राप्त होने वाले नक्षत्रों का यहाँ उल्लेख किया गया है। अथर्वज्योतिष में नक्षत्रों का ऋग्याजुष् से भिन्न रूप प्राप्त होता है। जिनमें जन्म, सम्पद् आदि नौ संज्ञाओं के साथ साथ वृहद् आदि नक्षत्रों की तीन उपाधियों का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त कृतिकादि भरण्यन्त वैदिक नक्षत्रों का भौगोलिक स्वरूप एवं उनके प्रभाव का उल्लेख किया गया है। ऋग्यजुर्वेद एवं अथर्ववेद ज्योतिष के आधार पर नक्षत्रों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

तृतीय अध्याय – ग्रन्थ का तृतीय अध्याय "वैदिक संहिताओं में वर्णित काल की स्थूल एवं सूक्ष्म इकाईयाँ" है। प्रस्तुत अध्याय कालमान (काल परिमाण) पर केन्द्रित है। यहाँ वेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में प्राप्त, काल सम्बन्धित काल परिमाण की अनेक भिन्न-भिन्न इकाइयों का वर्णन किया गया है। जैसे - युग, सम्वत्सर, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, मुहूर्त आदि का उल्लेख। वैदिक संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में जहाँ स्थूल से स्थूल काल परिमाण की इकाइयों का वर्णन किया गया है वहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुटि, प्राण आदि कालरूपी इकाइयों का वर्णन भी किया गया है। काल के समस्त स्थूल खण्ड जैसे - कल्प, मन्वन्तर, युग (चतुर्युग), सम्वत्सर (वर्ष), अयन (उत्तर-दक्षिण), ऋतु, मास, पक्ष (कृष्ण-शुक्ल), आदि का उल्लेख है। वहीं काल की सूक्ष्म इकाइयों यथा – लव, कला, त्रुटि, नाडी, दिवस मुहूर्त, रात्रि मुहूर्त, सूक्ष्म मुहूर्त, अहोरात्र आदि का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष के आधार पर अन्त में तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय - ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय "वैदिक संहिताओं में (अंक) संख्यात्मक पद्धति" है। प्रस्तुत अध्याय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णित गणनात्मक पदों का विवेचन किया गया है। जहाँ संहिताओं में युगात्मकसंख्याओं, गुणात्मकसंख्याओं तथा अर्धसंख्याओं के विषय में चर्चा की गयी है वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में एकसंख्यात्मक, द्वि संख्यात्मक तथा तीन संख्याओं वाले पदों का उल्लेख एवं त्रैराशिक विधि का उल्लेख किया गया है। ऋग्याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में प्राप्त संकलन (जोड़ना), व्यकलन (घटाव), गुणज (गुणन) भाग, आदि गणितीय संक्रियाओं का उल्लेख किया गया है और व्युत्पतिपरक परिभाषाओं के साथ साथ उनके विशेष उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष में उल्लिखित सभी गणनात्मक संक्रियाओं का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

पञ्चम अध्याय - ग्रन्थ का पञ्चम अध्याय "वेदों में ज्योतिष आधारित विभिन्न यज्ञ-होमादि विधान" प्रस्तुत अध्याय का केन्द्र विन्दु यज्ञ है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में सम्पादित होने वाले यज्ञ - होमादि माङ्गलिक कार्य किस प्रकार ज्योतिष के आधार पर सम्पादित किये जाते थे इस विषय में यहाँ उल्लेख किया गया है। वेदकालीन संस्कृति में "यज्ञ" करना प्रधान कर्म के रूप में स्वीकृत था। इसीलिए तत्कालीन जीवन पद्धति में प्रत्येक वस्तु को तथा सामान्य जन – जीवन को यज्ञ की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय यागादि

कर्म प्रक्रिया मनुष्य की प्रत्येक दिवस की दिनचर्या में सामिल था जो कि एक प्रकार का नित्यकर्म सा था। जिन कर्मों को मनुष्य सम्वत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस, अहोरात्र मुहूर्त आदि वैदिक ज्योतिष द्वारा निर्दिष्ट कालानुसार करता था। इन यागादि विधानों का वैदिक ज्योतिष विषयानुसार इसमें उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, एवं अथर्ववेदीय ज्योतिष के आधार पर अन्त में तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध के साररूप में यहाँ कुछ मुख्य विन्दुओं का उल्लेख किया गया है। जिनके माध्यम से सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध के सार को समझ सकेंगे। यहाँ वैदिक साहित्य में उल्लिखित ज्योतिषीय विषय के आधार पर तीनों ऋग ज्योतिष, याजुष ज्योतिष तथा अथर्व ज्योतिष जो ज्योतिषीय विषय विद्यमान है उनके आधार पर तीनों में परस्पर सम्बन्ध दिखाने का प्रयास किया गया है। जो कि तीनों ज्योतिषीय विषय पाठकों के सामने नवीन रूप में एक साथ प्रस्तुत कर सके इसी आधार पर शोधार्थी ने **"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध"** शीर्षक शोध-प्रबन्ध रूप में चुना। वेदाङ्गोत्तर काल में ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ हुयी परन्तु वेदाङ्ग के समय तक केवल एक लगढ़कृत लगध ज्योतिष ही ऐसा ग्रन्थ था जो ज्योतिष शास्त्र का मूल और प्रमाणिक ग्रन्थ था। वेदाङ्ग ज्योतिष से पूर्व ज्योतिष विद्या का समूर्ण ज्ञान मूल वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं वेदाङ्ग साहित्य में इतस्ततः प्रचुर मात्र में बिखरा हुआ था। जिसका साहित्यिक रूप हमें वेदाङ्ग ज्योतिष के रूप में प्राप्त होता है।

वैदिक संहिताओं में सूर्य का उल्लेख प्रचुर मात्रा मिलता है। यद्यपि यहाँ सूर्य का ज्योतिष शास्त्र में वर्णित सूर्यग्रह के सामान ग्रह कहने का उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋगसंहिता, याजुष संहिता एवं अथर्व संहिता में वर्णित सुर्यपरक ऋचाएॅ निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय सूर्य रूपी ग्रह की मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक जगह सूर्य के लिए कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत सूर्य से घिरा हुआ है और यही हमें ऋग्वेद के उस मन्त्र में देखने को मिलती है जहाँ सूर्य को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक बताया गया है अर्थात पूरे ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य स्थित है और पूरा जगत उस सूर्य से घिरा हुआ है। जब ज्योतिष में खगोलीय सौरमण्डल को देखते हैं तो वहाँ भी सूर्य सभी ग्रहों से घिरा हुआ है और सभी के मध्य में स्थित रहता है। इस प्रकार से सभी में साम्यता देखी जा सकती है।

वैदिक संहिताओं में "आदित्य" शब्द का उल्लेख प्रचुर मात्रा में किया गया है। सभी ने इसे सूर्य का ही पर्यायवाची माना है वहीं आदित्यों की संख्याओं तथा नामों में कुछ भेद भी देखने को मिलता है। जैसे ऋग्वेद में आदित्यों की संख्या छः तथा सात बतायी गयी है वहीं यजुर्वेद में द्वादश आदित्यों का उल्लेख प्राप्त होता है और अथर्व में देखें तो वहाँ आदित्यों को अष्ट आदित्य कहा गया है जो की सत्य से अष्टमी को उत्पन्न हुए। इस प्रकार से उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में चन्द्रमा का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है। यद्यपि यहाँ चन्द्रमा को ज्योतिष-शास्त्र के समान चन्द्रमा का ग्रह के रूप में उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋग, यजु, अथर्व में वर्णित चन्द्रमा परक मन्त्र निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय चन्द्रग्रह रूपी मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है। वहीं साम्यता देखें तो तीनों ऋगसंहिता, यजुर्वेदसंहिता एवं अथर्ववेद संहिता में चन्द्रमा को सूर्य पर आधारित कहा है और चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाशित होने वाला बताया गया है। तीनो में चन्द्रमा को देवत्त्वरूप प्रदान किया गया है वहीं चन्द्रमा को तीनों वेदों में तिथियों का आधार और निर्माण कर्ता बताया गया है। वैदिक मुनियों ने अपने यज्ञ प्रयोजन की सिद्धि के लिए तिथियों के नाम रखे थे जिनके लिए वे अनुमति, राका, सिनीवाली, कुहू आदि नाम का प्रयोग करते थे। वहीं पूर्णमासी और अमावस्या देवत्त्वरूप में वर्णनं किया गया है और इनमें वैदिक ऋषियों ने दर्श पौर्णमास याग का विधान किया है जो कि काल विधान रूपी ज्योतिष शास्त्र के आधार पर निर्धारित तिथियों के आधार पर ही सम्भव है जो तिथियों का निर्धारण ज्योतिष चन्द्रमा की घटती बढती कलाओं के आधार पर करता हैं जिसके फलस्वरूप वेदाङ्गादि ग्रन्थों में हमें प्रतिपदा से लेकर पञ्चदशी अर्थात पूर्णिमा/अमावस्या तक की सम्पूर्ण तिथियों का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ वैदिक मूल संहिताओं में सूर्य चन्द्र परक अनेक मन्त्र एक साथ पढ़े गये हैं वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में सूर्य चन्द्रमा के एक साथ आने पर पञ्चसंवत्सरात्मक युग का आरम्भ होता है। इस प्रकार से देखें तो ऋग याजुष अथर्व तीनों वैदिक ग्रन्थों में प्रतिपादित चन्द्र ग्रह सामान रूप से उल्लेख किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि तिथियाँ, अमावस्या पूर्णिमा और चन्द्रादि ग्रहों का तीनों मूल संहिताओं में समान रूप से इतस्ततः प्रचुर मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है जिनका विस्तृत रूप वेदाङ्गादि ज्योतिष ग्रन्थों में परिलक्षित होता है।

वेदों में जिन पञ्चदेवों (ग्रहों) की और संकेत किया गया है उनमें मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये सभी माने गये हैं जहाँ ऋग्वेद में इन पाँच ग्रहों का संकेत पञ्चदेवों की ओर किया गया है जो पञ्चदेव यदाकदा आकाश में भ्रमण करते हुए दिखयी देते हैं इन्हीं पञ्चदेवों को यजुर्वेद में अनेक विशेषणों से सम्बोधित किया गया है, और इन्हीं पञ्चदेवों का प्रथम बार मगल, बुध शनि आदि संज्ञाएँ पूर्ण रूप से अथर्ववेद में हमें दिखाई देती है यहाँ नवग्रहों का उल्लेख मिलता है। जिनमें चन्द्रमा, बुध, आदित्य(सूर्य), राहू, मृत्यु अर्थात शनि-केतु तथा रुद्र से मंगल और तिग्मतेजसः से गुरु एवं शुक्र की ओर संकेत किया गया है। विशेष रूप से बृहस्पति और शुक्रग्रह का वर्णन हमें तीनों वेदों में सामान रूप से मिलता हैं वेदाङ्ग ज्योतिष में हमें बृहस्पति के आधार पर बार्हस्पत्य सम्वत्सरों उल्लेख प्राप्त होता है वहीं अगर राहू और केतु ग्रह को देखें तो तीनों ऋग, यजु और अथर्ववेद में इनका अन्धकार स्वरूप माना गया है जो कि परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में छाया ग्रहों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, राहू को तीनों वेदों में स्वर्भानु नाम से सम्बोधित किया जाता हैं जो कि सूर्य को आच्छादित कर देता है यही सूर्य का आच्छादित हो जाना ज्योतिष की परिभाषा में राहू द्वारा सूर्य को ग्रसित कर लेना है जिसे ज्योतिष शास्त्र में सूर्यग्रहण की संज्ञा दी जाती है इस प्रकार से हमें तीनों वेदों में सामान रूप से ग्रहों का उल्लेख प्राप्त इससे यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि वैदक ऋषियों को अवश्य ही ज्योतिषीय खगोल विद्या के ग्रह रूपी मूल पदार्थों का ज्ञान था। प्रस्तुत अध्याय में ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित ज्योतिषीय तत्त्वों यथा नवग्रहों के संक्षिप्त विवेचन के साथ साथ नक्षत्र, ऋतु, मास, अहोरात्र, दिशा तथा मुहुर्तादि के विषय में संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष तथा परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में विस्तार को प्राप्त होने वाले ज्योतिषीय तत्त्व तीनों वेदों में प्राप्त ज्योतिष विषयक तत्त्वों के आधार पर इनमें (ऋगज्योतिष, यजुर्वेद ज्योतिष, अथर्व ज्योतिष) तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता हैं।

जब हम नक्षत्रों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देखते हैं तो वहाँ हमें सभी सत्ताईस - अट्ठाईस नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है। जहाँ ऋग्वेद में 34 प्रकार के ज्योतिष पिण्डों के विषय में 27 नक्षत्रों का संकेत मिलता है और वहाँ कुछ ही नक्षत्रों का उल्लेख किया जाता है। वही नक्षत्र जिनका संकेत ऋग्वेद में मिलता है उन सभी सत्ताईस नक्षत्रों की संज्ञा सहित यजुर्वेद में पूर्णरूप से उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ हमें नक्षत्रों का देवताओं के आधार पर तथा गति के आधार पर वर्गीकरण देखने को मिलता है जहाँ ऋग, यजुर्वेद में

नक्षत्रों के अर्थो का प्रयोग मिलता है वहीं अथर्ववेद में अट्ठाईस नक्षत्रों के साथ साथ उनके मनवांछित फल की कामना करते हुए नक्षत्रों की स्तुति की गयी है। वहीं हमें नक्षत्रों के नामों में भी कुछ भेद देखने को मिलता है जहाँ ऋग्वेद में अघासु और अर्जुनी है वहीं अथर्ववेद में इनके स्थान पर मघासु तथा फाल्गुनी का प्रयोग हुआ है ऋग्वेद के ' अर्जुनी ' का अथर्ववेद में ' फाल्गुनीषु ' शब्द में हुए परिवर्तन का समाधान शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट होता है। यहाँ वर्णन है कि फाल्गुनी नक्षत्रों का अर्जुनी नाम इन्द्र के गुप्त नाम पर पड़ा है। ये फाल्गुनी नक्षत्र इन्द्र के नक्षत्र हैं और इन्द्र का नाम अर्जुन भी है। जहाँ जहाँ ऋग्वेद में लगभग दस बार नक्षत्र शब्द का प्रयोग हुआ है वहीं अथर्ववेद में सम्पूर्ण दो सूक्तों में नक्षत्रों के देवता नक्षत्राणि है।

लगधकृत ऋग्याजुषवेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का स्वरुप वैदिक नक्षत्रों से किंचित भिन्न है यहाँ नक्षत्रों के "जो" "द्रा" "खे" आदि रूप मिलते हैं जो कि नक्षत्रों के ही आदि मध्य तथा अन्त्य वर्ण हैं। जैसे आद्रा नक्षत्र के लिए द्रा शब्द का प्रयोग किया गया है (अश्विनौ) आश्वयुजौ के लिए "जौ" का प्रयोग किया गया इसी प्रकार यहाँ सभी नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है जिनका यहाँ देवताओं के साथ उल्लेख प्राप्त होता है वहीं अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष में यद्यपि नक्षत्रों के नामों का उल्लेख नहीं मिलता तथापि इसमें सत्ताईस (27) नक्षत्रों के तीन तीन भाग करके उनकी नौ उपाधियों के नामों की चर्चा अवश्य की गई है सत्ताईस नक्षत्रों के क्रमशः नौ विभाग हैं - जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र तथा परमैत्र ये नक्षत्रों के 9 विभाग किये गए हैं। वहीं नक्षत्रों का जन्म, कर्म, आधानादि तथा उत्तम, मध्यम, अधम आदि वर्ग किये गये हैं और साथ ही साथ उनमें किये जाने वाले कार्यों अथवा प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है। वहीं एक नक्षत्र में होने वाले अनेक ताराओं का उल्लेख मिलता है यद्यपि अथर्व ज्योतिष में नक्षत्रों के नाम नहीं है परन्तु मूल अथर्ववेद संहिता में इनके नामों का उल्लेख अवश्य मिलता है जो अथर्व ज्योतिष का आधार है तात्पर्य यह है कि जो नक्षत्रों का वर्णन हमें ऋग यजुर्वेद ज्योतिष में मिलता है उन्ही नक्षत्रों का उल्लेख हमें अथर्व ज्योतिष में मिलता है अथर्ववेद में नक्षत्रों का फलित होने के कारण ये परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में फलित का आधार बनते हैं।

28 नक्षत्रों के स्वरूप, प्रभाव, स्थिति, फल आदि का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदाङ्ग ज्योतिष एवं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर किया गया है वैदिक - काल में वसन्त

सम्पात कृत्तिका नक्षत्र में होता था इसलिए कृत्तिका प्रथम नक्षत्र था। नक्षत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया था। प्रथम देव नक्षत्र तथा दूसरा भाग यम नक्षत्र कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा गया है कृत्तिका से विशाखा तक 14 नक्षत्र देव नक्षत्र कहे जाते हैं तथा अनुराधा से भरणी तक 14 नक्षत्र यम नक्षत्र माने जाते हैं। जहाँ यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में सभी नक्षत्रों के देवताओं का उल्लेख मिलता है वहीं तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवताओं की संज्ञाओं में अन्तर देखने को मिलता है। अथर्ववेद संहिता की बात करें तो यहाँ सभी नक्षत्रों के नामों के साथ साथ उनसे प्रार्थना और फल प्राप्ति की कामना की गयी है। इन सभी संहिताओं से नक्षत्रों के भिन्न रूप वेदाङ्ग ज्योतिष में देखने को मिलते हैं। जहाँ नक्षत्रों के देवता तो एक जैसे हैं परन्तु यहाँ नक्षत्रों का सांकेतिक रूप प्राप्त होता है। नक्षत्रों की आकृति के विषय में सभी नक्षरों में भिन्नता देखने को मिलती है क्योंकि सभी नक्षत्रों के ताराओं की संख्या अलग-अलग अलग है। ऋग, यजु, अथर्व एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों की तुलना की जाये तो वहाँ समानता अधिक देखने को मिलती है कुछ कुछ स्थानों में अन्तर देखने को मिलता है।

युग कालमान की एक ऐसी इकाई है जो सूक्ष्म और दीर्घ दोनों के लिए कही जा सकती है वेदों में हमें युग के लिए देवयुग, पितृयुग, मानुषयुग आदि का उल्लेख मिलता है। वहीं दिवस रात्रि के योग के लिए भी युग कहा गया है, कहीं पाँच, दश तथा सौ वर्षों की अवधि के लिए भी युग कहा गया है। वहीं ऋग्वेद में प्रयुक्त ‘‘त्रियुगम्’’ शब्द को सायणाचार्य ने अपने भाष्य में कृत, त्रेता तथा द्वापर इन तीन युगों के रूप में ग्रहण किया है साथ ही साथ वसन्त, वर्षा और शरद इन तीनों ऋतुओं के रूप में भी तीनों युगों का अर्थ ग्रहण किया है। वहीं अगर हम यजुर्वेद में देखें तो वहाँ भी ऋग्वेद के समान ही ‘‘पितरों के साथ साथ कृत, त्रेता तथा द्वापर हमारा रक्षण करें, इस प्रकार का उल्लेख है। यहाँ कृतादि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद में युगारम्भ जिस मास में, जिस पक्ष में तथा जिस तिथि को होता है उनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। वहीं दूसरी तरफ ऋग, याजुष एवं अथर्व ज्योतिष में पञ्चसंवत्सरात्मक युग पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है जो पहले से ही मूल ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्व में उल्लिखित हैं। इन्ही को बाद में महर्षि लगध द्वारा कालगणना का आधार बनाया गया। जहाँ मूल ऋग्वेद में केवल सम्वत्सरों का नामोल्लेख मिलता है वहीं मूल याजुष में देवताओं के आधार

पर उन्ही पञ्च सम्वत्सरों का उल्लेख मिलता है इस प्रकार से तीनो ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में युगादि सम्वत्सरों का समान रूप से उल्लेख मिलता है जो एकदूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं।

तीनों मूल संहिताओं तथा वेदाङ्ग आदि ज्योतिष गन्थों में अयन का अर्थ गमनशील तथा चलना किया गया हैं। सभी में यह कहा गया है की जब सूर्य उत्तर की ओर गमन करता है तब उत्तरायण होता हो तथा दक्षिण की ओर गमन करता है तब दक्षिणायन होता है। वहीं उत्तरायण को देवताओं का दिन माना जाता है और दक्षिणायन को पितरों का दिन माना गया है। वही दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि मानी गई है और उत्तरायण को पितरों की रात्रि मानी जाती है। ऋतु में भी वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा यह देवताओं की ऋतु मानी गई है। इन छः माह उत्तर में और शरद, हेमन्त तथा शिशिर यह पितरों या फिर असुरों की ऋतु में मानी गई है इनमें छः माह सूर्य दक्षिण में होता है। इस प्रकार तीनों वैदिक ज्योतिष ग्रन्थों का मत अयन के विषय में सामान है।

इस प्रकार से जब हम ज्योतिषीय तत्त्व ऋतु के विषय में देखते हैं तो ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद और यहाँ तक कि वेदाङ्ग ज्योतिष इन सभी में ऋतु विषयक कुछ बिन्दु एक ही लक्ष्य को इंगित करते हैं। और कहीं ना कहीं ऋतुओं का ज्ञान ऋग्वेद से प्रारम्भ होकर वेदाङ्ग तथा वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में अपना विस्तृत रूप प्राप्त करता है। जहाँ ऋग्वेद में ऋतु के अर्थ को एक निश्चित कालावधि के रूप में लिया गया है। वहीं यजुर्वेद में देखें तो वहाँ हमें "ऋतुवः" "ऋतुना" "ऋतुभिः" आदि शब्द कालवाची अर्थ में दिखाई देते हैं। और यही ऋतुवाची बहुवचनान्त शब्द हमें अथर्व में भी प्राप्त होते है। ऋतुओं आधार सूर्य तथा चन्द्र दोनों को माना गया है। जहाँ संहिताओं में सूर्य से ही सम्पूर्ण ऋतुचक्र परिभ्रमण करता है वहीं चन्द्रमा सभी ऋतुओं को एक साथ मिलाकर सम्वत्सर (वर्ष) को बांधे रखता है। सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित दोनों प्रकार की ऋतुओं के ज्ञान से हमारे वैदिक ऋषि भली-भांति परिचित थे और यही सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित वैदिक ऋतुएँ वेदाङ्ग काल में सौर ऋतु तथा चान्द्र ऋतुओं के नाम से प्रचलित हो जाती हैं और यहाँ हमें ऋतुओं का विधान नक्षत्रों के आधार पर भी देखने को मिलता है। जहाँ वेदों में ऋतुओं का मूल सूर्य की गति को बताया गया है वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा गया है कि सूर्य के पूरे 4 नक्षत्रों और पञ्चम नक्षत्र के आधे भाग के भोग काल को सौर ऋतु कहते हैं। इस प्रकार से हम सौर ऋतुओं का मान ज्ञात कर सकते हैं।

वैदिक काल में 30 दिनों का एक मास ग्रहण किया जाता था। अगर हम ऋतुओं के (मुख) प्रारम्भ की बात करें तो सभी ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वसन्त से ही ऋतुओं का आरम्भ माना जाता है परन्तु तैत्तिरीय का एक मन्त्र हैं ऋतु पात्र के दोनों ओर मुख हैं इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऋतु का मुख कौन सा है। इससे यहाँ ऋतुओं का प्रारम्भ कौनसी ऋतु से होगा इस विषय में शंका की गयी है।

यदि मास के विषय में विचार इन सभी वैदक संहिताओं और ज्योतिष ग्रन्थों में करें तो हम यही पायेंगे कहीं मल्मास है, कही अर्धमास, कही सौरमास, कही चन्द्रमास, कही नक्षत्रमास तथा कहीं सावन मास ही है। परन्तु ये सभी एक दूसरे के ही पूरक हैं और एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध युक्त हैं। ऋग्वेद में देखा जाए तो वहाँ मास सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित हैं। कहीं सूर्य को मासों का कर्ता बताया गया है कहीं चन्द्रमा के उन्नति अवनति के आधार पर तथा पूर्णिमान्त अमान्त के आधार पर मासों का निर्धारण किया गया है। परन्तु वहाँ मास काल के एक अवयव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में हमें मासों का ज्ञान केवल चन्द्र और सूर्य के द्वारा ही होता था। वहाँ मासों के नाम स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं थे परन्तु वेदों का कार्य यज्ञ विधानादि करना है। यज्ञ विधान आदि का विस्तृत कार्य हमें यजुर्वेद में प्राप्त होता है। इसलिए यागादि क्रियाओं को करने के लिए काल के अवयव रूपी मास की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पड़ी। जिसके कारण यजुर्वेद में मास केवल सूर्य और चन्द्र के नाम पर ही आधारित न हो करके उन सूर्य और चन्द्र के काल परिमाण को द्वादश भागों में विभक्त करके उनके मधु माधवादि नाम रखे गये जिनसे वे अलग-अलग मासों के नाम से प्रचलित हो गए। इन्ही द्वादश मासों के विषय में हमें पूर्व में ही ऋग्वेद में "द्वादश प्रधयश्च" और "द्वादशारं न हि तज्जराय" आदि मन्त्रों के द्वारा सूर्य द्वादश मासों का निर्माण सांकेतिक रूप में प्राप्त हो जाता है, जो धीरे-धीरे करके वेदाङ्ग काल में सौर मास चन्द्रमा मास नाम से प्रचलित हो जाते हैं। जिनके मूल बिन्दु वेदों में ही उल्लिखित हैं। वेदाङ्ग काल में चान्द्र और सौर के अलावा सावन और नाक्षत्र मासों का भी वर्णन किया गया है जो कि नक्षत्रों पर तथा सावन तिथियों पर आधारित हैं।

वेदों में हमें पक्ष का उल्लेख शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष के रूप में कहीं भी नहीं मिलता परन्तु वहाँ मासान्त के आधार पर पूर्वपक्ष और परपक्ष (उत्तरपक्ष) का उल्लेख अवश्य मिलता है वहीं दोनों पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के दिवस और रात्रियों के नाम प्राप्त होते हैं। वेदों में उल्लेख है कि पूर्व पक्ष में देवता उत्पन्न हुए और

अपर पक्ष में असुर उत्पन्न। वहीं मुहूर्त-पारिजात में शुक्ल पक्ष देव प्रदान होने से देवकर्मों में तथा कृष्णपक्ष पितरों के लिए मान्य होने के कारण कृष्णपक्ष में पितृकर्मों का विधान किया गया है। तात्पर्य यह हुआ कि शुक्लपक्ष में सभी प्रकार से शुभ कार्यों को किया जा सकता है और कृष्ण पक्ष में केवल पितृदेवों से सम्बन्धित पितृ कार्यों का विधान किया जा सकता है।

वेद-वेदाङ्ग ज्योतिष में मुहूर्त का बहुलता से प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में हमें "मुहूर्त" शब्द क्षणभर के अर्थ में मिलता है। अहोरात्र तीस मुहूर्तों वाला कहा गया है जिसमें पन्द्रह दिन के मुहूर्त तथा पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त माने गये हैं। जहाँ हमें यजुर्वेद में अहोरात्र के तीस मुहूर्तों का वर्णन प्राप्त होता है वहीं हमें तीस मुहूर्तों के अवयव रूप में पन्द्रह प्रतिमुहुर्तों (क्षुद्रमुहूर्त) के नामों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वहीं ऋग, याजुष ज्योतिष में आचार्य लगध ने मुहूर्त के परिमाण को कला, नाड़ी तथा घटी के द्वारा वर्णित किया है। अथर्व ज्योतिष में भी 15 दिवस तथा 15 रात्रि मुहूर्तों का उल्लेख किया गया है। यहाँ मुहूर्त के परिमाण का मापन सूर्य प्रकाश के द्वारा शङ्कु प्रमाण कहा गया है। शङ्कु अर्थात दण्ड, जब प्रातः सूर्योदय होता है तब समतल भूमि पर एक बारह अंगुल लम्बाई वाला शङ्कु को सीधा स्थापित करना चाहिए। जिसके परिणाम स्वरूप अथर्व ज्योतिष में वर्णित रौद्रादि दिवस के पन्द्रह मुहूर्तों को जाना जाता है। इस प्रकार से अथर्व ज्योतिष में मुहूर्तों की विधि बताई गयी है तीनों ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में मुहूर्त काल की सूक्ष्म इकाई के रूप में बताया गया है। जिसमें शुभ-अशुभ मुहूर्तों का वर्णन किया गया है। माङ्गलिक कार्यों का विधान किया गया है। वेद-वेदाङ्ग ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन यागादि कर्म करना जिसके लिए महर्षियों ने ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में सामान रूप से मुहूर्तों का विधान बताया है।

ऋग, यजुर्वेद, अथर्व वेद संहिता एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रचुर मात्रा में गणनात्मक और कलात्मक रूप में संख्याओं का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को रथ चक्र के रूप में प्रस्तुत कर वहाँ अलग-अलग संख्याओं का उल्लेख किया गया है। पृथ्वी के अपारत्त्व के विषय में वर्णन प्राप्त होता है जहाँ की गणितीय संक्रिया गुणज का प्रयोग किया गया है पृथ्वी को वहाँ इन्द्र के प्रभाव से 10 गुना छोटा बताया गया है। वही ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में हमें पुरुष के अंगों का लाक्षणिक रूप में सहस्त्र आदि संख्याओं का उल्लेख मिलता है और इस पृथ्वी से उस विराट पुरुष को दस अंगुल ऊपर बताया गया है। इस प्रकार से अनेकों उद्धरण

हमें गणना के रूप में तथा संख्याओं के रूप में ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। वहीं जब यजुर्वेद में देखते हैं तो वहाँ हमें संख्याएँ सम्वत्सर के सन्दर्भ में, मास के सन्दर्भ में,ऋतुओं के सन्दर्भ में, तिथि के सन्दर्भ में तथा नक्षत्रों के सन्दर्भ में तथा कही आयु तो कही यज्ञों के सन्दर्भ में देखने को मिलता है। यजुर्वेद में ही हमें सम संख्याओं के रूप में, विषम संख्याओं के रूप में, अर्द्ध संख्याओं के रूप में, एक अंकात्मक द्विअंकात्मक तथा तीन अंकात्मक संख्याओं के रूप मे तथा गुणात्मक रूप में अनेक संख्याओं का उल्लेख मिलता है। वहीं दशमलव पद्धति, इकाई से लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्याओं का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार हम अथर्ववेद में देखे तो अथर्ववेद में भी हमें शतम्, सहस्त्र आदि संख्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ हमें ग्यारह का पहाड़ा विपरीत रूप में देखने को मिलता है। इस प्रकार से हमें तीनों संहिताओं में वैदिक गणना पद्धति का समान रूप से उल्लेख प्राप्त होता है जो कि वैदिक ज्योतिष का अद्वितीय भाग है।

वैदिक गणित का प्रथम स्वरूप काल गणना के रूप में वेदाङ्ग ज्योतिष में देखने को मिलता है। इसीलिए हमें ऋग ज्योतिष याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में अनेक गणितीय सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। वेदाङ्ग के तीनों ज्योतिष ग्रन्थों में हमें संकलन (जोड़), व्यकलन (घटा), गुणज (गुणा) तथा भाग आदि तथा त्रैराशिक नियम और उद्धरण प्रचुरता से देखने को मिलते हैं इन तीनों वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थों में हमें एक अंकात्मक, द्वि अंकात्मक तथा तीन अंको वाली संख्याओं का उल्लेख विशेष रुप से प्राप्त होता है। इन सभी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि तीनों वैदिक संहिताओं में वैदिक गणित ज्योतिष का समान रूप से उल्लेख किया गया है। वहीं वेदाङ्ग के तीनों ऋग, याजुष तथा अथर्व ज्योतिष ग्रन्थों में भी गणितीय प्रक्रियाओं का समान रूप से उल्लेख किया गया है। जिससे यह कहना उचित ही होगा कि तीनों ऋग ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष बाहरी आकृति एवं संज्ञा से तो भिन्न-भिन्न प्रतीत हो सकते हैं परन्तु उनके गहन अध्ययन उनके विश्लेषण तथा उनके विषयों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों ज्योतिष ग्रन्थ ग्रन्थ समान है। समान रूप से उनके विषय हैं। कदाचित ऋषियों तथा लेखकों के मत में अन्तर हो सकता है परन्तु कुछ हद तक तीनों ज्योतिष ग्रन्थ एवं तीनों मूल वैदिक संहिताओं में ज्योतिषीय तत्त्व समान रूप से विद्यमान है। तथा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

इस अध्याय में वर्णित वैदिक यज्ञों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा तत्सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्रग्रन्थों एवं वेदाङ्ग (आर्च, यजुष एवं अथर्व) ज्योतिष, तीनों संहिताओं में प्राप्त यज्ञ परक क्रियाओं का ज्योतिषीय दृष्टिकोण से उल्लेख किया गया है। तीनों संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में समान रूप से यज्ञ को प्रजापति तथा प्रजापति से उत्पन्न होने वाला और प्रजापति स्वरूप ही माना गया है। यहाँ श्रौत यज्ञों के विषय में मुख्य रूप से चर्चा की गई हैं। उन सभी श्रौत यज्ञ में अग्निचय, अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, अग्न्याधान, सोम यज्ञ, निरूढ पशुबन्ध, राजसूर् यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, दान आदि कर्म सभी श्रौत यज्ञों के विषय में तीनों वैदिक संहिताओं में यज्ञ का विधान ज्योतिषीय दृष्टि से किया गया है। प्रचुर मात्रा में इनके उद्धरण हमें संहिताओं में प्राप्त होते हैं। यहाँ तक की यज्ञों की संज्ञाएँ निश्चित नक्षत्रों के नामों पर, तिथियों के नामों पर, निश्चित मास, निश्चित सम्वत्सर, निश्चित पक्ष आदि के नामों पर रखा गया है। जिससे ऋग्ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में समान रूप से हमें यज्ञों का विधान देखने को मिलता है।

तीनों वेदों में प्रचलित, वैदिक-यज्ञ पद्धति के विषय में बताया गया है। इसमें श्रौत याग के तीनों- सोम यज्ञ, पाकयज्ञ तथा हविर्यग्य के विषय में बताया गया है। इन तीनों से इतर कुछ अन्य मुख्य यज्ञों के विषय में उल्लेख किया गया हैं जो ज्योतिषीय दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है उन सभी का यहाँ वर्णन किया गया है।

ऋग्वेद में यज्ञ में प्रज्वलित होने वाली अग्नि को मनुष्यों द्वारा तीन स्थानों पर प्रज्वलित करने वाला बताया है। जिनका सम्बन्ध तीन ऋतुओं से कहा गया है। वहीं ऋग्वेद में गार्हपत्य नामक अग्नि का वर्णन किया गया है जो ऋतुओं के साथ तीन प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करता है। वहीं तीनों सवनों प्रातः सवन, मध्यान्ह सवन एवं तृतीय सवन सोमरस निकालने के लिए बताया गया है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में जिन भी यज्ञों का विधान किया गया है उन सभी यज्ञों को किसी न किसी प्रकार ज्योतिषीय विधान के साथ जोड़ा गया है। कहीं यज्ञों को ऋतु के आधार पर, कहीं नक्षत्रों के आधार पर, कहीं सूर्य - चन्द्रादि ग्रहों के आधार पर, कहीं दिशाओं के आधार पर और कहीं मुहूर्त आदि के आधार पर अनेक प्रकार से यज्ञों का विधान बताया गया है।

जैसे अग्न्याधान करने के लिए ज्योतिष विदित सात नक्षत्रों का उपयोग मिलता है। जिन सात नक्षत्रों में अग्न्याधान का विधान किया जा सकता है उनमें से कृतिका, रोहणी, मृगशीर्ष, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराभाद्रपद आदि नक्षत्रों को बताया गया है। वही वैदिक स्रोत यज्ञों में ऋतु के आधार पर चार वर्णों के लिए अलग-अलग ऋतु का विधान किया गया है। यथा ब्राह्मण के लिए वसन्त ऋतु में अग्नि आधान, क्षत्रिय के लिए ग्रीष्म ऋतु में अग्न्याधान, वैश्य के लिए वर्षा ऋतु में अग्न्याधान का विधान किया गया है।

वहीं अग्निहोत्र का सम्बन्ध अहोरात्र से बताया गया है और अहोरात्र के विषय में ज्योतिष से ज्ञान होते हैं। जैसे अग्निहोत्र प्रातः एवं सायंतन् दो बार सन्यासी को जीवन पर्यन्त करना चाहिए। अग्निहोत्र विशेष रूप से जो अनजाने में हुए पाप हैं उनके नाश के लिए किया जाता है। यथा प्रातः काल में अग्निहोत्र रात्रि कृत पापों की क्षीणता के लिए तथा सायंकाल में अग्निहोत्र दिन में किये गये पापों के क्षीणता के लिए बताया है। अग्निहोत्र का समय विशेष रूप से सन्धि काल में बताया गया है। जब प्रथम नक्षत्र तारा आकाश में दिखाई पड़े या रात्रि के प्रथम व द्वितीय प्रहर में या फिर प्रातः जब सूर्य के मण्डल का एक अंश दिखाई पड़े, जब सूर्य ऊपर आ चुका हो, इस प्रकार से गृहस्थ को सन्ध्या पूजा के उपरान्त ही अग्निहोत्र को करना चाहिए। ऐसा विधान अग्निहोत्रियों के लिए कहा गया है।

दर्शपौर्णमास यज्ञ का विधान ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद सभी में अत्यधिक उल्लेख प्राप्त होता है। पौर्णमास यज्ञ का विधान पूर्णमासी तिथि के आधार पर तथा दर्श यज्ञ का विधान अमावस्या के आधार पर किया गया है। इन्ही पूर्णमासी और अमावस्या दोनों ही तिथियों का ज्योतिष में विशेष महत्त्व है। वही वेदों में चातुर्मास यज्ञ के लिए सम्वत्सर का सम्बोधन किया गया है। वर्ष में तीन बार यज्ञ करने से तात्पर्य है कि जो वर्ष में तीन बार यज्ञ किया जाए वही चातुर्मास यज्ञ है। जिसे एक सम्वत्सर रूपी यज्ञ कहा जाता है। सम्वत्सर अर्थात एक वर्ष, एक वर्ष (सम्वत्सर) में बारह मास होते हैं। चार-चार मास में एक-एक यज्ञ होने से उन्हें चातुर्मास तथा एक संवत्सरात्मक यज्ञ माना जाता है।

वैदिक श्रौत सूत्रों के अनुसार अग्निष्टोम प्रत्येक वर्ष के वसन्त ऋतु में अमावस्या या फिर पूर्णिमा के दिन किया जाता है।

श्रौत सूत्रों में राजसूय यज्ञ का विधान है। यह फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में प्रथम दिन किया जाता है जिसमें यजमान पवित्र नामक सोम यज्ञ के लिए दीक्षा लेता है। यह यज्ञ अग्निष्टोम की विधि के समान ही किया जाता है। वही ज्योतिष के आधार पर अश्वमेध यज्ञ के विषय में भी वैदिक श्रौत सूत्रों में अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। अश्वमेध यज्ञ को फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष के आठवें दिन या जेष्ठ मास के इन्हीं दिनों अथवा आषाढ़ मास के दिनों में अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया जाना चाहिए ऐसा कहा गया है।

अन्य स्थान पर चैत्र मास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ को प्रारम्भ करने का विधान भी बताया गया है। वहीं संहिताओं में ज्योतिष विदित दिशाओं के आधार पर यज्ञों का विधान मिलता है। दिशाओं के लिए कहा गया है कि यह दिशाएँ अग्निहोत्र यज्ञ की परिधि हैं। जब यजमान अग्निहोत्र करता है तो उसका मुख उत्तर की ओर होता है। अश्वमेध को करने वाला यजमान सभी दिशाओं को जीतने वाला बताया गया है। वही वाजपेय यज्ञ के द्वारा प्रजापति को ऊर्ध्वा दिशा की और प्राप्त होने वाला बताया गया है। इसी प्रकार अनेक याज्ञिक क्रियाओं के विषय में भी दिशाओं को आधार माना गया है। जैसे पूर्वाभिमुख होकर वेदी बनाई जानी चाहिए, उत्तर एवं पूर्व दिशा की ओर अश्व हवि, पश्चिम दिशा में गोमृग हवि तथा दक्षिण दिशा में पशु हवि रखने के लिए कहा जाता है। वहीं यज्ञ में जितने ऋत्विजों का वर्णन आता है उन ऋत्विजों का विधान भी दिशाओं के आधार पर किया गया है। जैसे जहाँ पूर्व दिशा है वह "होता" है, दक्षिण को ब्रह्मा, पश्चिम को अध्वर्यु तथा उत्तर उद्गाता कहा गया है। इस प्रकार से दिशाओं के आधार पर यज्ञ के अनेक विधान देखने को मिलते हैं जो कि ज्योतिष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक पाकयज्ञों में किए जाने वाले गृह कृत्य भी ज्योतिषीय नक्षत्रों के नामों से सम्बोधित किए जाते हैं। जो कि हमें वैदिक श्रौतसूत्रों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। उनमें से चैत्री गृह कृत्य चित्रा नक्षत्र के आधार पर, चैत्र मास की पूर्णिमा को होता है। वहीं श्रावणी अथवा श्रवणा कृत्य यह श्रावण मास में किया जाने वाला कर्म है। यह श्रावण पूर्णिमासी को सम्पादित किया जाता है। वही अन्य अश्वयुजी नामक गृह कृत्य गौतम ने अपने 40 संस्कारों के अन्तर्गत सात पाक यज्ञों को माना है उन्हीं साथ पाक यज्ञों में आश्वयुजी कृत्य की गणना भी की गयी है। अश्वयुज अर्थात अश्विनी नक्षत्र, अश्वयुज का आयोजन आश्विन मास में पूर्णिमा को किया जाता है। इस प्रकार से ऋग, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद इन तीनों के श्रौत सूत्रों के आधार पर तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के

आधार पर यहाँ यज्ञों का उल्लेख किया गया है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों एकमत होकर यज्ञों का विधान करते हैं परन्तु कहीं-कहीं ऋषियों के मत में अन्तर देखने को अवश्य मिलता है। तीनों वेदों में ज्योतिषीय दृष्टिकोण से जो विश्लेषण किया गया है उसके आधार पर स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में तीनों वेदों में प्राप्त ज्योतिषीय तत्त्व एक समान वैदिक कृत्यों का विधान करते हैं।

प्रथम अध्याय
वैदिक साहित्य में वर्णित मूल ज्योतिषीय तत्त्व एवं उनका संक्षिप्त परिचय

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥[1]

1.1 ज्योतिष परक सामान्य दृष्टिकोण

वेद भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति के साथ-साथ समस्त विद्याओं का मूल आधार तथा सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना गया है।[2] आचार्य सायण ने अपने भाष्य में कहा है कि - इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपायों को बताने वाले ग्रन्थ वेद हैं।[3] जो यागादि कर्म वेदों में वर्णित हैं वे सभी विधियां काल के आश्रित हैं। और काल का विधान ज्योतिष शास्त्र के अधीन है। इसीलिए ज्योतिष शास्त्र को काल विधान शास्त्र भी कहा जाता है।[4] वेदाङ्ग ज्योतिष के एक पद्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो व्यक्ति ज्योतिष को जानता है वह यज्ञों को जानता है।[5] अर्थात वेदों का विषय यज्ञ है और निश्चय ही यज्ञ को जानने वाला वेद को जानने वाला हो जाएगा; अर्थात हमें यदि यागादि वैदिक कर्म करने हैं तो उससे पूर्व हमें ज्योतिष के मुहूर्त, काल परिमाण, ग्रह, नक्षत्रआदि का ज्ञान होना आवश्यक है। यह कहना कोई बड़ी बात नही होगी कि मनुष्य सदा से ही गतिशील और विचारशील रहा है। मनुष्य के मन में अनेक इच्छाएं होती हैं। जिनको जानने के लिए वह बहुत उत्सुक रहता है। जब सृष्टि का आरम्भ हुआ होगा और जैसे जैसे मनुष्य का विकास होता रहा उस

---

1 याजुष ज्योतिष, श्लोक - 3

2 वेदोखिलो धर्ममूलम्..। मनुस्मृति 2.6

3 इष्टप्राप्त्यानिष्टपरिहारयोरलौकिक मुपायम यो ग्रन्थों वेदयति स वेदः। तैत्तिरीयसंहिता, सायणभाष्य

4 वेदाहि यज्ञार्थ मभिप्रवृत्ता कलानुपुर्वाविहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं काल विधान शास्त्रं …...॥ ऋ० ज्यो० 36
याजुष ज्यो०; वहीं - 3
वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदांगत्वं ज्यौतिषस्योक्तमसमात्। वहीं; सिद्धान्तशिरोमणि, ग्रहगणित, मध्यमाधिकार, कालमानाध्याय, श्लोक - 9

5 यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्। ऋ० ज्यो० 36
वहीं; याजुष ज्यो० - 3

समय उसने देखा होगा कि यह सम्पूर्ण प्रकृति बड़ी आश्चर्यजनक है। क्योंकि उसने इस प्रकृति में पहली बार एक चमकते हुए सूर्य को देखा जो सभी को प्रकाशित करता है। प्रतिदिन एक नियम से पूर्व से पश्चिम की ओर आते जाता है।[1] उसी प्रकार रात्रि में चन्द्र को घटते बढ़ते देखता है। किसी रात्रि को चन्द्रमा एकाएक पूर्ण रूप से अदृश्य ही हो जाता है, और किसी रात्रि में चन्द्र अचानक पूर्ण रूप में चमकता हुआ दिखाई देता है। ऐसा लगता है मानो वह नवीन ही उत्पन्न हुआ है।[2] चन्द्रमां के प्रतिदिन नवीन - नवीन रूप में उत्पन्न होने के विषय में प्रायः वेदों में ऋचाएँ उपलब्ध होती हैं।[3] ईश्वर द्वारा निर्मित ये शरीर एक ऐसा तत्त्व है जो प्राकृतिक वातावरण तथा प्राकृतिक तत्त्वों को ग्रहण तथा महसूस कर सकता है। जिस वजह से यह शरीर सर्दी - गर्मी, अनुकूल - प्रतिकूल दोनों ही समान रूप से महसूस करता है। हिमपात होना अथवा बारिश होना इन सभी से ऋतु का ज्ञान, कभी अचानक आकाश में चन्द्र और सूर्य का ग्रहण लग जाना आदि इन सभी को देखकर मनुष्य के मन में इनको जानने की इच्छा हुई होगी। मानसिक प्रश्नों का उठना मनुष्य का स्वाभाव है। मनुष्य के मन में प्रश्न उठते होंगे कि - ग्रह नक्षत्र क्या हैं ? तारे क्यों टूटते हैं ? यह क्यों ? कैसे ? क्या हो रहा है ? और आगे क्या होगा ? आदि अनेक प्रश्न। मनुष्य केवल प्रत्यक्ष हो रही वर्तमान बातों को ही नही अपितु जिन बातों का भविष्य में होने की संभावना है उन सभी बातों को जानने की मन में एक उत्कंठा सी बनी रहती है। जब मानव इन आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति तथा उनके स्वरूप को समझने का प्रयास कर रहा होगा उस प्रारम्भिक मानव के मन की इसी उहा-पोह स्थिति का वर्णन ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में देखा जा सकता है।[4] यह सब देखकर मनुष्य के मन में कभी आनन्द तो कभी आश्चर्य और कभी भय होता है। भयभीत इसलिए होता है क्योंकि वह देखता है कभी अचानक बादल का फट जाना जिससे पृथिवी के विशेष भागों को छति पहुचना, अकस्मात बाढ़ का आना, अ-समय ही आकाश में उल्का पिण्डों का आपस में

---

1. दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, पृष्ट - 2
2. भारतीय ज्योतिष, वहीं, पृ० 3
3. नवो-नवो भवति जायमानो.अह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम।
   भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन प्र चन्द्रमास्तिरतेदीर्घमयुः। ऋग्वेद - 10.85.19
4. को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
   अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव। ऋ० 10.129.6
   इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
   यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद। वहीं - 10.129.7

टकरा जाना जिससे कि मनुष्य के जीवन पर बुरे प्रभाव का पढ़ना आदि। यद्यपि ज्योतिष उस समय एक भिन्न विषय नही था तथापि यह सूक्ष्म और बीज रूप में प्रकृति के आदि से ही रहा है।

1.2 ज्योतिष व्यत्पत्ति

ज्योतिष ग्रन्थों में सूर्यादि ग्रह तथा काल का बोध कराने वाले शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र कहा गया है। **"ज्योतिषां सुर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्"** इसमें मुख्यतः सूर्य आदि ग्रह, नक्षत्र, तारा, धूमकेतु, आकाशीय सौरमण्डल में स्थित ज्योति स्वरूप पदार्थों का परिभ्रमण तथा उनकी स्थिति, गति और उनका शुभ-अशुभता का कथन किया जाना ही ज्योतिषशास्त्र है।[1] ज्योतिषशास्त्र का अन्य नाम ज्योतिः शास्त्र भी आता है, जिसका अर्थ प्रकाश देने वाला या प्रकाश के सम्बन्ध में बतलाने वाला शास्त्र होता है; अर्थात जिस शास्त्र से संसार का मर्म, जीवन - मरण का रहस्य और जीवन के सुख - दुख के सम्बन्ध में पूर्ण प्रकाश मिले वह ज्योतिष शास्त्र है।[2] आप्टे ने ज्योतिष शब्द की व्युत्पत्ति द्युत धातु इसुन् प्रत्यय जोड़ने पर 'ज्योतिः' शब्द बना फिर ज्योतिः या ज्योतिस में अच् प्रत्यय जोड़ने से ज्योतिष शब्द बना "द्यूतेरिसिन्नादेश्चजः"।[3] आचार्य यास्क ने ज्योतिष शब्द की निरुक्ति दीपनार्थक द्युत धातु से आदिवर्ण विपर्यय से दी गयी है। जिसका अर्थ प्रकाश, चमक, दीप्ति, प्रभा, ज्योति आदि होता है।[4] पाणिनीय शिक्षा में ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है - "ज्योतिषामयनं चक्षुः"।[5] यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में ज्योतिष शब्द का अर्थ प्रकाश के अर्थ में स्पष्ट होता है।[6] मैत्रायणी[7] तथा काठक संहिता में भी "ज्योतिष " शब्द ' प्रकाश ' अर्थ में देखा गया है।[8] इस

---

1 शास्त्री नेमीचंद - भारतीय ज्योतिष, पृ०1

2 शास्त्री नेमिचन्द्र, भारतीय ज्योतिष, ज्ञानपीठ - पृ० 33

3 वामन शिवरामआप्टे, संस्कृत - हिंदी कोश, वाराणसी, 2007, पृ० 411

4 अथाप्यादिविपर्ययो भवति, ज्योतिर्घनो बिन्दुबाट्य इति। निरु०.2.1.3

5 पाणिनीय शिक्षा, पद्य.41 - 42

6 ज्योतिष्मतीः प्रशस्तज्योतिः ज्योतिष्कृतम् ज्योति ज्योतिरन्तरस्य कत्री ज्योतिषाम लम्भयित्री भास्वती बहुप्रकाशा ज्वलन्ती अविच्छिन्नप्रकाशा मल्मलभावन्ती महाघोषवती बृहज्ज्योतिःब्रिंहिज्योतिः बोधयन्ती दृश्यंप्रकाशयन्ती जागृति स्वयंप्रकाशात्मना।।" (सं०) नारायण शर्मा सोनटके एवं त्रिविक्रम शर्मा नारायण धर्माधिकारी तैत्तिरीय संहिता (भट्टभास्कर सायणभाष्य प्रथमखण्ड प्रथम भाग, पूना, 1970, पृ० 604, तैत्तिरीय संहिता 1.4.34

7 ज्योतिषमतीं त्वा सादयामि, ज्योतिषकृतम त्वा सादयामि ज्योतिर्विदं त्वा सदयाम्यर्ध्वज्योतिषं.....। मैत्रायणी संहिता 2.13.19

8 ज्योतिषमतीं त्वा सादयामि, ज्योतिषकृतम त्वा सादयामि ज्योतिर्विदं त्वा सदयामि ज्वालंतीम्। काठक संहिता 40.4.22

इस प्रकार से जो शास्त्र भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में होने वाली घटनाओं को जानने समझने तथा जीवन में आने वाली कठिनाइयों और दु:खों को दूर करके अपने प्रकाश से मानवजाति को सन्मार्ग की ओर प्रशस्त करें यही ज्योतिष शास्त्र का कार्य कहा जा सकता है।

1.3 ज्योतिष की उत्पत्ति

आचार्य लगधकृत ज्योतिष का प्राचीनतम ग्रन्थ वेदाङ्गज्योतिष आज हम सभी के सम्मुख उपलब्ध है। परन्तु ज्योतिष शास्त्र के जन्म का पता करना असम्भव सा प्रतीत होता है। नेमीचंद शास्त्री ने अपनी पुस्तक भारतीय ज्योतिष में ज्योतिष के काल का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है।[1] उन्होंने वहाँ - अन्धकार काल, उदय काल, आदि काल, पूर्व मध्यकाल, उत्तर काल, आधुनिक काल या अर्वाचीन काल इत्यादि भागों में विभक्त किया है। परन्तु हम यहाँ अपने विषयानुसार अन्धकार काल, उदय काल और आदिकाल के माध्यम से समझेंगे।

1.3.1 अन्धकार काल

इसमें ई०पू० १०००० वर्ष पूर्व का समय ग्रहण किया है अन्धकार काल (वेदों से पूर्व का काल) यद्यपि अन्धकार युग में ज्योतिष सम्बन्धित समृद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं होता है फिर भी यह कह सकते हैं कि उस काल में अवश्य ही मनुष्य दिन, रात्रि, मास, पक्ष, वर्ष, अयन आदि कालमान से पूर्ण परिचित था। और ये सभी कालपरिमाण वर्ष रूपी सम्वत्सर के अंग माने गये हैं।[2] जो कि ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्तों के अन्तर्गत आते हैं। इन सभी जानकारियों के साथ-साथ सूर्य चन्द्र और ऋतु का ज्ञान भी था।[3] इसलिए यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ज्योतिष विषय प्राक्काल से ही मानव का मार्गदर्शक रहा है। इसी विषय में शंकर बालकृष्ण दीक्षित का कथन हैं कि “आकाशस्थ ज्योतियों के विषय में मानव की रूचि प्राचीन काल से ही थी। परन्तु किसी विषय का शास्त्र बनने में बहुत ही समय लगता है। इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि

[1] नेमिचन्द, भारतीय ज्योतिष, पृ० 42

[2] सम्यग् वसन्ति यत्रर्तु मास पक्ष दिनादयः। प्राज्ञैः कालविशेषोसौ सम्वत्सर इतीरितः।। सिद्धान्त दर्पण - 22.17

[3] नेमिचन्द शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृ० 44

ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों का निर्माण होने में बहुत समय व्यतीत हुआ होगा।[1] बालकृष्ण की यह बातें कहीं ना कहीं अन्धकार और उदय काल की ओर संकेत कर रही हैं। इन सभी तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि अन्धकार काल की ज्योतिष सम्बन्धित मान्यताओं का पता उदय काल और आदि काल के साहित्य से लग जाता है। उदय काल और आदि काल में जिन ज्योतिष सिद्धान्तों को साहित्यिक रूप प्रदान किये गए वे सभी अन्धकार काल में मौखिक रूप से वर्तमान थे।[2] यही कथन डा. श्री प्रकाश सिंह अपनी पुस्तक में उधृत करते हैं।[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अन्धकार काल, वैदिक काल और वेदाङ्ग काल इन तीनों कालों में वेदाङ्ग काल आते-आते ज्योतिष सम्बन्धित तत्त्वों का भली-भांति पूर्ण रूप से बोध होने लग गया था। इस काल में ज्योतिष का अपना एक स्वतन्त्र ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष का निर्माण हो जाता है। इसी विषय में शंकर बालकृष्ण दीक्षित का कथन है कि - "हमारे यहाँ उपलब्ध ज्योतिष ग्रन्थों में अति प्राचीन ग्रन्थ वेदाङ्ग ज्योतिष है। उसमें गणित द्वारा सूर्य और चन्द्रमा की ही स्थिति का विचार किया गया है। उसके बाद का ग्रन्थ अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष होना चाहिए। इसमें संहिता और होरा स्कन्धो का थोड़ा विचार किया गया है। इसके बाद गर्ग, पराशर इत्यादि की संहिता जान पड़ती हैं।[4]

1.3.2 उदय काल

इसमें ई०पू० - १०००१ से ५०० ई०पू० तक का समय (वैदिक समय) ग्रहण किया गया है। उदय काल में जितना भी ज्ञान भंडार हमें प्राप्त हुआ वह सभी एक ही साहित्य में सन्निहित था वह था वैदिक साहित्य। वही समस्त विद्याओं का तथा भारतीय ज्ञान परम्परा का एक मात्र मूलाधार वैदिक संहिताओं को ही माना जाता रहा है, परन्तु उस समय धर्म, दर्शन और ज्योतिष आदि जो सभी शास्त्र हैं वह अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात उनका अपना कोई स्वतन्त्र शास्त्र नहीं था। इन सभी का जो एक ही साहित्य रहा वह उदय काल का वैदिक साहित्य ही रहा[5]। उस काल में आर्यों ने अपने गौरव पूर्ण वैदिक साहित्य को जन्म दिया

1 दीक्षित शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, उत्तर प्रदेश, हिन्दीसंस्थान, लखनऊ, पृ० 7

2 नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृ० 47

3 आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा योगशास्त्र का अन्तरस्सम्बन्ध तुलनात्मक परिशीलन, श्रीप्रकाश सिंह, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, पृ० 37

4 दीक्षित शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, उत्तर प्रदेश, हिन्दीसंस्थान, लखनऊ, पृ० 7

5 ऋग्वेद संहिता – 1/164/48

यद्यपि उस समय की वैदिक संहिताएं, अरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि धार्मिक रचनाएँ मानी जाती हैं परन्तु जब इनका अध्ययन किया जाता है तो इनमें हम देखते हैं ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्प आदि विषयों की चर्चाएं पर्याप्त मात्रा में होती हैं। जो आज हम ज्योतिषशास्त्र को एक पृथक और विशेष साहित्य के रूप में जान और समझ पाते हैं वो इसीलिए क्योकि इसके अनेक विषय पूर्व में ही वेदों में प्राप्त होते है। उदय काल के साहित्य में मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, ग्रहण कक्षा, नक्षत्र, विषुव, नक्षत्रलग्न, दिन-रात का मान और उसकी वृद्धि हानि आदि विषयों पर पहले से ही ज्योतिष की दृष्टि से विचार किया जाने लगा था।[1] यह कहना उचित ही होगा कि अन्धकार काल में जिन जिन विषयों के बारे में तत्कालीन समाज चिन्तन मनन करता था उन सभी चिन्तन और विचारों का गहन अध्ययन करने के पश्चात हमारे ऋषि-महर्षियों उदयकाल में उसे एक साहित्यिक रूप दे दिया जो वैदिक साहित्य कहा जाने लगा।

1.3.3 आदिकाल

इसमें ई०पू० 501 से 500 ई० तक (वेदाङ्ग काल) ग्रहण किया गया है। इस काल में जो सबसे प्रारम्भिक तथा प्रथम रचना हुई वह वेदाङ्गज्योतिष है। इसके दो भाग ऋग ज्योतिष और याजुष ज्योतिष। कुछ ही कालान्तर में अथर्वण ज्योतिष की रचना की गयी इनके अलावा कुछ प्राचीन ज्योतिष के अन्य प्रमाणिक ग्रन्थ भी लिखे गये जैसे –

सूर्य प्रज्ञप्ति- इस ग्रन्थ की भाषा प्राकृत है। इस पर मलय गिरिसूरि ने संस्कृत टीका लिखी है। इसमें सूर्य एवं ग्रहों के विषय में और उनकी गति एवं स्थिति की गणना के लिए आवश्यक गणित का वृहद् वर्णन है।[2]

चन्द्र प्रज्ञप्ति- ज्योतिष ग्रन्थ है जो इसी से मिलता जुलता है। यह सूर्य प्रज्ञप्ति की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। इस ग्रन्थ में छाया साधन के विषय में बताया है जिसमें छाया के आधार पर दिनमान का प्रमाण निकाला जाता है ज्योतिष की दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है।[3]

---

1 आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र तथा योगशास्त्र का अन्तरस्सम्बन्ध तुलनात्मक परिशीलन, श्रीप्रकाश सिंह, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, पृ०37

2 नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्योतिष, पृ० -

3 दहाल लोकमणि, भारतीय ज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, पृ० 58

ज्योतिषकरंडक- ज्योतिष का प्राचीन मौलिक ग्रन्थ है इसका विषय भी वेदाङ्ग जोतिष के समान ही अविकसित अवस्था का है। इसमें नक्षत्र लग्न का प्रतिपादन किया गया है।[1]

ये तीनों काल भिन्न भिन्न समय के प्रतीक हैं और इन के मध्य हजारों सदियों का अन्तर होने के बावजूद भी तीनों कालों में ज्योतिष विषयक मूल तत्त्व बीजरूप में एक समान पाये जाते हैं। जो आज के विकसित ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों के मूल आधार तत्त्व हैं।

1.4 वैदिक साहित्य में ज्योतिष

जब हम वैदिक साहित्य की बात करते हैं तो उसमें मूल ऋगादि संहिताओं से लेकर वेदाङ्ग पर्यन्त साहित्य को समझते हैं। इसी बृहद वैदिक साहित्य में इतस्ततः अनेक मन्त्रों तथा प्रसङ्गों में वैदिक ज्योतिष के अनेक उद्धरण देखने को मिलते हैं। ऋग्, यजु, अथर्व में देखें तो वहाँ हमें प्रकृति का स्वरूप देवत्त्व रूप देखने को मिलता है और उस प्रकृति के द्वारा मानव अपने जीवन को जीने योग्य बनाता है। इसी प्रकृति के अनेक रूपों को जैसे – सूर्य, चन्द्र, शुक्र बृहस्पति, तारा, धूमकेतु, ऋतु, मास, नक्षत्र, रात्रि, दिवस, अहोरात्र, तिथि, अमावस्या, पूर्णिमा तथा मुहूर्त के अनुसार किये जाने वाले अनेक यागादि कर्म, इन सभी प्रकृति रूपी वैदिक देवताओं को ज्योतिषशास्त्र ने अपने मूल तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया है तथा अपना आधार माना है। ज्योतिषशास्त्र ने इन्ही को वर्तमान, भूत तथा भविष्य का आधार बनाया है। कालान्तर में हमें (गणित)सिद्धान्तज्योतिष, संहिता(फलित), होरा(वार्षिकी) आदि ज्योतिष के सभी भाग एक के बाद एक वेदाङ्गपर्यन्त, कालक्रम के अनुसार अपने विस्तार को प्राप्त करते हुए दिखाई देते हैं।

1.4.1 ऋग्वेद में ज्योतिष

ऋग्वेद में ज्योतिष शास्त्रीय सिद्धान्तों के बीज मूल रूप में प्राप्त होते हैं। क्योंकि वेद हमें यज्ञों में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करते हैं।[2] ज्योतिष के ज्ञान के बिना यज्ञ आदि वैदिक कर्म तथा विवाह आदि स्मार्तकर्म

---

1 वहीं, पृ० 58

2 "वेदा हि यज्ञार्थ मभिप्रवृत्ताः"। ऋ० ज्यो०, पद्य - 36

सिद्ध नहीं किए जा सकते।[1] ऋग्वेद की एक ऋचा में यज्ञ को सम्पूर्ण सृष्टि का केन्द्र तथा ब्रह्माण्ड की नाभि बताया गया है।[2] ऋग्वेद में ज्योतिषीय तत्त्व जैसे सम्वत्सर का नाम अनेक ऋचाओ में प्राप्त होता है।[3] सूर्य जो कि सभी ऋतुओं का कारण[4], और सभी भुवनों का आधार माना गया है।[5] और ज्योतिष में सूर्य को एक मुख्य ग्रह के रूप में ग्रहण किया गया है। एक ऋचा में बारह मास, सम्वत्सर रूपी चक्र 360 दिवस तथा 360 रात्रियों को मिलाकर 720 का वर्णन किया गया है।[6] यह पूरा एक सम्वत्सर रूपी वर्ष का काल परिमाण है। तथा अनेक स्थानों पर हेमन्त, शरद ऋतुओं का परिज्ञान होता है।[7]

1.4.2 यजुर्वेद में ज्योतिष

जिन ज्योतिषीय मौलिक तत्त्वों को हम बीज रूप में ऋग्वेद में प्राप्त करते हैं उन्ही मूल तत्त्वों का विकसित रूप हमें यजुर्वेदीय यज्ञ - कर्मकांण्डादि विधियों में प्राप्त होता है। इसी विषय में याजुष में कहा भी गया है कि - "जो ज्योतिष को जानता है वह यज्ञों तथा यज्ञ में होने वाले विधि - विधान को जानने वाला होता है।[8]

1.4.3 सामवेद में ज्योतिष

यह सामगीतियों का एक संकलित ग्रन्थ है। तथापि हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह ज्योतिषीय सिद्धान्तों से अछूता ग्रन्थ है। क्योंकि ज्योतिष एक काल परिमाण को बतलाने वाला काल विधान शास्त्र है।[9]

---

1. विनैतदखिलं श्रौतस्मार्त कर्मण सिध्यती। ना० सं० 1.7
2. अयं यज्ञो भुवनस्य नभिः। ऋग्वेद; 1.164.35
3. सम्वत्सरस्य तदहः परिषष्ठयन्मंडूकाः प्राविषीणं बभूव।
   ब्राह्मणासः सोमिनो वाचक्रमत ब्रह्मकृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
   ऋ० सं०; 7.103.7
4. पुर्वाम नुप्रदिशं पार्थिवानामृतूं प्राशासद्विदधावनुष्ठु। ऋ० सं०; 1.95.3
5. सप्त युन्जन्ति राथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम।
   त्रिनाभिः चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः। ऋ० सं० 1.164.2
6. द्वादश प्रधयश्चक्रचक्रमेकं त्रीणी नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
   तस्मिन्त्साकं त्रिंशत्ता न शंकवोर्पिताः षष्ठीर्न चलाचलासः। ऋ० सं० 1.164.48
7. यत्पुरूषण हविषा देवा....वसंतोस्यात्सीदाज्यम् ग्रीष्म इध्मः शरद्धविहिः। ऋ० सं० 10.90.6
   शतं जीवेम शरद वर्धमानं शतं हेमंतान्छतमु वसन्तान्....। वहीं ऋ० सं० 10.161.4
8. "यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञान् "। याजुष ज्योतिष, पद्य - 3
9. "तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं " वहीं, पद्य - 3

इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल काल के परिमाण का वर्णन प्राप्त होता है।[1] और सामवेद संगीतियों में में जो (सा, रे, गा, मा, मा, पा आदि सुर) उर्ध्व, मध्य, ह्रस्व तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि स्वरों में लगने वाला जो समय है उस समय का परिमाण भी ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थों के द्वारा बताया जा सकता है।

1.4.4 अथर्ववेद में ज्योतिष

अथर्ववेद में ज्योतिष का और विकसित रूप देखने को मिलता है। यहाँ ज्योतिषीय तत्त्वों का मानव जीवन पर पडने वाले शुभ - अशुभ प्रभाव का वर्णन और मानव द्वारा अपने कल्याण की भावना से उनकी प्रार्थना तथा स्तुति की जाती है। जैसे नक्षत्र, यहाँ नक्षत्रों से प्रार्थना की गयी है, जो नक्षत्र अन्तरिक्ष में, वायु मण्डल में, जल मण्डल में, भू मण्डल में, पर्वतों पर तथा सभी दिशाओं में हैं। चन्द्रमा जिनका भोग करता जाता है। वे सभी नक्षत्र हमारे लिए कल्याणकारी हो।[2] इसी प्रकार भिन्न भिन्न स्थानों पर अनेक ज्योतिषीय तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है कहीं ऋतुओं के विषय में तो कहीं दिशाओं[3], दिवा-रात्रि[4], अहोरात्र[5], कहीं कालचक्र के ही विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं।[6]

1.5 ब्राह्मण / आरण्यक में ज्योतिष

इन ग्रन्थों में ज्योतिष के आधार पर किए जाने वाले अनेक शुभ कार्यों का वर्णन प्राप्त होता है और ज्योतिष विषय के अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं। इनमें मन्त्रों और यज्ञों का आदिदैविक, आदिभौतिक, आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक परिशीलन किया गया है। मानव जीवन के कर्त्तव्य, तत्कालीन समाज में प्रचलित धार्मिक रीति-रिवाजों तथा सृष्टि आदि की उत्पत्ति ब्राह्मण ग्रन्थों का विषय रहा है। सबर स्वामी ने अपने

---

1 लोकानामन्त कृत् कालः कालोन्यः कलात्मकः।
स द्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते।। सू० सि०, म०, श्ळोक - 10

2 यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सुभूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयश्चंद्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु।
अथर्ववेद; नक्षत्रसूक्त, काण्ड - 20, सूक्त - 8

3 अथर्व संहिता, काण्ड 12, भूमि सूक्त

4 अथर्व संहिता काण्ड 13, सूक्त 2, मन्त्र 32

5 अथर्व संहिता। काण्ड 19, सूक्त 8, मन्त्र 7

6 अथर्व संहिता। काण्ड 19, सूक्त 8, मन्त्र 7

मीमांसा - भाष्य में ब्राह्मणों में वर्णित विषयों का उल्लेख किया है।[1] वाचस्पति मिश्र ने भी निर्वचन, विनियोग, प्रतिष्ठान, विधि आदि ब्राह्मणों के 4 प्रयोजन बताए हैं।[2] यजुर्वेदीय सभी तैत्तिरीय, शतपथ, कठ, कपिष्ठल, वाजसनेयी आदि सहिंताओं में ज्योतिषीय पदार्थों का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

1.6 वेदाङ्ग साहित्य में ज्योतिष

वेदाङ्ग अर्थात वेदों के अंग, वेद के छह अंग बताए गए हैं। वेदों के गूढ़ अर्थों को जानने के लिए तथा वेदों के यथार्थ स्वरूप को शुद्ध रूप से समझने के लिए षड्वेदांगों की रचना की गई। इन 6 अंगों की सहायता से वेदों के दुर्बोध अर्थों को बोधगम्य बनाया जा सकता है।

षड वेदाङ्ग - (1) शिक्षा (2) कल्प (3) व्याकरण (4) निरुक्त (5)छन्द (6) ज्योतिष, माने गए हैं।[3]

1.6.1 शिक्षा

वेदाङ्गों में सर्वप्रथम शिक्षा का ग्रहण किया गया है।[4] शिक्षा को वेदपुरुष की नासिका कहा गया है।[5] शिक्षा में मूल "शिक्ष्" (विद्योपादाने) धातु भावार्थक "अ " प्रत्यय + स्त्री (टाप) "आ" प्रत्ययों के योग से से निष्पन्न हुआ है (शिक्ष्यते विद्योपादीयते अनया इति शिक्षा)[6]।इसलिए शिक्षा शब्द का अर्थ उपदेश अथवा निर्देश है। स्वर व्यंजन आदि उच्चारण की विधि जिन ग्रन्थों में वर्णित है वह शिक्षा ग्रन्थ कहे

---

1 "हेतुनिर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो वीधिः। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु"। एतत्स्यात्सर्ववेदेषु नियतं विधि लक्षणम्।।
मीमांसा भाष्य; 2.1.8

2 नैरुक्त्यं यस्य मन्त्रस्य विनियोगः प्रयोजनम् प्रतिष्ठानं विधिश्चैव ब्राह्मणं तदिहोच्यते।।
जयदेव विद्यालंकार, वैदिक साहित्य का इतिहास, दिल्ली, 1996, पृ० 111

3 छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात्साङ्कमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। पा० शि० 41 - 42

4 तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्तछन्दयातिषामिति।
अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। मु० उप० 1.1.5

5 शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य..। पा० शि० 42

6 पाणिनीय अष्टाध्यायी। 3.3.103

गये हैं।[1] शिक्षा ग्रन्थों में उच्चारण सम्बन्धित 6 विषय बताए गए हैं। **वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, शाम, संताप** कहे गए हैं।[2] उच्चारण की दृष्टि से वेदों का शुद्ध अध्ययन नितान्त आवश्यक है। अन्यथा शुभ फल प्रदान करने वाला मन्त्र अशुभता को देने वाला हो जाएगा। यथा महाभाष्य में उच्चारण पर बल देते हुए कहा है कि "जहाँ असुरों ने "हे अरयः" के स्थान पर पर "हे लयः" उच्चारण किया शुद्ध उच्चारण की जगह अशुद्ध उच्चारण करने से देवताओं से विजय पाने की जगह वह देवताओं से पराजित हो गए।[3] वहीं अन्य स्थान पर दुष्ट शब्द के प्रयोग से इन्द्र शत्रुओं की विजय न होकर इन्द्र से पराजित हुए।[4]

1.6.2 कल्प

"कल्प" वेद पुरुष के हाथ माने गए हैं।[5] कल्प "कल्प्यन्ते समर्थ्यन्ते यागप्रयोगोत्र"।[6] वेदों में प्रतिपादित यज्ञ विधियों का संक्षिप्त विवेचन करना कल्पसूत्रों का विषय है। वेद विहित कर्मों को क्रमपूर्वक सुव्यवस्थित रूप से कल्पना करने वाला शास्त्र ही कल्प है।[7] कल्प सूत्रों की रचना का मूल उद्देश्य वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित यज्ञ की विधियों को संक्षिप्त एवं सारगर्भित और सुव्यवस्थित करना था। कल्पसूत्र मुख्य रूप से चार प्रकार के हैं। श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, धर्म सूत्र, शुल्व सूत्र, कल्पसूत्र के इन चारों के विधि विधान को जानने के लिए ज्योतिष का ज्ञान अवश्य ही होना चाहिए।

---

1 स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा। सायणाचार्य, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ० 49

2 वर्णः स्वरः मात्रा बल साम संतानः इत्युक्तः शिक्षाध्यायः। तै० उप० 1 - 2

3 तेसुराः हेलयो हेलयो इति कुर्वन्तः पराबभूवुः।
तस्मात् ब्राह्मणेनण न म्लेच्छितवै नापभाषितवै।
म्लेछो ह वा एष यदपशब्दः। म्लेच्छा मा भूमेति।
महाभाष्य, प्रथमो अध्याय, प्रथम पाद, पृ० 15

4 दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमार्थमाह।
स वाग् व्रजो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोपराधा इति। वहीं पृ० 16

5 हस्तौ कल्पोथ पठ्यते..। पा० शि० 42

6 लगध ज्योतिष, सुयशा टीका, पृ० 6
वहीं, शास्त्री हरिदत्त, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, वाराणसी, 1972, पृ० 109

7 कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्। ऋ० प्रा० वर्गद्वयवृत्ति, पृ० 24
द्विवेदि कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, वहीं - पृ० 214

1.6.2.1 श्रौतसूत्र

इनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय वेदों में प्रतिपादित महत्त्वपूर्ण यज्ञ जैसे - दर्शपौर्णमास, चातुर्मास, सोमयाग, अश्वमेध, पुरुषमेध-याग आदि जो अग्नि में सम्पादित होने वाले अनुष्ठान हैं उनका वर्णन किया गया है। इन सभी श्रैतादि यज्ञों को करने के लिए मुहूर्तादि ज्ञान ज्योतिषीय ज्ञान के विना सम्भव नही है।

1.6.2.2 गृह्यसूत्र

इनके अन्तर्गत अग्नि में सम्पादित होने वाले जैसे पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, उपनयन, विवाह, अंत्येष्टि आदि सभी संस्कारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। कौन सा संस्कार किस तिथि, किस प्रहर, किस वार में किया जाये इस प्रकार के सभी विधि-विधान ज्योतिषशास्त्र के द्वारा किये गये हैं।

1.6.2.3 धर्मसूत्र

धर्म सूत्रों में आचार, कर्त्तव्य, व्यवहार, राजधर्म, प्रायश्चित इत्यादि कर्म। चतुर वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, राजा के कर्तव्यों का प्रतिपादन आदि विषयों का वर्णन किया गया है। धर्म सूत्रों में भी हमें अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिनमें वर्णव्यवस्था में चारों वर्णों के लिए वर्णानुसार भिन्न-भिन्न तिथि, भिन्न वासर, भिन्न भिन्न ऋतुएँ तथा भिन्न भिन्न मासों का ज्योतिषानुसार विधान किया गया है।

1.6.2.4 शुल्वसूत्र

इनमें यज्ञवेदी के निर्माण की विधि का विधिवतरूप से प्रतिपादन किया गया है। शुल्व सूत्रों में वर्णित ये सभी विषय प्राचीन भारतीय गणित की प्रौढ़ता के सूचक हैं। ज्यामिति सम्बन्धित कल्पनाओं तथा गणनाओं से सम्बन्धित विषयों की प्रमुखता के कारण यह सूत्र ग्रन्थ वैज्ञानिक महत्त्व के सिद्ध होते हैं। भारतवर्ष में रेखा गणित के प्राचीन इतिहास की जानकारी के लिए शुल्व सूत्रों का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है।[1] ये शुल्व सूत्र केवल यजुर्वेद में ही प्राप्त होते हैं। शुक्लयजुर्वेद से संबद्ध कात्यायन शुल्व सूत्र

1 उपाध्याय बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 341

तथा कृष्णयजुर्वेद के छः शुल्व सूत्र मिलते हैं। जिनके नाम हैं बौधायन, आपस्तंभ, मानव, मैत्रायणी, वाराह तथा वाधूल।[1]

1.6.3 व्याकरण

व्याकरण का कार्य पदों के प्रकृति और प्रत्यय का विवेचन करना है। शब्दों के शुद्ध रूप के लिए पदों का प्रकृति तथा प्रत्यय में विभाग करके शुद्ध शब्द का आहरण करना व्याकरण शास्त्र का उद्देश्य है। यह वैदिक शब्दों को शुद्ध रूप में प्रयोग कर तथा शब्दों के शुद्ध उच्चारण से मनुष्यों के पुण्य को संचित करता है।[2] व्याकरण में यदि ज्योतिष के सन्दर्भ में देखें तो यहाँ भी अनेक स्थलों पर पाणिनीय ने प्रसंगानुसार ज्योतिषशास्त्र विषयक संज्ञा अथवा पदों का यथास्थान उल्लेख किया है जो सूत्रात्मक रूप में प्राप्त होते हैं। जैसे- वर्ष के लिए "वर्शल्लुक च"[3], पौर्णमासी के लिए "साऽस्मिन् पौर्णमासीति"[4], मुहूर्त के लिए "लिङ्चोर्ध्व मौहूर्तके"[5], नक्षत्रों में पुष्य तिष्य के लिए "पुष्यतिष्यौ नक्षत्रे"[6], "नक्षत्रेण युक्तः कालः"[7], "छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्"[8], "फाल्गुनीप्रोष्ठ पदानाञ्च नक्षत्रे"[9] मासों के लिए "विभाषा फाल्गुनीश्रवणाकार्तिकीचैत्रीभ्यः"[10], "विशाखयोश्च"[11], ग्रह के लिए "विभाषाग्रहः"[12] इस प्रकार से ज्योतिष के अनेकों प्रसङ्ग व्याकरण में देखने को मिलते है।

---

1 ऋषि उमाशंकर शर्मा, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा, भारतीय अकादमी, वाराणसी, 1999, पृ० 92

2 सोनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योग्विद् दुष्यति चापशब्दैः। महाभाष्य, प्रथमो अध्याय, प्रथम पाद, पृ० 18

3 पाणिनीय अष्टाध्याय, 5/1/88

4 पाणिनीय अष्टाध्याय, 4/2/21

5 पाणिनीय अष्टाध्याय, 3/3/9

6 पाणिनीय अष्टाध्याय, 3/1/116

7 पाणिनीय अष्टाध्याय, 4/2/3

8 पाणिनीय अष्टाध्याय, 1/2/61

9 पाणिनीय अष्टाध्याय, 1/2/60

10 पाणिनीय अष्टाध्याय, 4/2/23

11 पाणिनीय अष्टाध्याय, 1/2/62

12 पाणिनीय अष्टाध्याय, 3/1/41

1.6.4 निरुक्त

वैदिक शब्दों का निर्वचन करना ही निरुक्त का प्रतिपाद्य विषय है। आचार्य सायण के अनुसार वेदार्थ ज्ञान के लिए स्वतन्त्र रूप से पदों का संग्रह करना ही निरुक्त है साथ ही साथ अर्थानुसार निर्वचन करना निरुक्त का प्रधान उद्देश्य है।[1] मन्त्रों में प्रयोग हुआ शब्द कितने अर्थों को द्योतित करता है इसको जानने के लिए निरुक्त का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है। निरुक्त का कार्य पदों की व्युत्पत्ति तथा निरुक्ति को करना है[2]। ज्योतिषीय अनेक पदों की निरुक्ति उनका उल्लेख हमें निरुक्त में भी देखने को मिलता है।[3] जैसे सप्त ऋषियों का उल्लेख, दिन-रात्रि पक्ष-अयन[4] आदि का उल्लेख और युगसहस्र अहोरात्र[5] आदि अनेक पदों का वर्णन एवं उनकी व्युत्पत्ति वहाँ देखने को मिलती है।

1.6.5 छन्द

वैदिक मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और लयबद्धत्ता के लिए वेदाङ्ग रूपी छन्द शास्त्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। सभी वैदिक मन्त्र छन्दबद्ध हैं। वेदों में छन्दों की महत्ता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वेदों में जो सावित्रि मन्त्र है वह सावित्रि के लिए है। परन्तु सावित्रि मन्त्र गायत्री छन्द में होने के कारण गायत्री मन्त्र के नाम से ही विख्यात हो गया। गायत्री छन्द में 8 अक्षर तथा तीन पद होते हैं इसीलिए गायत्री छन्द को त्रिपदा भी कहा गया है। यथा "तत्सवितुर्वरेण्यम्" में सात अक्षर हैं, इसे 8 अक्षर पूरा करने के लिए यहाँ पर "वरेण्यम" के स्थान पर "वरेणिअम्" का प्रयोग किया गया है। इससे छन्द पूर्ण होगा और उच्चारण सार्थक हो जाएगा।[6]

1.6.6 ज्योतिष

ज्योतिष वैदिक यागादि कार्यों को उचित समय पर उचित मुहूर्त में करने का विधान करता है। कौन से मुहूर्त में, कौन से पक्ष में, कौन से मास में, किस ऋतु में, वैदिक कार्यों का विधान किया जाए ये सभी

---

1 अर्थावबोधे निर्पेक्षतया पदजातम यत्र उक्तं तत् निरुक्तम्। हरिदत्त शास्त्री, ऋग्वेद भाष्यभूमिका, वाराणसी, 1972, पृ० 125

2 वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनासौ।
धातोस्तदर्थादि शयेन योग तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्। निरु० पृ० 21

3 सप्तऋषीणानि ज्योतींषि। नीरु० 10.26

4 एवमेव तत्र दिनरात्रिपक्षायनादीनाम। 14/8-9

5 युगसहस्रान्त महब्रह्मणो विदुः रात्रि युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ' इति। 14/4

6 तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्। ऋ० सं० 3.62.10

ज्योतिष आधारित माने जाते है। ज्योतिष वेद रूपी पुरुष का नेत्र माना गया है।[1] यह वैदिक यज्ञ सम्पादन हेतु काल शुद्धि का निर्धारण करने वाला शास्त्र है इसीलिए इसे काल विधान शास्त्र भी कहा गया हैं।[2]

1.6.6.1 वेदाङ्गज्योतिष

जैसे ही वेदाङ्ग ज्योतिष का नाम आता है वैसे ही मानस पटल पर आचार्य लगध मुनि का नाम आ जाता है और वे वेदाङ्ग ज्योतिष में लिखते हैं कि - **कालज्ञानम प्रवक्ष्यामि।**[3] लगधाचार्यकृत वेदाङ्ग ज्योतिष के वर्तमान में दो संस्करण प्रचलित एवं उपलब्ध हैं। जिनमें से एक आर्च संस्करण जिसे ऋगज्योतिष भी कहा जाता है। दूसरा याजुष संस्करण इसे याजुष ज्योतिष कहा जाता है। इन दोनों प्राचीन ग्रन्थों के अलावा विषय तथा भाषा की दृष्टि से विद्वानों ने अथर्व ज्योतिष को थोड़ा अर्वाचीन माना है। परन्तु विद्वानों ने अथर्व ज्योतिष को भी वेदाङ्ग ज्योतिष के रूप में स्वीकार किया है।[4]

1.6.6.1.1 आर्च ज्योतिष

ऋग्वेद से सम्बन्धित लगधकृत आर्च ज्योतिष में 36 पद्य हैं। इस पर आचार्य सुधाकर ने स्वयं के ही नाम से संस्कृत में सुधाकरभाष्य किया है।[5] वेदाङ्ग ज्योतिष को कैलेण्डर पद्धति का मूल भी माना जा सकता सकता है। वेदाङ्ग ज्योतिष पर लिखी गयी टीकाओं के विषय में यदि हम देखें तो अनेक विद्वानों ने इस पर अपनी लेखनी चलायी है जिनका उल्लेख निम्न लिखित है -

- सर विलियम्स जोन्स तथा कोलब्रूक ने इसके दो पद्यों को लेकर दक्षिणायन की चर्चा की है और उस आधार पर वेदों के काल निर्धारण का प्रयास किया।
- १८३४ में कैप्टन जर्विस के द्वारा इस ग्रन्थ का एक पद्य उद्धृत कर समय को नापने की भारतीय पद्धतियों का वर्णन किया है।

---

1 ज्योतिषामयनम चक्षुः। पा० शि० 41

2 वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्व्या विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥ वेदाङ्ग ज्योतिष, याजुष, श्लोक - 3

3 कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मनः। वेदाङ्ग ज्योतिष, आर्च, 2

4 अथर्ववेदीय ज्योतिषं, महर्षि अभय कात्यायन, भ्रमभन्जनी टीका, पृ० 3,

5 इति सुधाकरभाष्यसहितमार्चज्यौतिषम्। वेदाङ्ग ज्योतिष, आर्च, पृ० 305

- प्रोफेसर ए . वेबर ने इस ग्रन्थ का आलोचनात्मक संस्करण बनाने का प्रयास किया परन्तु वे भी मात्र कुछ पद्यों की ही व्याख्या कर सके।
- १८७७ में थीबो ने Journal of Asiatic Society of Bengal, Vol . 47, part (i) के ४११-३७ पृष्ठों पर वेदाङ्ग ज्योतिष के कुछ पद्यों की व्याख्या की। परन्तु कुछ अधिकांश कठिन पद्य विना व्याख्या के ही रह गये। उन्होंने पद्यों का न तो कोई क्रम बनाया और दूसरे न ही उन्हें कोई नम्बर दिया।
- १८८४ के अन्तर्गत एच.के. गोडबोले ने धार्मिक क्रियाओं को ठीक समय पर निष्पन्न करने के लिए कैलेण्डर निर्माण की योजना बनायी और आधार रूप में लगध ज्योतिष को माना। परन्तु इसके पद्य व विधि की कोई भी व्याख्या प्रस्तुत नहीं की।
- १८९६ में, भारतीय गणित तथा खगोल विद्या के ज्ञाता पण्डित बालकृष्ण दीक्षित ने, मराठी भाषा में वेदाङ्गज्योतिष के कुछ पद्यों का प्रयोग कालनिर्धारण हेतु किया, जिसका उल्लेख भारतीय ज्योतिष शास्त्र में मिलता है। इसका हिन्दी अनुवाद शिवनाथ झारखण्डी ने किया है। लेकिन अनेक महत्त्वपूर्ण पद्य दीक्षित महोदय द्वारा छोड़ दिये गए।
- सर्वप्रथम १९०७ में लाला छोटेलाल, ने इसका क्रमबद्ध, पद्यों को क्रमानुसार संख्यायुक्त कर, अंग्रेजी अनुवाद व व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने व्याख्या का नाम बार्हस्पत्य रखकर इसे Hindustan Review नामक समाचार पत्र में प्रकाशित किया।
- 2008 में नाग पब्लिशर्स से प्रथम संस्करण 2008 में लगध ज्योतिष (याजुष व आर्च संस्करण) "सुयशा" हिन्दी टीका सहित प्रकाशित की गयी है।

1.6.6.1.2 याजुष ज्योतिष

दूसरा यजुर्वेद से सम्बन्धित याजुष ज्योतिष में 43 पद्य उल्लिखित हैं। इस पर भी आचार्य सुधाकर ने अपना सुधाकरभाष्य किया[1] और साथ ही साथ एक और अन्य आचार्य सोमाकर हुए उन्होंने भी स्वयं के नाम

1 इतिसुधाकरद्विवेदिकृतं ज्योतिषशास्त्र भाष्यं। वहीं; याजुष, पृ० 296

से ही सोमाकर भाष्य किया। शेष जो आर्च ज्योतिष पर विद्वानों ने टिकायें व्याख्याएं की हैं वही व्याख्या व टीकायें याजुष ज्योतिष की भी समझनी चाहिए।

1.6.6.1.3 अथर्वण ज्योतिष

अथर्ववेद से सम्बन्धित अथर्वण ज्योतिष माना जाता है क्यूकि इसकी विषय पद्धति अथर्ववेद पर आधारित है और यह फलित से सम्बन्धित है। इसमें चौदह प्रकरण तथा 162 श्लोक हैं। इसका संवाद पितामह काश्यप से प्रारम्भ होता है। इसका विषयस्वरूप – कालविभाजन, मुहूर्त, तिथि- नक्षत्र- वार- करण- योतारा-चन्द्रबलाबल[1] और ग्रहों[2] का वर्णन किया गया है।

सभी वेदाङ्गों की रचनाएँ सूत्रात्मक रूप में प्राप्त होती हैं। उसी का एक उदाहरण हम वेदाङ्ग ज्योतिष के रूप में देख सकते हैं। संक्षेप एवं सूत्रात्मक रूप में उनके प्रस्तुतीकरण करने का मुख्य उद्देश्य विस्तृत विषय और उनके सिद्धान्तों को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करना है। पुरातन ऋषि महर्षियों के द्वारा सूत्रात्मक रूप में वर्णन किए जाने से आज यह आधुनिक विद्वानों के समक्ष क्लिष्ट एवं अस्पष्ट सा हो जाता है। जिन का अर्थ लगाना दुरूह सा प्रतीत होने लगता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का भी यही कहना है कि "उस युग की बातें इतनी अज्ञात है कि वेदाङ्ग ज्योतिष के श्लोकों का रहस्य बताना आज भी विद्वानों के लिए एक विषम समस्या है"।[3]

1.7 वैदिक साहित्य में नवग्रह

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं प्राचीन वेदाङ्ग ज्योतिष में मूल रूप में विद्यमान नव ग्रहों में और चन्द्रमा का उल्लेख वैदिक संहिताओं में सैकड़ों स्थानों में है।

---

1 तिथि रेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्।।
द्वात्रिंशत् (२) योगस्तारा षष्टिसमन्विता।
चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्रबलाबलम्।। शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष 91-92, पृ० 140

2 आदित्यसोमौ भौमश्च तथा बुधबृहस्पती।
भृगुः शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपाः ।। शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष 93, पृ० 141

3 उपाध्याय बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006, पृ० 375

ऋग संहिता में एक स्थान पर जिसमें कि 34 प्रकार के पिण्डों व ज्योतिष पिण्डों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें सम्भवतः सूर्य ग्रह चन्द्र ग्रह 5 तारा ग्रह तथा 27 नक्षत्रों का समावेश किया होगा इन सभी में से एकमात्र सूर्य ही समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला प्रकाश पुंज ग्रह है।[1] अथर्वसंहिता के एक मन्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि अथर्वसंहिता काल में कुछ आकाशस्थ पदार्थों के लिए ग्रह शब्द का प्रयोग होने लगा था।[2] राहु सहित चन्द्रमा ग्रह कल्याण कारक हो यह वाक्य चन्द्र सूर्य ग्रहण कारक ग्रहों के उद्देश्य से और मन्त्र में आये हुए “दिविचर ग्रह कल्याण कर हों ”आदि वाक्यों से शुक्र आदि ग्रहों के उद्देश्य से कहे गये होंगे।

1.7.1 “ग्रह” शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

ग्रह शब्द “ग्रह्” धातु अच् प्रत्यय के योग से सामान्य रूप से इसका अर्थ “जो प्राणियों को उनके कर्मानुसार” फल प्रदान करते हैं वे ग्रह हैं – गृह्णाति फल दातृत्वेन जीवान इति” “गृह्णाति गति विशेषान् इति”।[3] यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण में ग्रह शब्द को ग्रहण करने तथा यज्ञपात्र के अर्थ में लिया है जैसे – “देवताओं ने यज्ञ से पूर्व सोमलता को खोजकर, जिन यज्ञ पात्रों में उनको (सोमलता के) रस को रखा उन्हें ग्रह कहा गया। और पुनःसम्यग ज्ञान द्वारा देवताओं ने उस सोम रस को ग्रहण किया” इस प्रकार से प्रस्तुत वाक्यों में यज्ञ पात्र और ग्रहण करने की विधि दोनों ही ग्रह शब्द कही गयी हैं।[4] वहीं शतपथ में देवता ऐन्द्रवायव ग्रह को, अध्वर्युः महदुक्थ ग्रह तथा महाव्रतीय ग्रह को पात्र के रूप में ग्रहण करते हैं। ग्रहण

---

1 शर्मा पुनीता; लगध ज्योतिष, सुयशाटीका, पृ० 46

2 उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाछं नो दिविचराग्रहाः।। अथ० सं० 19.9.7
सन्नो भुमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हतंच यात्।। वहीं - 19.9.8
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु।। वहीं - 19.9.9
शन्नो ग्राहश्चान्द्रमसाः शमादित्याश्च राहुणा।
शन्नो मृत्युः धूमकेतुहुः शं रुद्रास्तिग्म तेजसः।। वहीं - अथ० सं० - 19.9.10

3 शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष, अध्याय-2, पृ० 186 खोजकर

4 सोममन्वविन्दन् यथाभिज्ञाय तनूर्व्यगृह्णात।
ते ग्रहा अभवन्। तद्ग्रहाणां ग्रहत्त्वम् तै० ब्रा०1.3.12

करने के कारण इसका नाम ग्रह हुआ।[1] कोश ग्रन्थों में ग्रह शब्द को ग्रहण करना, पकड़ना, रोकना आदि अर्थों में मानते हैं।[2]

1.7.2 ऋग्वेद संहिता में सूर्य

वेदों में सूर्य की उत्पत्ति विराट पुरुष के नेत्रों से बताई गई है।[3] ज्योतिष में सूर्य को विशिष्ट ग्रह के रूप में स्वीकार किया गया है। सूर्यग्रह ज्योतिष का एक मुख्य तत्त्व है और ज्योतिष शास्त्र की व्युपत्ति में भी सर्वप्रथम सूर्य को ही ग्रह के रूप में रखा गया है यथा - "ज्योतिषां सूर्यादि ग्रहाणां बोधकम शास्त्रं "। ऋग्वेद में सूर्य का अनेक ऋचाओं में वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में सूर्य को एक मार्गी कहा गया है जो हमेशा एक ही मार्ग पर चलता रहता है और वह अविनाशी चक्र घूमता रहता है उसे सूर्य का नेत्र भी बताया गया है, जिस पर सम्पूर्ण भुवन स्थित है, सूर्य को ब्रह्माण्ड में स्थित सभी भुवनों का आधार माना गया है।[4] यदि इस मन्त्र में यहाँ सूर्य को एक मार्गी कहा गया है तो हम इससे यह समझ सकते हैं कि सूर्य का यह मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाला मार्ग होगा। इस सूर्य के एक मार्गी होने की पुष्टि तैत्तिरीय ब्राह्मण के इस मन्त्र से हो जाती है। कि "आदित्य (सूर्य) पूर्व दिशा से चलता है "।[5] वहीं अन्य मन्त्र में सूर्य के प्रति कहा गया है कि- एक चक्र वाले रथ में सात (घोड़े) जोते जाते हैं। (परन्तु) सात नामों का एक ही घोड़ा (रथ) खींचता है। और उस चक्र में 3 नाभियां हैं। वह अक्षय और अप्रतिबन्ध है और उसी के आधार पर सब भुवन स्थित हैं।[6] यहाँ जो रथ का द्योतक है वह सूर्य के विषय में कहा गया है और उस उस रथ के जो सात अश्व हैं उन्हें सूर्य की सात रश्मियां समझ सकते हैं। जो चक्र में तीन नाभियों का वर्णन

---

1 ते देवा अभ्यसृज्यन्त...पात्रैर्व्यगृह्णत तस्माद्ग्रहा नाम। श० ब्रा० 4.1.3.5
तमध्वर्युग्रहेण गृह्णाति। यद्गृह्णाति तस्माद्ग्रहस्तस्मिन्नुद्गाता...। वहीं, श० ब्रा० 10.1.1.5

2 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत - हिन्दी कोश, पृ० 358

3 चक्षुषो सूर्जो अजायत।। ऋ० सं० 10.90.14

4 सनेमि चक्रमजरं विवावृ तउत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पितम भुवनानि विश्वा। ऋ०सं० 1.164.14

5 आदित्यया पूर्वया प्रचरति मरुत्योत्तरा। तै० ब्रा०; 1.8.3.2

6 सप्त युञ्जन्ति राथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम्।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः।। ऋ० सं० 1.164.2

किया गया है। उन्हें वसन्त, ग्रीष्म, शरद इन तीन ऋतुओं को समझ सकते हैं। साथ ही साथ सूर्य को सभी भुवनों का आधार तथा अक्षय कहा है।

1.7.3 यजुर्वेद संहिता में सूर्य

जहाँ ऋग्वेद में सूर्य को अविनाशी और सभी भुवनों का आधार माना गया है वही यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में सूर्य के लिए कहा गया है कि वह उस अविनाशी ब्रह्म के शासन में स्वीकार किया जाता है।[1] वही शपथ में अन्य मन्त्र में कहा गया है कि सूर्य की आयु दबती नहीं है।[2] अर्थात सूर्य की कोई नियत आयु नहीं है। सूर्य की उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है कि सूर्य स्वयं ही उत्पन्न हुआ है इसलिए वह सर्वोपरि है और सब कुछ है।[3] यजुर्वेद में सूर्य के स्वरूप और स्थिति तथा गति का भली प्रकार वर्णन प्राप्त होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक जगह सूर्य के लिए कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत सूर्य से घिरा हुआ है[4] और यही बात हमें कहीं ना कहीं ऋग्वेद के उस मन्त्र में देखने को मिलती है जहाँ सूर्य को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक बताया गया है अर्थात पूरे ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य स्थित है और पूरा जगत उस सूर्य से घिरा हुआ है। और ज्योतिष में भी जब सौर मण्डल को देखते हैं तो वहाँ भी सूर्य सभी ग्रहों से घिरा हुआ है और सभी के मध्य में स्थित रहता है। इस प्रकार कहीं ना कहीं सभी मन्त्रों में साम्यता देखने को मिलती है। यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में सूर्य और आदित्य दोनों ही एक दूसरे के पर्याय रूप हैं इसलिए यह दोनों एक ही हैं।[5] आदित्य शब्द की व्युत्पत्ति को सूर्य सूर्य अर्थ में ही ग्रहण किया जाता है।[6]

---

1 एतस्य वाक्षरस्य प्रशासने गार्गी सूर्याचन्द्रमसौविधृतौ तिष्ठत ...। श० ब्रा० 14.6.8.9

2 वहीं श० ब्रा० 6.7.2.2

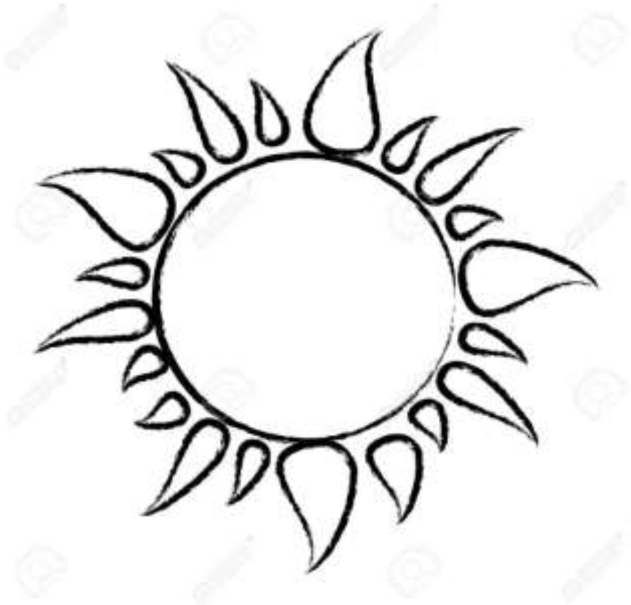
3 श० ब्रा० 1.9.3.16
वहीं - श० ब्र०; 4.1.1.23

4 समावर्ति पृथिवी। समुषाः। समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। तै० ब्रा; 2.6.6.5

5 असौ वाआदित्यः सूर्यो। श० ब्रा० 9.4.2.23

6 आदित्यः कस्माद्आदत्ते रसानादात्ते भासं ज्योतिषामादीप्तो भासेति वादितेः पुत्र इति वा। निरुक्त; 2.13.3





सूर्य का दैविक तथा भौतिक स्वरूप

1.8 वैदिक संहिताओं में सूर्य के लिए प्रयुक्त आदित्य नाम

स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेदों में वर्णित सूर्य रूपी आदित्य द्वादश संज्ञाओं में विभक्त होकर द्वादश मासों, छः ऋतुओं, उत्तरायण दक्षिणायन तथा दिशा आदि का निर्माण करता है और उन सभी का संचालन करता है।

आदित्य सूर्य का ही पर्यायवाची शब्द माना गया है और सूर्य को ही आदित्य कहा गया है। आदित्य परक मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। आदित्य को सम्पूर्ण जगत का नियन्त्रक कहा गया है।

1.8.1 ऋग्वेद में आदित्य

ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि "आदित्य गण सम्पूर्ण जगत के धारण कर्ता हैं।[1] यह "आदित्य" शब्द कुछ स्थानों पर "एकवचन" में तथा अधिकांश स्थलों पर "बहुवचन" में प्राप्त होता है। यह अदिति के पुत्र कह गए हैं। इसीलिए अष्टाध्यायी में आपत्यर्थक "अण्" प्रत्यय लगाकर आदित्य कहा गया है।[2] ये आकाशस्थ देवता हैं। इनकी संख्या सभी ग्रन्थों में अलग-अलग बताई गई हैं। ऋग्वेद में इनकी संख्या कहीं छः, कहीं सात तथा कहीं आठ बताई गई है।[3] आचार्य सायण ने इनकी संख्या अपनी ऋग्वेदभाष्य भूमिका में 8 बताई है।[4]

---

1 "धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था"। ऋ० सं० 2.27.4

2 "दित्यदित्यादित्यक्त्युत्तर पदाण्य"। अष्टध्याय 4.1.85

3 छः संख्या। ऋ० सं० 2.27.1
सात संख्या। वहीं, ऋ० सं० 9.114.3
आठ संख्या। वहीं, ऋ० सं० 10.72.8

4 "मित्रश्च वरुणश्च धाता च अर्यमा च अंशुश्च
भगश्च इन्द्रश्च विवश्वांश्च इत्येते"। ऋग्वेद संहिता सायणभाष्य- 2 / 27 / 1

1.8.2 यजुर्वेद में आदित्य

तैत्तिरीय एवं शतपथ ब्राह्मण में सूर्य तथा आदित्य का वर्णन एक साथ किया गया है।[1] शतपथ का मत है कि आदित्य और सूर्य एक ही है।[2] एक स्थल में सूर्य की 360 प्रकार की किरणें मानी गई हैं।[3] एक अन्य स्थल पर वर्णन है कि आदित्य 360 नाव्य से घिरा हुआ होता है और यह 360 नाव्य उसमें गिरती है।[4] इस प्रकार यहाँ सम्भवतः सूर्य की 360 रश्मियों रूपी दिनों की ओर संकेत किया गया है। जो ऋषि ने सूर्य की परिधि की कल्पना को ध्यान में रखकर यह कथन किया होगा। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य की किरणों में से एक किरण को ' वृष्टिवह्नि कहा गया है।[5] वृष्टिवह्नि का अर्थ है - वृष्टि प्रदान करने वाली किरण। यास्क की निरुक्ति ' रसानादत्ते ' के अनुसार रस को ग्रहण करने वाला ' आदित्य ' कहलाता है। इस प्रकार यहाँ सूर्य की रश्मियों की जलवृष्टि में भूमिका का संकेत दिया गया है। सम्पूर्ण किरणों के सदा गतिशील होने के कारण इसे ' आयु ' के नाम से भी कहा गया है।[6] यजुर्वेद की अन्य संहिता ग्रन्थों में भी सूर्य की किरणों के लिए 'आयु ' नाम का प्रयोग किया गया है।[7] यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में आदित्यों की संख्या कहीं 8 कहीं 12 बताई गई है।[8] तैत्तिरीय संहिता के एक मन्त्र में अदिति से आदित्य की उत्पत्ति का कथन प्राप्त होता है।[9] तैत्तिरीय में ही अदिति के आठ पुत्रों के नाम - धाता, अर्यमन,मित्र, वरुण, अंश,भग, इन्द्र, और विवस्वान।[10] वहीं शतपथब्राह्मण में बारह आदित्यों का (धाता, मित्र, आर्यमा, पूषा, शक्र, वरुण, भग, त्वष्टा, विवस्वान, सविता, अंशुमान तथा विष्णु वर्णन प्राप्त होता है।[11]

---

1 सोमं राजानम् अवसेऽग्निमन्वारभामहे।
आदित्यान्विष्लुं सूर्य ब्रह्माणंच बृहस्पतिं स्वाहा। श० ब्रा० 5.2.2.8
सूर्य इति त्रीणि। आदित्य इति त्रीणि। वहीं, तै० ब्रा० 3.10.9.13

2 असौ वाऽआदित्यः सूर्यो। श० ब्रा० 9.4.2.23

3 षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यस्य रश्मय....। श० ब्रा० 10.5.4.4

4 षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यं नाव्याः..। श० ब्रा० 10.5.4.14

5 षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यं नाव्याः...। श० ब्रा० 10.5.4.14

6 नामेत्यायुवाना इव हि मरीचयः...। श० ब्रा० 9.4.1.8

7 वाज० सं० 18.39;
वहीं, तै० सं० 3.4.7.1

8 सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, दिल्ली, 1982, पृ० 338

9 अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनम पचत्...। तै० सं० 6.5.6.1

10 तै० ब्रा० 1.1.9.1-3

11 स द्वादश द्रप्सान् गर्भ्यभवत्। ते द्वादशादित्याः असृज्यन्त।
तान् दिव्यु पादयात्। यजुर्वेद परिशिष्ट-1 पृ० 1.11, पद- 91-92

1.8.3 अथर्ववेद में आदित्य

अथर्व में आठ आदित्यों का उल्लेख प्राप्त होता है और उनकी उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि- "सत्य से सर्वप्रथम आठ प्राणियों की उत्पत्ति हुई। हे इन्द्रदेव ! जो दिव्य ऋत्विज् हैं, वे भी आठ है। आठ पुत्रों को उत्पन्न करने वाली अदिति अष्टमी की रात्रि में हविष्य को ग्रहण करती है ॥ [वैज्ञानिकों के अनुसार आठवें क्रम पर प्रकृति चक्र पूरा होता है। पीरियाडिक टेबिल, तत्त्व तालिका में संगीत के स्वरों में सूर्य के स्पैट्रम में आठवें से नया चक्र प्रारम्भ हो जाता है। यह प्रकृति का अदिति का अंक माना जाता है।[1]

द्वादश आदित्य

क्रम	दित्य गण	यजुर्वेदीय तैतिरीय-शतपथ
1	मित्र	धाता
2	अर्यमा	अर्यमा
3	भग	मित्र
4	वरुण	वरुण
5	अंशु	अंशुमान
6	दक्ष	भग
7	इन्द्र	इन्द्र / शक्र
8	मार्तण्ड	विवस्वान
9	-	सविता
10	-	त्वष्टा
11	-	पूषा
12	-	विष्णु

[1] अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रर्विजो दैव्या ये।
अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमी रात्रिमभि हव्यमेति ॥ अथर्ववेद- 8.9.21

1.8.4 तुलनात्मक विश्लेषण

वैदिक संहिताओं में सूर्य का उल्लेख प्रचुर मात्रा मिलता है यद्यपि यहाँ सूर्य का ज्योतिष शास्त्र में वर्णित सूर्यग्रह के सामान ग्रह कहने का उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋग, यजु, अथर्व में वर्णित सुर्यपरक ऋचाएॅ निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय सूर्य रूपी ग्रह की मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक जगह सूर्य के लिए कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत सूर्य से घिरा हुआ है[1] और यही बात हमें कहीं ना कहीं ऋग्वेद के उस मन्त्र में देखने को मिलती है जहाँ सूर्य को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक बताया गया है अर्थात पूरे ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य स्थित है और पूरा जगत उस सूर्य से घिरा हुआ है। और ज्योतिष में भी जब सौरमण्डल को देखते हैं तो वहाँ भी सूर्य सभी ग्रहों से घिरा हुआ है और सभी के मध्य में स्थित रहता है। इस प्रकार कहीं ना कहीं सभी मन्त्रों में साम्यता देखने को मिलती है। सभी वैदिक संहिताओं में आदित्य को सूर्य का ही पर्यायवाची माना गया है परन्तु आदित्यों की संख्याओं तथा नामों में कुछ भेद अवश्य देखने को मिलता है जैसे ऋग्वेद में आदित्यों की संख्या 6 अथवा 7 बतायी गयी है वहीं यजुर्वेद में द्वादश आदित्यों का उल्लेख प्राप्त होता है और अथर्व में देखें तो वहाँ अष्ट आदित्यों को कहा गया है जो की सत्य से अष्टमी को उत्पन्न हुए।

1.9 वैदिक साहित्य में चन्द्रमा

जिस प्रकार सूर्य ज्योतिष में एक महत्त्वपूर्ण ग्रह है। उसी प्रकार चन्द्र को भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रह के रूप में स्वीकार किया गया चन्द्र को ज्योतिष में मन का प्रतीक माना गया है। वेदों में भी वर्णन प्राप्त होता है कि विराट पुरुष के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है "**चन्द्रमा मनसो जातः**"।[2] चन्द्रमा को वेदों में सोम, शशि, विधु, मास, अमृत, हिमदीधित, चन्द्र आदि नामों से कहा गया है। ऐतरेय में चन्द्रमा की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि अमावस्या में सूर्य और चन्द्रमा एकत्र होते हैं। अमावस्या के दिन चन्द्रमा सूर्य में प्रवेश करता है और फिर आदित्य से चन्द्रमा उत्पन्न होता है।[3] यहाँ आदित्य का तात्पर्य सूर्य से हैं। चन्द्रमा की उत्पत्ति सूर्य से होने के कारण चन्द्रमा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा में पुनः दिखाई पड़ता है।

---

[1] समावर्ति पृथिवी। समुषाः। समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। तै० ब्रा; 2.6.6.5

[2] चन्द्रमा मनसो जातः संग्राम। ऋ० सं० 10.90.14

[3] चन्द्रमा अमावस्य यामादित्यमनुप्रविशाति....आदित्याद्देश्चंद्रमा जायते। ऐ० ब्रा०; 40.5

1.9.1 चन्द्रकला आधारित प्रतिपदादि तिथियाँ

वेदों में चन्द्रमा की कलाओं का न्यून होने अथवा अधिक होने का कारण यह कहा गया है कि सभी देवता उसका प्राशन (उपभोग) करते हैं।[1] इसी विषय में ऋग्वेद संहिता में चन्द्रमा को सूत्र अर्पण करते हुए उनसे प्रार्थना की गयी हैं कि वह हमें नवीन वस्त्र और दीर्घायु दे।[2] चन्द्रमा के निरन्तर नए रूप को देखने के कारण यहाँ नवीन वस्तुओं का ग्रहण और दीर्घायु अर्थात जिस प्रकार चन्द्रमा निरन्तर बढ़ता रहता है और फिर पूर्ण हो जाता है। फिर पहले की भांति बढ़ता रहता है उसी प्रकार मनुष्य चन्द्रमा से प्रार्थना करता है और आज भी हम देखते हैं कि चन्द्रमा प्रतिदिन प्रतिपदादि तिथियों से प्रारम्भ होकर पूर्णा तिथि पर्यन्त निरन्तर बढ़ता रहता है। जो हमारी दीर्घायु का और निरन्तर जीवन में नव - नवोन्नति का प्रतीक है। यही कथन हमें अथर्ववेद में भी मिलता है कि चन्द्रमा नवीन नवीन रूप में उत्पन्न होता है तथा प्रत्येक दिन चन्द्रमा एक एक नवीन कला को प्राप्त करता जाता है।[3] यह कथन ज्योतिष ग्रन्थों में तिथियों की ओर संकेत करता है जब चन्द्र की प्रथम कला होती है तब प्रतिपदा तिथि, जब दूसरी कला होती है तब द्वितीय तिथि आदि, इन्हीं को हम प्रस्तुत तालिका से समझ सकते हैं -

प्रतिपदादि चन्द्रकला

1	प्रतिपदा	चन्द्रमा की पहली कला
2	द्वितीय	चन्द्रमा की दूसरी कला
3	तृतीय	चन्द्रमा की तीसरी कला
4	चतुर्थी	चन्द्रमा की चौथी कला
5	पञ्चमी	चन्द्रमा की पाँचवी कला
6	षष्ठी	चन्द्रमा की छठी कला

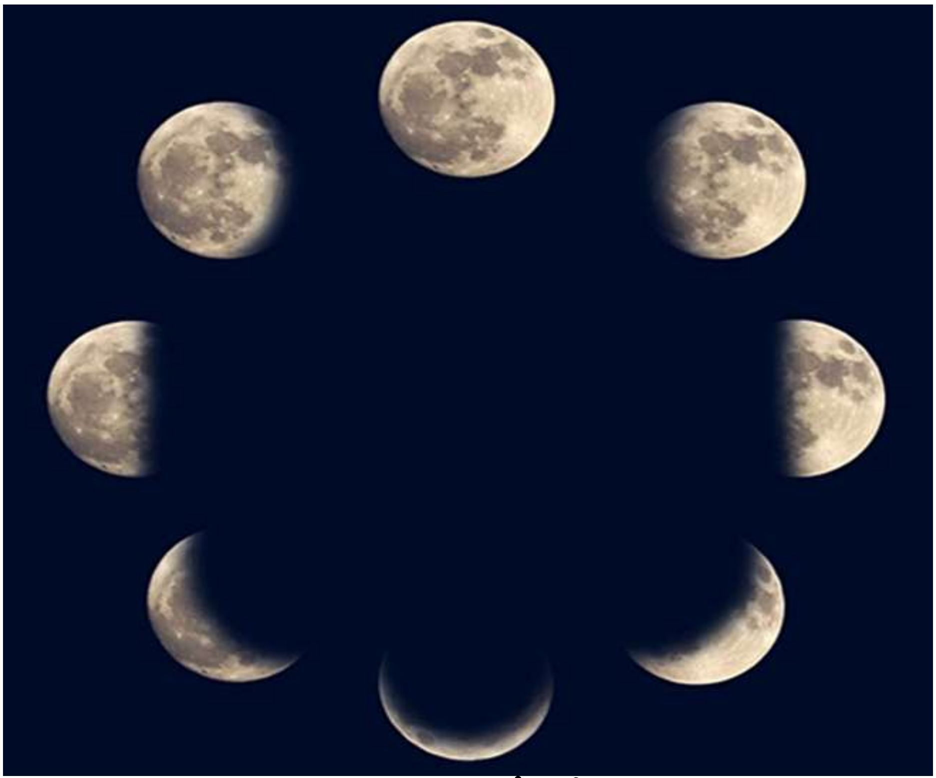
[1] यात्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मासआकृतिः। ऋ० सं० 10.85.5

[2] नवो - नवो भवति जायमानोह्वां केतुरुषसामेत्यग्रम।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन प्र चन्द्रमास्तिरतेदीर्घमयुः। ऋग्वेद - 10.85.19

[3] नवो नवो भवसि जायमानो। अथर्ववेद संहिता - 7.86.2

7	सप्तमी	चन्द्रमा की सातवीं कला
8	अष्टमी	चन्द्रमा की आठवीं कला
9	नवमी	चन्द्रमा की नौवीं कला
10	दशमी	चन्द्रमा की दशवीं कला
11	एकादशी	चन्द्रमा की ग्यारहवीं कला
12	द्वादशी	चन्द्रमा की बारहवीं कला
13	त्रयोदशी	चन्द्रमा की तेरहवीं कला
14	चतुर्दशी	चन्द्रमा की चौदहवीं कला
15	पुर्णिमा/ आमवस्या	चन्द्रमा की अन्तिम पन्द्रहवीं कला

इन सभी पन्द्रह आमवस्या और पूर्णिमा तक की सभी तिथियों को चन्द्रमा की कलाओं के आधार पर समझना चाहिए



(चन्द्रकला – पूर्णमासी)

1.9.2 चन्द्रमा की पञ्चदशी तिथि पौर्णमासी

यज्ञ की दृष्टि से वेदों में पूर्णमासी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोश ग्रन्थ में पूर्णमासी शब्द "पुर्णि + मास + ङीप्" से बना है।[1] ऋग्वेद में पूर्णिमा को अनुमति तथा राका भी कहा गया है।[2] जहाँ यजुर्वेद के एक स्थान पर पूर्णमासी तिथि को शुभ मानकर उसमें अग्नि और सोम के लिए यज्ञ करने का आदेश दिया है।[3] वहीं अन्य स्थान पर पूर्णमासी तिथि को देवता संज्ञक मानकर उससे प्रार्थना की गई है कि वह हमारे प्राणों के लिए हजार संख्या से युक्त धन प्रदान करें।[4] पूर्णिमा ज्योतिष की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। पूर्णिमा का दिन अनेक शुभ माङ्गलिक कार्यों के लिए शुभ माना जाता है। वैदिक संहिताओं में जितने भी तत्त्वों तथा पदार्थों का वर्णन प्राप्त होता है उन सभी को देवत्त्व रूप में स्थापित किया गया है। इसी प्रकार ऋग्वेद में ऋषियों के द्वारा पूर्णमासी को देवत्त्व रूप प्रदान किया गया है।[5] पौर्णमासी उस रात्रि को कहते हैं जिस तिथि की रात्रि को चन्द्रमा पूर्ण प्रकाशित होता है। ऋग्वेद में पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी के रूप में "राका" को माना गया है। राका देवी जो कि उत्तर दिशा में ऐश्वर्य प्रदात्री है, पुष्टिकर्त्रि है और श्रेष्ठ सन्तति को प्रदान करने वाली है। इसी "राका" का उल्लेख आचार्य सायण ने अपने ऋगभाष्य में भी किया है।[6] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी चन्द्रमा के पूर्ण होने के सन्दर्भ में "पूर्णमास" एवं पौर्णमासी दोनों शब्द मिलते हैं।[7] यजुर्वेद के दोनों मुख्य तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्णमासी के लिए "पञ्चदशी" शब्द का प्रयोग किया गया है।[8] वर्णन मिलता है कि पञ्चदशी में चन्द्रमा पूर्ण होता है और पञ्चदशी में चन्द्रमा क्षीण होता है।[9] वेदों में "दर्शपौर्णमास यज्ञ" बहुत

---

1 आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत- हिंदी कोश, वाराणसी, पृ० 630

2 या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतियोत्तरा सा राका। ऋग्वेद, द्वितीय मण्डल
ऐतरेय ब्रा० - 32.10
गोप० ब्रा० - 6.10

3 पौर्णमास्यामग्नीषोमीयं हि पौर्णमासं हविर्भवति। श० ब्रा० 1.8.3.2

4 स नो दोह्ताम सुवीयम..प्राणाय सुराधसे पूर्णमासाय स्वाहा। तै० ब्रा० 3.7.5.13

5 यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता। ऋग्वेद सायणभाष्य, परिशिष्ट 2, पृ० 17

6 सम्पूर्ण चन्द्रा पौर्णमासी राका। ऋ० सं०, सायणभाष्य - 2.32.4

7 पूर्णमासं यजामहे। तै० ब्रा० 3.7.5.13
पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तात्। उन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। वहीं; तै० ब्रा - 3.1.1.12

8 पञ्चदशाहान्यापूर्यते पञ्चदशा पक्षीयते..। श० ब्रा० 8.4.1.10
तस्मात्पञ्चदशापूर्यमाणस्य। पञ्चदशापक्षीयमाणस्य। तै० ब्रा० 1.5.10. 5

9 शतपथ ब्रा० 10.4.2.17

प्रचलित है। यह यज्ञ पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथि को होता है। दर्शपौर्णमास में "दर्श" अर्थात आमावस्या "पौर्णमास" अर्थात पूर्णमासी। माधवाचार्य के अनुसार अमावस्या का नाम दर्श इसलिए पड़ा क्योंकि अमावस्या तिथि में सूर्य और चन्द्र एक दूसरे के दर्शन कर करते हैं इसलिए इस तिथि को दर्श कहा गया है।[1] वही अगर अथर्ववेद में देखें तो पूर्णमासी का एक पूरा सूक्त है जिसमें 4 मन्त्र हैं जिसके चारों मन्त्रों में पूर्णिमा की प्रार्थना की गई है। यहाँ कहा गया है कि पूर्णिमा तिथि दिन तथा रात्रि दोनों में प्रथम यज्ञ करने योग्य है।[2] और प्रार्थना की गई है कि हे पूजनीय पूर्णिमा जो योगियों द्वारा आप की पूजा करते हैं उसको इन श्रेष्ठ कर्मों से स्वर्ग धाम की प्राप्ति होती है।[3]

1.9.3 चन्द्रमा की पञ्चदशी तिथि अमावस्या

देखा जाए तो पूर्णिमा और अमावस्या एक दूसरे के पूरक हैं। वामन ने अमावस्य शब्द की व्युत्पत्ति "अमा + वस् + यत् " से की है।[4] अमावस्या के लिए शतपथ में "अमा वसति " शब्द का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में एक प्रसङ्ग आता है जिसमें कहा गया है कि अमावस्या की रात को चन्द्रमा ना पूर्व में दिखाई देता है और न हि पश्चिम में परन्तु वह उस समय इस लोक में आकर जलों और औषधियों में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए यह मानना चाहिए कि देवताओं का अन्न होने के कारण चन्द्रमा अमावस्या की रात को यहाँ देवताओं के साथ निवास करता है इसीलिए "अमा वसति " अमावस्या नाम रखा।[5] अमावस्या को ऋग्वेद में ऋग्वेद में दर्श, सिनीवाली और कुहू नाम से भी कहा गया है। निश्चित ही ये शब्द यहाँ पूर्णिमा के समान देवता वाचक हैं।[6] निरुक्ताकार ने भी कहा है कि सिनीवाली और कुहू देवपत्नी और अमावस्या याज्ञिक।[7] वहीं अगर अगर अथर्ववेद में अमावस्या की बात करें तो अमावस्या नाम से एक पूरा सूक्त है। जिसमें 4 मन्त्र हैं उनमें

---

1 सुर्यचन्द्रमसौ परस्परं पश्यतोत्रेति दर्शः। का० मा०, चतुर्थ प्रकरण, पृ० 412

2 पौर्णमासी प्रथमायज्ञीयासीत रात्रीणामतिशवरेषु। अथ० सं० 7.85.4
अथ० सं०; वहीं - 7.85.2-3

3 ये त्वां यज्ञे...नाके सुकृतः प्रविष्टाः। अथ० सं० 7.85.1

4 आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत - हिन्दी कोश, वाराणसी, पृ० 74

5 तद्यदेष एतां रात्रिमिहामा वसति तस्मादमावास्या नाम श० ब्रा० 1.6.4.5

6 ....या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः। ऋग्वेद, द्वितीय मण्डल
ऐतरेय ब्राह्मण, वहीं - 32.10
गोपथ ब्राह्मण, वहीं - 6.10

7 सिनीवाली कुहूरिति देवपत्नयाविति नैरुक्ता अमावास्येति याज्ञिकाः। निरुक्त 11.31

अमावस्या देवता रूप में वर्णित है तथा अमावस्या से प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में "अमा "शब्द का प्रयोग प्रायः 10 अथवा 12 बार हुआ है, परन्तु वह वहाँ पर गृह समीप व सह के अर्थ में हुआ है। जैसे एक मन्त्र में कहा गया है कि समस्त वस्तुओं को मिलाने वाली पुष्टि कारक और बलवर्धक धन देने वाली प्रतिक्षित अमावस्या रात्रि आ गई है।[1] इसके निर्मित हम अभी अर्पित करते हैं अथर्ववेद में भी अमावस्या को देवता रूप में वर्णित किया गया है और अमावस्या से प्रार्थना करके फल की इच्छा की गई है। जैसे हम आपको हवि अर्पित करते हुए अपने मनोकामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते हैं।[2]



अमावस्या – पौर्णमासी

1.10 वैदिक सहिताओं में एक साथ प्रयुक्त चन्द्र / सूर्य

वैदिक संहिताओं में अनेक स्थानों पर सूर्य और चन्द्र से सम्बन्धित अनेक ऋचाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें सूर्य और चन्द्र दोनों का एक साथ वर्णन प्राप्त होता है।[3]

---

1 आगन रात्री संगमनी वसूनामूर्ज पुष्टं वस्वावेशयंती।
अमावास्यायै हविषा विधेमोज दुहाना पयसा न आगन्। अथ० सं० 7.84.3

2 अथ० सं०; वहीं - 7.84.4

3 चन्द्रमा मनसोजात चक्षुषो सूर्योअजायत। ऋ० सं० 10.90.14

1.10.1 ऋग्वेद में सूर्य/चन्द्र

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में भी सर्वप्रथम ऋग्वेद संहिता के मन्त्रों में सूर्य और चन्द्र की स्थिति का एक साथ उल्लेख किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य और चन्द्र की स्थिति ब्रह्म के शासन में एक साथ स्वीकार की गई है।[1] अर्थात इससे हम सूर्य और चन्द्र को अनन्त समझ सकते है। क्योंकि यह सबकुछ ब्रह्म ही है और स्वयं ब्रह्म की सत्ता अनन्त है।[2] अर्थात सूर्य और चन्द्र एक ही साथ प्रकट हुए हैं। वहीं अन्य मन्त्र में सूर्य और चन्द्र को प्रजापति ब्रह्म के नेत्रों के रूप में स्वीकारा गया है।[3]

1.10.2 यजुर्वेद में सूर्य/चन्द्र

यजुर्वेदीय तैत्तिरीय में सूर्य और चन्द्रमा का एक साथ वर्णन करते हुए वहाँ चन्द्रमा को सूर्य पर आश्रित माना गया है।[4] वहीं यजुर्वेद में चन्द्रमा को "सूर्यरश्मि" विशेषण दिया गया है और उसे सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला बताया गया।[5] यहाँ भी चन्द्रमा का अस्तित्व सूर्य से ही बताने का प्रयत्न किया गया है। इसी विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण का एक मत है कि "चन्द्रमण्डल" में सूर्य की किरणें जाती हैं जिससे यह चन्द्रमा की रश्मियां अग्नि के समान प्रज्वलित होती हैं।[6] इस इस प्रकार से सूर्य से चन्द्रमा प्रकाशित होता है यह बताकर ऋषियों ने सूर्य और चन्द्र के सम्बन्ध का महत्त्वपूर्ण संकेत दिया है।

1.10.3 अथर्ववेद में सूर्य/चन्द्र

अथर्ववेद के एक मन्त्र में चन्द्रमा और सूर्य के देवत्त्व रूप का तथा इस पृथ्वी लोक के समीप सूर्य चन्द्र का निकटतम अथवा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध का उल्लेख किया गया है। कहा गया है कि सूर्य और

---

1 वाअक्षरस्य प्रशासने..सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः। श० ब्रा० 14.6.8.9

2 सत्यम ज्ञान अनन्तं ब्रह्म। तै० उप० 2.1
सर्वं खल्विदं ब्रह्म। वहीं; छान्दो० उप० 3.14.1

3 सूर्याचन्द्रमसौ चक्षुषी। श० ब्रा० 7.1.2.7

4 चन्द्रमा अस्यआदित्ये श्रितः। तै० ब्रा० 3.11.1.11-12

5 सूर्यरश्मिश्चंद्रमा गन्धर्वः। तै० सं० 3.4.7.1
वहीं; वाज० सं० 18.40
वहीं; मै० सं० 2.12.2

6 ...नाम त्वष्टरपीच्यम। इत्था चन्द्रमसो गृहे। तै० ब्रा० 1.5.8.1

चन्द्रमा बालक के समान क्रीडा करते हुए पूर्व से पश्चिम की ओर भ्रमण करते हुए समुद्र में जाते हैं। इनमें से एक भुवनों को देखता है और दूसरा ऋतुओं को उत्पन्न करता हुआ नवीन रूप में प्रादुर्भूत होता है।[1] वहीं अगर हम वेदाङ्ग ज्योतिष की बात करें तो पूरे वेदाङ्ग ज्योतिष का जो बिन्दु है वह सूर्य और चन्द्र के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। वेदाङ्ग ज्योतिष एक काल विधान शास्त्र है और काल के परिमाण का आधार सूर्य को माना गया है। इसी बात को हम वेदाङ्ग ज्योतिष में देख सकते हैं कि जब सूर्य और चन्द्रमा एकत्र होकर आकाश में धनिष्ठा नक्षत्र में मिलते हैं उस समय युग, माघ (मास), तपस (ऋतु), शुक्ल (पक्ष) उदयन आदि का आरम्भ होता है।[2]

1.10.4 तुलनात्मक विश्लेषण

वैदिक संहिताओं में चन्द्रमा का उल्लेख बहुलता से किया गया है यद्यपि यहाँ चन्द्रमा को ज्योतिष-शास्त्र के समान चन्द्रमा का ग्रह के रूप में उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋग, यजु, अथर्व में वर्णित चन्द्रमा परक मन्त्र निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय चन्द्रग्रह रूपी मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है वहीं साम्यता देखें तो तीनों ऋग, यजु, अथर्व में चन्द्रमा को सूर्य पर आधारित कहा है और चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाशित होने वाला बताया गया है तीनो में चन्द्रमा को देवत्त्वरूप प्रदान किया गया है वहीं चन्द्रमा को तीनों वेदों में तिथियों का आधार और निर्माण कर्ता बताया गया है वहीं वैदिक मुनियों ने अपने यज्ञ प्रयोजन की सिद्धि के लिए तिथियों के नाम रखे थे जिनके लिए वे अनुमति, राका, सिनीवाली, कुहू आदि नाम का प्रयोग करते थे वहीं पूर्णमासी और अमावस्या देवत्त्वरूप में वर्णनं किया गया है और इनमें वैदिक ऋषियों ने दर्श पौर्ण मास याग का विधान किया है जो कि काल विधान रूपी ज्योतिष शास्त्र के आधार पर निर्धारित तिथियों के आधार पर ही सम्भव है जो तिथियों का निर्धारण ज्योतिष चन्द्रमा की घटती बढती कलाओं के आधार पर करता हैं जिसके फलस्वरूप वेदाङ्गादि ग्रन्थों में हमें प्रतिपदा से लेकर पञ्चदशी अर्थात पूर्णिमा/अमावस्या तक की सम्पूर्ण तिथियों का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ वैदिक मूल संहिताओं में सूर्य चन्द्र परक अनेक मन्त्र एक साथ पढ़े गये

---

1 पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशु क्रीडतौपरि यातोर्णवं।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतुरन्यो विदधज्जायसे नवः। अथ० सं० 14.1.23

2 स्वराक्रमेतो सोमार्कौ यदा साकं सवासवौ।
स्यात्तदादि युगम माघस्तपः शुक्लोयनं ह्युदक। वेदाङ्ग ज्योतिष, ऋग 5
वेदाङ्ग ज्योतिष, याजुष, वहीं - 6

हैं वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में सूर्य चन्द्रमा के एक साथ आने पर पञ्चसम्वत्सरात्मक युग का आरम्भ होता है इस प्रकार से देखें तो ऋग याजुष अथर्व तीनों वैदिक ग्रन्थों में प्रतिपादित चन्द्र ग्रह सामान रूप से उल्लेख किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि तिथियाँ, अमावस्या पूर्णिमा और चन्द्रादि ग्रहों का तीनों मूल संहिताओं में समान रूप से इतस्ततः प्रचुर मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है जिनका विस्तृत रूप वेदाङ्गादि ज्योतिष ग्रन्थों में परिलक्षित होता है

1.11 वैदिक साहित्य में पञ्चदेव या पञ्च ग्रह

वैदिक साहित्य में उल्लिखित पञ्चदेव ही पञ्च ग्रह हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए बालकृष्ण दीक्षित का कथन है कि सूर्य चन्द्र सहित अवशिष्ट भौमादि पाँच ग्रह ही वास्तविक सूर्यमाला के ग्रह हैं, परन्तु वेदों में हमें इन पाँचों अथवा इनमें से कुछ के विषय में स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता फिर भी अनुमान करने योग्य स्थल बहुत से हैं, और रातभर में किसी न किसी समय उन पाँचों का दर्शन हो ही जाता है।[1] ऋग्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में पाँच ग्रहों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें से बृहस्पति तथा वेन दो नाम मिलते हैं।[2] इन पाँचों ग्रहों के लिए ऋषियों का कहना है कि वे पाँचों महाप्रबल (देव) द्युलोक के मध्य में निवास करते हैं।[3] एक अन्य स्थान पर पञ्चदेव शब्द आया है।[4] यहाँ पञ्चदेव का अर्थ पाँच ग्रह लिया गया है। वहाँ उन पाँचों देवों का घर नक्षत्र मण्डल में बताया गया है।[5] इससे यह सिद्ध होता है कि पाँच जो देव कहे गए हैं वह पाँच ग्रहों (मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि) के ही द्योतक हैं। यद्यपि वैदिक मूल में सप्तग्रह तथा नवग्रह शब्द का प्रयोग नही हुआ है तथापि नव ग्रहों में सूर्य चन्द्रमा का वर्णन अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है जहाँ पाँच अन्य मंगल आदि ग्रहों का पञ्चदेवत्त्व रूप में उल्लेख मिलता है वहीं राहू केतु का छाया रूप में उल्लेख किया गया है।

---

1 दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृष्ट - 86

2 ऋग्वेद; 4.50.4
ऋग्वेद; वहीं - 10.123.01
शतपथ ब्राह्मण ; 4.2.1

3 अमी ये पंचोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीनानि वावृदुवित्तं मे अस्य रोदसी।। ऋ०.सं० 1.105.10

4 ऋग्वेद; 10.55.3

5 दैवगृहा वै नक्षत्राण। ऋग्वेद; 10.55.3

1.11.1 वैदिक साहित्य में मंगल

वेदों में जिन पञ्च देवों (ग्रहों) की ओर संकेत किया गया है उनमें से एक मंगल ग्रह भी है। यही मंगल ग्रह कभी-कभी पृथ्वी के अत्यन्त समीप और कभी भ्रमण करता हुआ पृथ्वी से बहुत दूर चला जाता है जिस कारण से यह कभी छोटा तथा कभी बड़ा दिखाई देता है। यह ग्रह लाल वर्ण का है और इसके लिए वेदों में अंगारक, भूमिपुत्र, अग्नि, लोहितांग एवं रुद्र भी कहा गया है और यजुर्वेद में इसको सुमंगल, ताम्रवर्ण, अरुण, बभ्रू, तथा अनेक रुद्रों से घिरा हुआ कहा गया है।[1] और यह लगभग 687 दिनों में सूर्य की पूर्ण परिक्रमा करता है। ज्योतिष तथा पौराणिक कथाओं में मंगल को भूमि पुत्र भी कहा गया है क्योंकि यह पृथ्वी से समानता रखता है वेदों में इसे नीलग्रीव, लोहित वर्ण आकाश में भ्रमण करने वाला कहा गया है। इस मंगल के दर्शन जो वेदोंक्त कर्म से हीन महिलाएँ हैं वे भी और जो गोप तथा जल भरने वाली हैं वह भी करती हैं। यह ग्रह दर्शन देने के लिए आता है यह हमारा मंगल करें।[2] जो वेदों में रुद्र देवता में विशेषताएँ देखने को मिलती हैं वही विशेषताएँ मंगल ग्रह में भी दिखाई देती हैं। जिनके कारण यह कहा जा सकता है कि रुद्र देवता ही मंगल ग्रह है। जैसे वेदों में रुद्र के लिए "घोरा" (भयंकर) विशेषण है उसी तरह परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में भी मंगल को क्रूर और पाप ग्रह माना जाता है वेदों में रुद्र को धन्वा, सेनापति, आयुध, आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है वहीं ज्योतिष ग्रन्थों में जब हम मंगल को देखते हैं तो मंगल सेनापति के रूप में एक वीर और सभी का नेतृत्व करने वाले के रूप में देखा जाता है। यजुर्वेद में एक मन्त्र जोकि रुद्र देवता के लिए प्रयुक्त है वही मन्त्र मंगल ग्रह की विशेषताओं को भी प्रकट करता है। जैसे - "हे रुद्र युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वान पुरुष आप हमारे बड़े पुरुषों को और गर्व शिशुओं को तथा गर्भाधान करने वालों को मत मारो।[3] इसी बात को देखें तो परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में भी गर्भपात आदि का कारक मंगल ग्रह ही माना जाता है। जिस प्रकार राष्ट्र, समाज तथा परिवार की रक्षा के लिए किसी रक्षक की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड

---

[1] असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमंगलः।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षुश्रिताः सहस्रशो वैषा हेडईमहे।यजु० 16.6

[2] असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा अट्टश्रन्नुदहार्य : स दृष्टो मृडे याति नः। यजु 16.7

[3] मा नो महान्त मुतमा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मानो बधी : पितरम्मोत मातरम्मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।। (यजु० 16.15

में जो उथल-पुथल होती है उसको रोकने के लिए एक सेनापति के रूप में मंगल (रुद्र) को प्रजापति ने बनाया। कालान्तर में मंगल को ही कुमार या षडानन (कार्तिकेय) भी कहा गया। जिस प्रकार रोहिणी नक्षत्र से बुध और पुष्य नक्षत्र से गुरु की उत्पत्ति हुई है ठीक इसी प्रकार से मंगल की उत्पत्ति कृतिका से मानी जाती है मंगल का परम शर जब कृतिका नक्षत्र के निकट होता है तब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। इसी प्रकार से जब मंगल आगे बढ़ा होगा उस समय कृतिका में स्पष्ट रूप से प्रतीत हुई होगी अतः मंगल कृतिका पुत्र कार्तिकेय नाम से जाना गया होगा।[1] वैदिक काल से ही मंगल की शान्ति पूजन एवं हवन से सम्बन्धित मंगल के लिए यजुर्वेद संहिता में कहा जाता है कि - ‘‘यह अग्नि द्युलोक के सिर के समान मुख्य है। इस अग्नि (मंगल) ने उच्च स्थान प्राप्त किया है। यह पृथ्वी और जल को पुष्ट करने वाला है।[2] प्रस्तुत मन्त्र में मंगल को अग्नि प्रधान माना गया है। और निश्चय ही कहा जा सकता है कि मंगल ग्रह ही वैदिक काल में अग्नि एवं रुद्र तथा कुमार रूप में जाना जाता था।

1.11.2 वैदिक साहित्य में बुध

ऋग्वेद में वर्णित पञ्चदेव ग्रहों में जिन पाँच ग्रहों की ओर संकेत किया गया है उनमें से बुध ग्रह भी माना जाता है। बुध सूर्य के समीप है और यह सबसे छोटा ग्रह कहा गया है। यह कभी भी सूर्य से 27 अंश से अधिक दूर नहीं जाता है। जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाओं की क्षय और वृद्धि होती है उसी प्रकार बुद्ध की भी क्षय और बृद्धि होती रहती है। बुध ग्रह 1 वर्ष में लगभग 6 बार अस्त और उदित होता है। जब यह उदित होता है तब यह 21 से 43 दिनों तक दिखाई देता है। ज्योतिष ग्रन्थ ग्रहलाघव के अनुसार बुध ग्रह पूर्व दिशा में अस्त होने के 32 दिन पश्चात पश्चिम से उदित होता है तथा उसके 32 दिन बाद वक्री होता है उसके 3 दिन बाद पश्चिम में अस्त तथा उसके 16 दिन बाद पूर्व में उदित होता है फिर 3 दिन बाद मार्गी और उसके 32 दिन बाद पूर्व में अस्त हो जाता है। इस प्रकार से बुध का 118 दिनों में इसके उदय अस्त का एक चक्र पूरा होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पञ्चविंश ब्राह्मण में बुध ग्रह के सन्दर्भ में एक मन्त्र है जिसमें कहा गया है कि बुध सोमायन है अर्थात बुध सौम्या है।[3] इसी विषय में गिरजा शंकर शास्त्री कहते हैं कि बुध को रोहणेय भी कहा गया है।

---

[1] शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष, पृ० 200

[2] ॐ अग्निर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याः। अयमपां रेतांसि जिन्चति। यजु० 13.14

[3] बुधो हि सौमायनः प्रोक्तः। पञ्चविशति ब्रा० 24.18.6

वैदिक काल में किसी समय जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र के पास स्थित बुध को ढक दिया होगा तथा ऋषियों ने रोहिणी एवं बुध दोनों को चन्द्र बम बिम्ब से बाहर निकलते देखा होगा तभी से बुध को रोहणेय एवं चन्द्रमा का पुत्र कहना प्रारम्भ किया होगा।[1]

अथर्ववेद के 1 मन्त्र में बुध का उल्लेख मिलता है जिसे सोम का अंश कहा गया है वहाँ कहा जाता है कि "हे सोम के अंश बुध ! तुम वीरों के पालन कर्ता हो। तुम दर्शन योग्य हो। हव्यादि देखकर तुम्हें प्रसन्न करता हुआ मैं पुत्रादि धन से युक्त होऊँ।[2] वहीं यजुर्वेद का एक मन्त्र ऐसा है जिसे प्राचीन काल से ही बुध के लिए पूजन, हवन, तथा शान्तिकर्म आदि में प्रयोग किया जाता रहा है जिसमें कि बुध को बुद्धि का प्रतीक माना गया है और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में भी बुध को बुद्धि ही कहा गया है।[3]

1.11.3 वैदिक साहित्य में बृहस्पति

आचार्य सायण ने बृहस्पति शब्द की व्युत्पत्ति "बृहस्पति वृहतां देवाना अधिपतिः" से किया है।[4] बृहस्पति के लिए कहा गया है कि वह समस्त देवों के अधिपति हैं। उन्हें अष्ट वसुओं के साथ आमन्त्रित किया गया है।[5] वेदों में बृहस्पति प्रमुख देवों के रूप में प्रतिष्ठित हैं बृहस्पति को स्तुति का अधिपति माना गया है और कवि की उपाधि से विभूषित किया गया है।[6] ऋग तथा अथर्व संहिता की एक ऋचा में बृहस्पति को प्रथम महान प्रकाश के अत्यन्त उच्च स्वर्ग में उत्पन्न हुआ कहा गया है।[7] और यही बात तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी कही गई है जिससे यह मालूम होता है कि बृहस्पति को तारा रूपी देवता माना गया है। यह उस समय की बृहस्पति के ग्रहत्त्व रूप में एक स्वतन्त्र कल्पना मिलती है। बृहस्पति को ग्रह अथवा तारा रूप में ग्रहण करने

---

1 शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष, पृ० 201

2 सोमस्यांशो युधां पतेनूनो नाम वा असि।
अनून दर्श मा कृधि प्रजया च धनेन च।

3 ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत्। यजु० 18.61

4 अथर्ववेद सायणभाष्य - 6.73.1

5 एह यातु वरुणः सोमो अग्निर्ब्रहस्पतिर्वसुभिरेह यातु। अथर्ववेद - 6.73.1

6 कविं कवीनामुपमाश्रवस्तमम्। ऋ० सं० 2.23.1

7 वृहस्पति प्रथमञ्जायमानो महोज्योतिषः परमे व्योमन्। ऋ० सं० 4.50.4
अथर्ववेद संहिता; वहीं - 20.88.4
तैत्तिरी ब्राह्मण; वहीं - 2.8.2

का एक ठोस प्रमाण तैत्तिरीय ब्राह्मण की एक ऋचा में देखने को मिलता है, जिसमें कहा गया है कि - “बृहस्पति प्रथम तिष्य नक्षत्र के पास उत्पन्न हुआ है ”।[1] वेदों में वर्णित तिष्य नक्षत्र को आज पुष्य नक्षत्र के नाम से जानते हैं उसी नक्षत्र के आसपास बृहस्पति रूपी ग्रह अथवा तारा के होने की संभावना है। तैत्तिरीय में बृहस्पति को तिष्य नक्षत्र का देवता भी माना गया है।[2] और वर्तमान में ज्योतिषीय ग्रन्थों में गुरु - पुष्य (तिष्य) योग भी बड़ा उत्तम माना जाता है। इस योग को सर्वार्थसिद्धि योग के अन्तर्गत माना जाता है।[3] यह बृहस्पति - पुष्य योग तब बनता है जब बृहस्पतिवार हो और उसमें पुष्य नक्षत्र हो जब यह दोनों एक साथ हों तो इनमें किया गया कोई भी कार्य हो वह कार्य निश्चित ही सफल होता है। अथर्ववेद में बृहस्पति के अलग-अलग प्रभाव दिखाए गए हैं कहीं बृहस्पति को राजा के राज्य को स्थिर करने वाला बताया है।[4] कहीं बृहस्पति बृहस्पति को कल्याणकारी देवता के रूप में वैवाहिक कृत्यों में संरक्षण तथा सहयोग प्रदान करने वाला बताया है। वन्ध्या को गर्भ धारण करवाने तथा अनेक विपत्तियों का समन करने के रूप में बृहस्पति ग्रह की स्तुति की गई है।[5] जहाँ ऋग्वेद में बृहस्पति ग्रह का एक तारा रूप में वर्णन किया जाता है वहीं यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के मन्त्रों में बृहस्पति ग्रह की स्तुतियां अधिक प्राप्त होती हैं और वहाँ दिखाया जाता है कि बृहस्पति मानव जीवन के कल्याण के लिए एक महत्त्वपूर्ण देवता है।

चन्द्रमा तारा एवं गुरु के सन्दर्भ में एक पौराणिक आख्यान आता है उस विषय में ऋग्वेद में वर्णन किया गया है कि “बृहस्पति ने अपनी पत्नी जुहू छोड़ी, सोम राजा ने उसे पुनः बृहस्पति के पास भेजा, मित्रा वरुण ने उसका समर्थन किया और अग्नि ने हाथ पकड़ कर स्वयं पहुंचाया। तब सोम द्वारा लायी जाया को बृहस्पति ने पुनः स्वीकार कर लिया।[6] इस वैदिक आख्यान का यह अर्थ हुआ जो की ज्योतिषीय दृष्टिकोण से

---

1 बृहस्पतिः प्रथमञ्जायमानो तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभुव। तैत्तिरीय ब्राह्मण; 3.1.1

2 वृहस्पतेस्तिष्यः जुह्वतः परस्ताद्यज्माना अवस्तात्। तै० ब्रा० 1.5.1.2

3 मुहूर्त चिंतामणि - 1.29

4 ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पति। अ० सं० - 6.88.2

5 गर्भ ते मित्रावरुणो गर्भ देवो बृहस्पतिः।। अ० सं० - 5.25.4

6 सोमो राजा ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय।।
हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्म जायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य।।
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः।

भी सुसंगत प्रतीत होता है। कि राजा सोम अर्थात चन्द्रमा का प्रत्येक 27वें दिन पुष्य नक्षत्र से संयोग होता है किन्तु बृहस्पति उसे एक बार छोड़ने के पश्चात लगभग 12 वर्ष पश्चात पुनः उस पुष्य नक्षत्र में आता है। इसी मध्य मित्र, वरुण, और अग्नि उसे अनेक बार मिलते हैं। सम्भवतः यह मित्र, वरुण और अग्निदेव सूर्य बुध और शुक्र हैं जो प्रत्येक वर्ष में एक बार पुष्य नक्षत्र से संयुक्त होते हैं अर्थात पुष्य नक्षत्र के सीध में आ जाते हैं। गुरु ज्ञान का प्रतीक है और पुष्य नक्षत्र बुद्धि का प्रतीक है अतः बुद्धि में ज्ञान उदित होता है जबकि मन काम अर्थ आदित्य आते रहते हैं। इस प्रकार से बृहस्पति, तारा एवं चन्द्रमा के संयोग को कथा व आख्यानों के माध्यम से महर्षियों ने हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं।

1.11.4 वैदिक साहित्य में शुक्र

ऋग्वेद में शुक्र के लिए कहा गया है कि "यह वेन से उदित हुआ है"।[1] लैटिन भाषा में शुक्र का एक नाम वीनस् Venus भी कहा गया है। शुक्र का और वेन का सादृश्य बालगंगाधर तिलक के द्वारा सुलझाया गया था। शुक्र का ग्रीक रूप Kupros था। ग्रीक लोग शुक्र देवता को स्त्रीलिङ्गी मानते थे इस कारण से उनका रूप Kupris हुआ। इसका लैटिन रूप Cypris है। Venus और Kuprir तथा Cypris शब्द एक ही अर्थ के द्योतक माने जाते हैं।[2] ऋग्वेद के एक मन्त्र में शुक्र शब्द का अर्थ अनन्त सामर्थ्यवान प्रकाशपुञ्ज ज्योति स्वरूप माना गया है, और उसे परमेश्वर के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला कहा गया है।[3] यहाँ परमेश्वर हम सूर्य को समझ सकते हैं। जिस प्रकार आज सभी को यह पता है कि सूर्य के प्रकाश से सभी ग्रह प्रकाशित होते हैं चन्द्रमा प्रकाशित होता है उसी प्रकार अवश्य ही शुक्र भी प्रकाशित होता होगा। यजुर्वेद में वर्णन प्राप्त होता हैं कि यज्ञ कर्मों में जिन पात्रों में सोमरस रखा जाता था उन पात्रों को सोमरस ग्रहण करने के कारण ग्रह

भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमे व्योमन्।।
ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।
तेन जायामन्वविन्दबृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः।।
पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वानां ब्रह्मजायां पुनर्ददुः।।
पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्ज पृथिव्या भक्त्याथोरुगायमुपासते।। ऋ०सं० 10.109

1 अयं वेनाश्चो दयत् प्रिश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसोविमाने। ऋ० सं० - 10.12.3

2 दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० 89

3 यदा सूर्य ममं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारय आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे। ऋ० सं० 6.5.1,
वहीं - ऋग्वेदभाष्यभूमिका पृ० 104

कहा जाता था और यज्ञ करते समय पहले सोमरस को ग्रह में रखा जाता था और बाद में उसकी आहुति दे दी जाती थी। यज्ञों में होने वाले अग्निष्टोम यज्ञ में शुक्र और मन्थी नाम के दो ग्रह रहते हैं। जिन के विषय में कहा जाता है कि शुक्र और मन्थी इसके चक्षु हैं। यह जो प्रकाशित होता है वही शुक्र है। यह प्रकाशित होता है इसलिए यह शुक्र है। चन्द्रमा ही मन्थी है।[1] यहाँ चन्द्रमा को मन्थिन् कहा गया है परन्तु मन्थिन् शब्द से शनि का ग्रहण भी किया जाता है। ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण की एक ऋचा में शुक्र को आकाशीय प्रकाश युक्त ग्रह के अर्थ में ग्रहण किया गया है।[2] यही बात हमें अथर्ववेद में भी देखने को मिलती है वहाँ भी शुक्र को अनेक स्थान पर आकाशीय प्रकाशमय ग्रह के अर्थ में लिया गया है।[3] यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में एक स्थान पर शुक्र बृहस्पति आदि देवों से "सुख प्रदेश में रमण करावे" ऐसी प्रार्थना की गई है।[4] वहीं यजुर्वेद के दूसरे ही मन्त्र में शुक्र को कहा जाता है कि - "हे शुक्र तुम तेज हो, अमृत हो, आयु रक्षक हो, कवि हो, सूर्य पुत्र हो, अमृत की जिह्वा हो, सूर्य के उदय से अश्विनौ की बाहु से और पूषा के हाथ से सम्बन्धित हो, अतः कृपया हमारी आयु की रक्षा करो। सूर्य देवों का चक्षु है और अपने उदय से पूर्व शुक्र को भेज देता है।[5] वहीं अन्य स्थान पर शुक्र को प्रजापति कहा है जो की सर्वत्र व्याप्त है ऐसा कहा गया है।[6] वही यजुर्वेद के अनेक मन्त्रों में शुक्र ग्रह का अनेक बार अनेक रूपों में प्रयोग हुआ है।[7] वहीं अथर्व में देखें तो वहाँ शुक्रादि देवों से धन, वस्त्र

---

1 चक्षुषी हवा अस्य शुक्रामन्थिनौ।
तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्यदेष एतत्तपति तेनैषशुक्रश्चंद्रमा एव मन्थी। याजु० सं० श० ब्रा० - 4.2.1

2 ज्योतिर्वै शुक्रम हिरण्य।। ऐ० ब्रा० - 7.12

3 यजुर्वेद, पद- 91-92, परिशिष्ट - 1, पृ० 2.11

4 वस्व्यसि रुद्रास्यदित्यस्यादित्यासि।
शुक्रासि चंद्रासि वृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रण्वतु। तै० सं० - 1.2.5

5 तेजोसि शुक्रममृतमायुष्या आयुर्मे देहि।
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे
तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।। यजु० 22.1

6 तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रहा ता आपः स प्रजापतिः। यजु० 32.1

7 शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोमि। यजु० 8.4
तेजोऽसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामसि। वहीं 1.31
शुक्रः शुक्रशोचिषा। वहीं 7.13
सोमाय बूतात् शुक्रस्ते। वहीं 4.24
शुक्र ज्योतिश्च चित्र ज्योतिश्च। वहीं 17.80
पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीर श्रीर्मन्थी। वहीं 8.57

वस्त्र आदि की कामना तथा रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है।[1] शुक्र ग्रह के शान्तिकर्म के लिए तथा शुक्र की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए और अनुकूलता पाने के लिए हवन पूजन के समय वैदिक काल से ही विद्वानों द्वारा प्रयोग किया जाने वाला शुक्र का वैदिक मन्त्र है जिसमे कहा है कि अन्न के रस से शुक्र (वीर्य) बनता है तथा शुक्र उसका प्रतीक है।[2]

1.11.4.1 संहिताओं में बृहस्पति-शुक्र का एक साथ प्रयोग

वैदिक संहिताओं की अनेक ऋचाओं में हमें यह देखने को मिलता है कि जहाँ-जहाँ बृहस्पति का वर्णन प्राप्त होता है वहाँ वहाँ शुक्र का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ शुक्र का वर्णन प्राप्त होता है वहाँ वहाँ बृहस्पति का वर्णन भी प्राप्त होता है। अर्थात एक ही मन्त्र में दोनों ग्रहों की स्थिति प्राप्त होती हैं। बालकृष्ण तथा नेमीचन्द्र दोनों का मानना भी यही है कि बृहस्पति और शुक्र दोनों ही के विषय में भारतीयों को पहले से ही ज्ञान था और वह कहते हैं कि - वेदों में अश्विनौ नाम के जो दो देवता प्रसिद्ध हैं उन दोनों देवताओं की कल्पना शुक्र और गुरु से ही की गई है। शुक्र प्रत्येक 20 मास में 9 मास प्रातः काल पूर्व में दिखाई देता है और प्रायः हर बार लगभग दो-तीन मास तक गुरु उसके साथ रहता है। इन दो-तीन महीने मैं कुछ दिन तक शुक्र के बहुत नजदीक रहता है, पर शुक्र की गति तेज होने के कारण बृहस्पति कुछ पीछे रह जाता है, और शुक्र ग्रह पूर्व की ओर आगे बढ़ जाता है। इससे दोनों ग्रहों में काफी अन्तर पड़ जाता है। जहाँ शुक्र पूर्व की ओर उदित होता है, उसी काल में बृहस्पति पश्चिम की ओर अस्त को प्राप्त होता है।[3] इस अस्त और उदय की व्यवस्था के पूर्व इतना निश्चित है कि कुछ समय तक दोनों ग्रह एक साथ साथ रहते हैं। अवश्य ही गुरु और शुक्र की कल्पना अश्विनौ देवताओं के रूप में उस समय हुई होगी जब शुक्र और बृहस्पति एक साथ रहे होंगे। और इसी प्रकार कुछ समय पश्चात दोनों ग्रहों में से एक शुक्र को

---

1 स्वर्ण शुक्रः स्वर्ण सूर्यः स्वाहा। वहीं 18.50
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावान् शुक्रो। वहीं 33.5

2 द्योश्च म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया पिपर्तु। अ० सं० - 6.53.1

3 दीक्षित बालकृष्ण, भरतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० सं० 86-87
शास्त्री नेमिचन्द्र, भरतीय ज्योतिष, ज्ञानपीठ, पृ० 60 - 61

सदा सूर्य के पास और दूसरे बृहस्पति को सम्पूर्ण आकाश में भ्रमण करते हुए देखकर महर्षियों ने यह कल्पना की होगी।[1]

1.11.5 वैदिक साहित्य में शनि

ऋग्वेद में जिन पञ्च ग्रहों की ओर संकेत किया गया है उनमें से एक शनि ग्रह है। इसे शनेश्चर भी कहा जाता है क्योंकि यह धीरे चलता है जिस कारण इसे शनेश्चर कहा गया है। और मंद गति होने के कारण मंद ग्रह भी कहा जाता है। यह भचक्र का भ्रमण करने में लगभग 30 वर्ष लगाता है। वैदिक साहित्य में जहाँ कहीं भी ग्रहों के वर्णन में शंनः शब्द आये तो उसका सम्बन्ध शनि ग्रह से है यह समझना चाहिए ऐसा शास्त्री गिरिजाशंकर का कथन है।[2] शनि को वेदों में यम, काल, अन्तक (मृत्यु) तथा मन्द आदि नामों से कहा गया है।जैसे एक मन्त्र में वर्णन है "मित्र, वरुण, सूर्य, अन्तक (शनि) पृथ्वी और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पाद और आकाश में विचरण करने वाले ग्रह हमारे लिए शान्तिप्रद हों।[3] वहीं अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में नवग्रहों का उल्लेख मिलता है। जिनमें चन्द्रमा, बुध, आदित्य (सूर्य), राहू, मृत्यु अर्थात शनिकेतु तथा रुद्र से मंगल और तिग्मतेजसः से गुरु एवं शुक्र की ओर संकेत किया गया है।[4] परवर्ती काल में भी शनि को दुख की संज्ञा दी गई है। ऋग्वेद यजुर्वेद संहिता का एक मन्त्र जोकि आज भी शनिग्रह की शान्ति के लिए शनिग्रह के अनुकूल प्रभाव के लिए विद्वानों द्वारा हवन, पूजा तथा यागादि कर्मों में प्रयोग होने वाला शनि सम्बन्धित मन्त्र है। जिसमें कहा गया है कि "देदीप्यमान जल (जल रूप शनि) हमारे पान के लिए सुखरूप हों तथा रोगों का

---

1 ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रम् रथस्य येमथुः।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना राजांसि दीयथः। ऋ० सं० 5.73 1
ऋ० सं०; वहीं - 5.73.3

2 शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योति, पृ० 205

3 शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वान् शमन्तकः।
उत्पाता : पार्थिवान्तरिक्षाः शन्नो दिविचरा ग्रहाः। अथ० सं० 19.9.7
शन्नो भुमिर्वेपमाना शमुल्कानिर्हतंच यत। वहीं, 19.9.8

4 शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युधूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः। अथ०सं० 19.9.10

नाश करें।[1] यहाँ मन्त्र में शनि को जल स्वरूप कहा गया है और जल की उत्पत्ति सूर्य से हुई है अतः वह सूर्यपुत्र हैं सम्भवत इसीलिए शनि को सूर्यपुत्र कहा जाता है। वहीं पञ्चविंश में शनि को सौर कहा गया है।[2]

1.11.6 संहिताओं में राहू - केतु के लिए प्रयुक्त "स्वर्भानु"

राहु / केतु ग्रह - वैदिक संहिताओं में अनेक स्थानों पर कई प्रसङ्गों में स्वर्भानु के विषय में वर्णन आता है जिसे कि राहू का प्रतीक माना गया है। जिस प्रकार आज ज्योतिषीय ग्रन्थों तथा विद्वानों की मान्यता है कि राहु एक छाया ग्रह है इसी प्रकार राहू को संहिताओं में अन्धकार के रूप में वर्णित किया गया है। इन्ही बातों की पुष्टि ऋग्वेदादि संहिताओं में स्वर्भानु के नाम से हो जाती है। जैसे ऋग्वेद के एक मन्त्र में सूर्य के स्वर्भानु असुरों द्वारा ग्रसित होने का न केवल वर्णन प्राप्त होता है अपितु वहाँ अत्रि ऋषि द्वारा सूर्य को अन्धकार से मुक्त करने का भी वर्णन प्राप्त होता है।[3] वहीं ग्रहण के विषय में ऋग्वेद के समान ही शतपथ ब्राह्मण में अत्रि ऋषि को अन्धकार को दूर करने वाला कहा गया है। यहाँ प्रसङ्ग में वर्णित है कि अत्रि ऋषि ही ऋषियों का 'होता" है। एक समय जब सदस् में असुरों का अन्धकार छा गया। तब ऋषियों ने अत्रि से लौट आने और अन्धकार निकालने को कहा। तत्पश्चात अत्री ने अपने तेज और पराक्रम द्वारा अन्धकार को दूर कर दिया।[4] यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में भी शतपथ के समान ही ग्रहण के विषय में चर्चा की गई है यहाँ बताया गया है कि सूर्य रूपी अमृत अन्धकार से ग्रसित हो जाता है।[5] उक्त वाक्य को सायणभाष्य में, इस अन्धकार का कारण स्वर्भानु नामक असुर को ही माना गया है।[6] इसी प्रकार तैत्तिरीय के एक अन्य मन्त्र में इसी ग्रहण के के प्रसङ्ग में पूषा देवता की प्रशंसा करते हुए आचार्य सायण ने सूर्य ग्रहण का संकेत दिया है। वह कहते हैं कि जिस प्रकार इन्द्र ने अहीं नामक असुर का विनाश किया उसी प्रकार जब सूर्य स्वर्भानु असुर के अन्धकार

---

1 शन्नो देवीराभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंय्योरभि स्त्रवन्तु नः। ऋ० सं० 10.9.4
यजुर्वेद संहिता, वहीं 36.12

2 पञ्चविंश ब्राह्मण 24.8.6

3 यत्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशुक्नुवन्। ऋ० सं० 5.40.5 - 9

4 अथैवमेवोपसद्य। आत्रेयाय हिरण्यं ददाति...तमोपहन्ति तस्मदात्रेयाय हिरण्यं ददाति। श० ब्रा० 4.3.4.21

5 सूर्यमृतं तमसो ग्राह्या यत्।तै० ब्रा०; 2.5.6.3

6 स्वर्भानुरासुरः सूर्यं तमसाविध्यत्तस्मै देवाः प्रयाश्चित्तिमैछन्। तै० ब्रा० सा० भा पृ० 531

से आवृत हो गए तब इन्द्र ने ही सूर्य को अन्धकार से मुक्त कर दीप्तियुक्त कर दिया।[1] अन्य स्थान पर कहते हैं कि पूषा द्वारा सूर्य से अन्धकार के आवरण को हटाने के लिए रश्मियों को दूत रूप में भेजा।[2] शतपथ ब्राह्मण में दो तीन स्थानों पर "राहूगण " शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ यह गौतम शब्द के पश्चात और ऋषि शब्द से पूर्व प्रयोग हुआ है।[3] परन्तु यह निश्चित नहीं है कि यह "राहूगण " यहाँ राहु के लिए प्रयोग हुआ है या गौतम के लिए अथवा ऋषियों के लिए। खगोल की दृष्टि से देखें तो राहु केतु ग्रह पृथ्वी (सूर्य) एवं चन्द्र ग्रह कक्षाओं के दो निराकार सम्पात् हैं। पौराणिक मान्यताओं की मानें तो राहु को सिंहिका का पुत्र माना गया है। यहाँ राहु के विषय में एक कथा प्रचलित है जिसमें राहुनामक असुर अमृत पीने की इच्छा से छल से देवताओं के मध्य बैठ जाता है और अमृत पान करता है। अमृत पीते समय विष्णु ने राहु का सिर काट दिया। अमृत पीने से वह अमर हो गया फिर ब्रह्मा ने इसे ग्रहत्त्व प्रदान किया। इसका धड़ से ऊपर का भाग राहु तथा धड़ से नीचे का केतु हो गया। खगोल की दृष्टि से देखा जाए तो पृथ्वी की छाया राहु है तथा चन्द्रमा की छाया केतु है। इसीलिए राहुल को स्वर्भानु भी कहा गया तथा केतु को धूमकेतु कहा जाता है।[4] राहु और केतु की शान्ति के लिए, अनुकूलता अनुकूलता के लिए तथा यागादि अनुष्ठानों में राहु और केतु से सम्बन्धित वैदिक मन्त्र आज भी विद्वानों द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।[5]

---

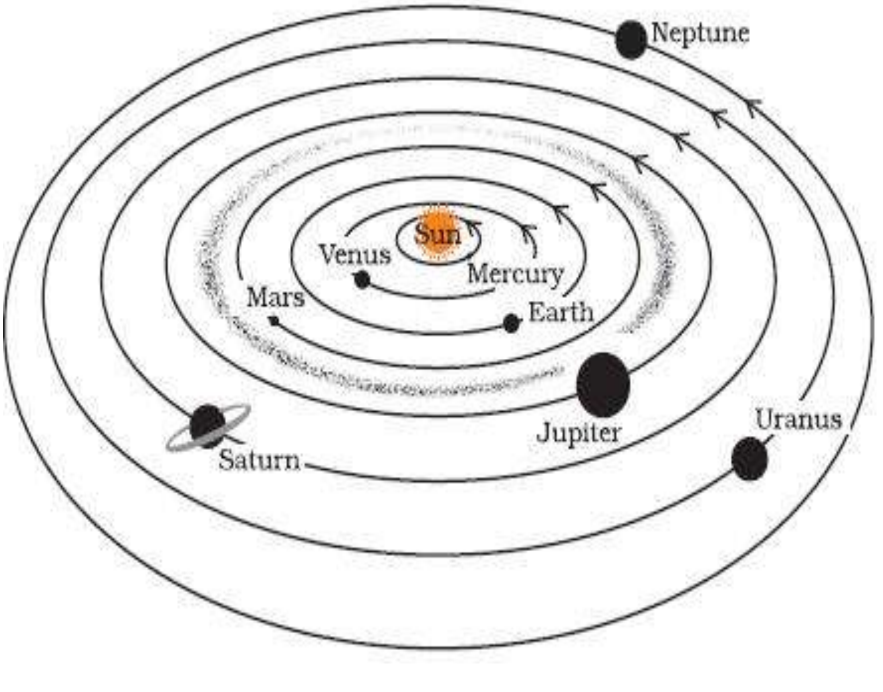
1 आदनन्तरं सूर्यं जनयन्स्वर्भानुसंज्ञकेनासुरेण प्रयुक्ते तमसिमग्नं
सूर्यं प्रादुर्भावयन् तथोपायं द्यां जनयन्नुषः कालं दीप्तं कुर्वन्वर्तसेर्त। तै० ब्रा० ' सा० भा०, पृ० 518

2 सूर्या हि स्वर्भानुसंज्ञकेनासुरेण तमसावृतः संदुखितायाः
सुर्यायः समीपे पूषणं रश्मियुक्तम दूतत्वेन प्रेषितवान्। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 526

3 तस्य गोतमो रहू गण ऋषिः। श० ब्रा० 1.4.1.10
श० ब्रा०, वहीं - 1.4.1.14
श० ब्रा०, वहीं - 1.4.1.18

4 शास्त्री गिरिजाशंकर, वैदिक ज्योतिष, पृ० 206

5 कयानश्चित्र आभुव दूती सदा वृधः सखा।
कयाशचिष्टया वृता।। ऋ० सं० 4.3.11
केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुसद्भिरजायथाः।। वहीं, ऋ० सं० 1.6.3



नवग्रहों का भौगोलिक स्वरूप सौरमण्डल

1.11.7 तुलनात्मक विश्लेषण

वेदों में जिन पञ्च देवों (ग्रहों) की और संकेत किया गया है उनमें मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये सभी माने गये हैं जहाँ ऋग्वेद में इन पाँच ग्रहों का संकेत पञ्चदेवों की ओर किया गया है जो पञ्चदेव यदाकदा आकाश में भ्रमण करते हुए दिखयी देते हैं इन्हीं पञ्चदेवों को यजुर्वेद में अनेक विशेषणों से सम्बोधित किया गया है, और इन्हीं पञ्चदेवों का प्रथम बार मगल, बुध शनि आदि संज्ञाएँ पूर्ण रूप से अथर्ववेद में हमें दिखाई देती है यहाँ नवग्रहों का उल्लेख मिलता है। जिनमें चन्द्रमा, बुध, आदित्य(सूर्य), राहू, मृत्यु अर्थात शनि-केतु तथा रुद्र से मंगल और तिग्मतेजसः से गुरु एवं शुक्र की ओर संकेत किया गया है।[1] विशेष रूप से बृहस्पति और शुक्रग्रह का वर्णन हमें तीनों वेदों में सामान रूप से मिलता हैं वेदाङ्ग ज्योतिष में हमें बृहस्पति के आधार पर बार्हस्पत्य सम्वत्सरों उल्लेख प्राप्त होता है वहीं अगर राहू और केतु ग्रह को देखें तो तीनों ऋग, यजु और अथर्ववेद में इनका अन्धकार स्वरूप माना गया है जो कि परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों

[1] शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युधूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः। अथ०सं० 19.9.10

में छाया ग्रहों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, राहू को तीनों वेदों में स्वर्भानु नाम से सम्बोधित किया जाता हैं जो कि सूर्य को आच्छादित कर देता है यही सूर्य का आच्छादित हो जाना ज्योतिष की परिभाषा में राहू द्वारा सूर्य को ग्रसित कर लेना है जिसे ज्योतिष शास्त्र में सूर्यग्रहण की संज्ञा दी जाती है इस प्रकार से हमें तीनों वेदों में सामान रूप से ग्रहों का उल्लेख प्राप्त इससे यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि वैदक ऋषियों को अवश्य ही ज्योतिषीय खगोल विद्या के ग्रह रूपी मूल पदार्थों का ज्ञान था

1.12 वेदों में उल्लिखित ज्योतिष पद्धति के मानक तत्त्व

जब हम ज्योतिषीय तत्त्वों के विषय में कहते हैं तो हमें कलनात्मक काल के स्थूल और सूक्ष्म भेदों को समझना चाहिए। स्थूल काल दैनिक व्यवहार में आने के कारण अनुभव का विषय है, जबकि सूक्ष्मकाल निराकार होने से सभी प्रकार की गणनाओं से परे है। हमें दोनों ही रूपों को समझना चाहिए। यहाँ स्थूल काल के कुछ भेद निम्न लिखित है –

1.12.1 ऋतु

वैदिक धार्मिक कार्यों को करने के लिए ऋतुओं का ज्ञान परम आवश्यक है। ऋतु ज्योतिष का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जो कि माङ्गलिक कार्यों के लिए आवश्यक बताया गया है। यदि ऋतु शब्द की बात की जाए तो यह ऋग्वेद में कहीं एकवचन में तो कहीं बहुवचन में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के पन्द्रहवें सूक्त में "ऋतुना " शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] वहीं द्वितीय मण्डल के 37वे सूक्त में ऋतु में "ऋतुभिः " तथा "ऋतून " आदि (ऋतुना, ऋतुभिः, ऋतून) इन बहुवचनान्त शब्दों का प्रयोग हुआ है।[2] यहाँ बहुवचन का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि ऋतु एक नहीं एक से अधिक हैं। यजुर्वेदीय काठक संहिता में ऋतु का विभाजन वर्णों के आधार पर भी किया गया है। वहाँ शिशिर ऋतु में अग्नि का आधान सभी वर्णों के लिए उचित होने की बात कही गई है और वसन्त ऋतु ब्राह्मण के लिए, ग्रीष्म में क्षत्रिय के लिए, शरद में वैश्य के लिए अग्नि का आधार उचित होने की बात कही गई है।[3] यही कथन सूत्र ग्रन्थों में

---

1. विश्वे भिरविश्वान ऋतुना वसो महः। ऋ० सं० 2.37.6
2. हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिः। ऋ० सं० 1.84.18
3. काठक संहिता, 8.1

भी प्राप्त होता है। बौधायन गृह्यसूत्र में वसन्त ऋतु में ब्राह्मण बटु का, ग्रीष्म ऋतु में क्षत्रिय बटु का, शरद ऋतु में वैश्य बटु का और वर्षा ऋतु में रथकार बटु का उपनयन करने का विधान है।

1.12.1.1 मास

ऋग्वेद में "मास " शब्द काल अर्थात समय के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] यहाँ मास शब्द केवल काल की अवधि के रूप में ही नहीं अपितु चन्द्र के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है।[2] वहीं एच० एच० विल्सन भी मास का अर्थ चन्द्र ही करते हैं।[3] ऋग्वेद में वर्ष में बारह मास होते हैं यह तो कहा गया है[4] परन्तु द्वादश मासों का नाम प्राप्त नहीं होता है। कालान्तर में यजुर्वेद में वैदिक मासों के सभी द्वादश नाम तथा कही दश कही तेरह मास[5] प्राप्त होते हैं नामों में भी भिन्नता देखने को मिलती है।[6] वहीं तैत्तिरीय संहिता में इन द्वादश मासों का नाम ऋतुओं के साथ मिलता है।[7] मास को सभी श्रौत - स्मार्त यज्ञ कर्मों में उपयोगी माना गया है। यजुर्वेदीय काठक

---

1 किं स ऋद्धकृणवध्यं सहस्रं मासो जभारः। ऋ० सं० 4.18.4
अनूनोदत्र हस्तयतो अत्रिरार्चर्येन दशः मासो नवग्वाः। वहीं, ऋ० सं० 5.45.7
दश मासांश्चशयानः कुमारो अधिमातरिः। वहीं, ऋ० सं० 5.78.9

2 यस्यादेवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते। चन्द्रमा वा अकायत। ऋ० सं० 8.94.2

3 H.H.Wilson, A Sanskrit English Dictionary, Delhi, 1979, p.566

4 वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजवतः। वेदा य उपजायते। ऋ० सं० 1.25.8

5 अश्वं त्रयोदशं ददाति यस् त्रयोदशो मासस्...। ऋग्वेदीय शांखायन ब्राह्मण, 1.1
त्रतोदश मासाः संवत्सरः। वहीं, तै० सं० 5.6.7.1-2
त्रयोदशाक्षराणि स्तोभति, ...त्रयोदशो मसस् तमेव तदाप्नोति। वहीं, सामवेद, जैमिनीय ब्र० 1.132
सनिस्रसो नमाऽसि त्रयोदशो मास इन्द्रस्य गृहः। अथर्ववेद, शौनकसंहिता, 5.6.4
अहोरात्रैर् विमित त्रिंशदङ्ग त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते।
तस्य देवस्य क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं जिनाति। वहीं, 13.3.8
त्रयोदश मासाः सम्वत्सरस्य त्रयोदशेमे पुरुषे प्राणा इत्यत्र तत्समम्। आथर्व, गोपथब्राह्मण 1.5.5
त्रयोदर्श वा एतं मासमाप्नोति यच् छुनासीर्येण यजते, एतावान् वै संवत्सरो यावानेष त्रयोदशो मासः। वहीं, 2.1.26

6 अरुणोऽरुणरजा : पुण्डरीको विश्वजित् अभिजित् आर्द्रः।
पिन्वमानोऽन्नवान् रसवान् इरावान् सर्वोषध : संभरो महस्वान्। तै० ब्रा० 3.10.1

7 मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू।
नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू। इषश्चोर्जश्च शारदावृतू।
सहश्च सहस्यश्च हैमान्तिकावृतू। तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। तै० सं० 4.4.11

काठक संहिता[1], तैत्तिरीय संहिता[2], मैत्रायणी संहिता[3], माध्यन्दिन वाजसनेयीसंहिता, शतपथब्राह्मण[4] गोपथ[5] गोपथ[5] आदि सभी में मासों में किये जाने वाले धर्मकृत्यादि कर्मो का प्रचुर मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है।

1.12.1.1.1 अहोरात्र

वेदों में सभी तत्त्वों को देवत्त्व रूप प्रदान है। वेदों में दिवस और रात्रि की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सूर्य दिन और रात्रि का निर्माण करके सब में पराक्रमी सामर्थ्य विस्तारित करते हैं।[6] वहीं विष्णु पुराण में सूर्य को अहोरात्र के व्यवस्था का कारण कहा गया है।[7] और वहीं अथर्व के दूसरे ही मन्त्र में सूर्य से प्रार्थना की गई है कि हे ! सूर्य देव आप जीवो पर अनुग्रह करने हेतु दिन और रात्रि की रचना करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में परिभ्रमण करते हैं।[8] इसी विषय में हम महाभारत मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में भी देखते हैं हैं जहाँ मानुष देवादि गणों के सयन के लिए सूर्य द्वारा रात्रि और चेष्टादि कर्मों के लिए दिवस का विभाजन किया गया है।[9] ऋग्वेद के एक मन्त्र में अन्धकार रूपी रात्रि सम्पूर्ण प्राणियों को निन्द्रा से युक्त करती है और प्रकाश रूपी दिवस अनेक रूपों का प्रसार करता है।[10] वहीं यजुर्वेद में रात्रि - दिवस को यजमान के लिए

---

1 ऋध्नुवन्ति दशसु मास्सू त्तिष्ठन्त ऋध्नुवन्ति द्वादशसु य एवं वेद। का० सं० 33.1
घडहैर् मासं सम्पाद्य यत् सप्तममहस् तदुत्सृजेयुः। वहीं, 33.7

2 मसं दीक्षितः स्यात। तै० सं० 5.6.7.3
द्वादशमासो भृत्वाग्नि मचिन्वीत। वहीं, 5.6.7.4
मासिमास्यतिग्राह्य गृह्यन्ते। वहीं, 7.5.1.6

3 द्वादशे मासा आलभेत " इति। मै० सं० 2.5.10

4 तद् वा एतन् मासिमास्येव पितृभ्यो ददतो यदैवैष न पुरस्तान् न पश्चाद् ददृशेऽथैभ्यो ददाति। शतपथ ब्रा० 2.4.2.7
"तस्माद् वा एष एतैश् चतुर्थे मासि यजते। श० ब्रा०, 205.2.4, वहीं, 2.5.3.1
"तान् वै द्वादश गृह्णीयाद् द्वादश वै मासा संवत् सरस्य तस्माद् द्वादश गृह्णीयात्। श० ब्रा०, वहीं, 4.3.1.5
"तद् यन् मासिमासि पृष्ठान्युपयन्ति मासशः एव तत् सम्वत्सरस्य तेज आप्नुवन्ति। श० ब्रा०, वहीं, 12.21.8

5 य एतमैन्द्राग्नं पशुं षष्ठेषष्ठे मास आलभते तेनैवेन्द्राग्निभ्यां ग्रसित मात्मानं निरवदयते। गो० ब्रा० 2.2.1

6 अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्यविश्वा तिरतो विर्याणि। अथर्व सं० 13.2.32

7 अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान रविः। विष्णु पुराण, 2.8.11

8 अथर्व सं० 13.2.22

9 अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुष दैविके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः। महाभारत, शा० प०, 231.15
मनुस्मृति, वहीं, 1.65

10 नाना॑ चक्राते यम्या॒३वपूंषि तयो॒र॑न्यद्रोच॑ते कृ॒ष्णम॒न्यत्।
श्यावी॑ च यदरु॑षी च स्वसा॑रौ महद्देवाना॑मसुरत्वमेक॑म्॥ ऋ० 3.55.11

शब्दादि व्यवहार ज्ञान को कराने वाला कहा गया है।[1] वहीं अन्य स्थल पर जो जो पुरुष सुन्दर शिल्पकार्य जिन जिन दिवस और रात्रि में सम्पन्न करते हैं वे सुखी होते हैं।[2] अथर्व में अहोरात्र के प्रति प्रार्थना करते हुए वहाँ कहते हैं कि हम अहोरात्र के प्रति वन्दना करते हैं, हमें योग - क्षेम प्राप्त हो।[3] वहाँ अन्य मन्त्र में अहोरात्र के प्रति कहा गया है कि हे ! अहोरात्र हमारा हर तरह से कल्याण हो हमें निर्भयता की प्राप्ति हो।[4]

1.12.1.1.1.1 वासर/दिवस

वेदों में सात वारों के नाम तो नही मिलते परन्तु "वासर" शब्द का प्रयोग हमें ऋग्वेद में अवश्य देखने को मिलता है[5]। वासर "वृ" धातु "णिच्" "घञ्" प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ। वासर शब्द सात वारों के समूह का द्योतक है। ऋग्वेद में दो स्थानों पर वासर शब्द का प्रयोग किया गया है "आदिप्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम परोयदिध्यते दिवा"[6] वहीं अन्य स्थान पर सूर्य दिनों को बढाता है वहीं रविवासर है "सोम राजन्प्रण आयूंषि आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि"[7]। वैदिक काल में सात वारों के नाम तो नही मिलते परन्तु सूर्य वासरः (रविवासरः) से यह अवश्य प्रतीत होता है कि कालान्तर में ग्रहों के नाम से ही वारों का प्रचलन सुरु हुआ होगा क्योंकि वैदिक समय में सातों ग्रहों के विषय में वर्णन प्राप्त होता है वहीं अगर हम अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष में देखें तो वहाँ हमें सातों वारों के विषय में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है[8] और अथर्ववेद ज्योतिष महाभारत से भी पूर्व का है और महाभारत स्वयं पाँच हजार वर्ष पूर्व में हुआ यह सर्वमान्य है अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वार समूहों

---

1 देवीऽउषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्।
दैवीर्विशः प्रायासिष्टा सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज। यजु० 28.14

2 होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहतीऽउभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्।
त्रिष्टुभं छन्दऽइहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद् वीतामाज्यस्य होतर्यज। 28.29

3 योगम प्रपद्ये क्षेमं च प्रपद्ये नमोअहोरात्राभ्यामस्तु। अथर्व सं० 19.8.2

4 स्वस्ति नो अस्त्वभयम नो अस्तु नमोअहोरात्रभ्यम अस्तु। अथर्व सं० 19.8.7

5 ऋग्वेद, 8.6.30

6 ऋग्वेद, वहीं, 8.6.30

7 ऋग्वेद, वहीं, 8.48.7

8 तिथिरेकगुना प्रोक्ता नक्षत्रां च चतुर्गुणं।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः.........। अथर्व ज्यो० 95
आदित्यः सोमो भौमश्च तथा बुध बृहस्पतिः।
भार्गवो शनैश्चरश्चैव एते सप्त दिनाधिपः। वहीं, अथर्व ज्यो० 98

की मूल वासर संज्ञा वेदों में ही उल्लिखित है अतः वेदाङ्ग समय में ही वारोत्पत्ति अथवा वारसमूह की अवधारणा प्रारम्भ हो चुकी थी।

1.12.2 दिशा

वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में दिशाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। "दिशा" शब्द दिश् धातु अङ् + टाप् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। जो पृथ्वी का चौथाई प्रदेश होता है वही दिशा कहलाता है।[1] ऋग्वेद में एक स्थान पर "दिशः" शब्द का प्रयोग हुआ है जिसको दिशाओं का ही द्योतक माना गया है। वहाँ कहा गया है की सूर्य के प्रतिदिन हरणशील किरणों से उत्पन्न सुचना से दिखाई गयी दिशाओं को अलग अलग करता है।[2] वहीं दूसरे स्थान पर कहा गया है की "वह सूर्य ऋतुओं का नियमन करके क्रमशः पृथ्वी की पुर्वादी दिशाओं का निर्माण करता है।[3] वहीं अगर यजुर्वेद में देखेंगे तो यहाँ हमें कहीं चार[4], कहीं पाँच[5], कहीं छः[6], कहीं कहीं सात[7], कहीं नौ[8] तथा कहीं दश[9] दिशाओं का वर्णन प्राप्त होता है। शतपथ में पाँच दिशाओं की कल्पना प्रजापति के पाँच थके हुए अंगों के रूप में उल्लेख किया गया है।[10] शतपथ के एक अन्य प्रसंगानुसार सूर्य के सात रश्मियों (किरणों) की स्थिति प्रत्येक दिशा में होने से सातों दिशाओं की ओर संकेत करता है इसीलिए यहाँ सात दिशाएँ मानी गई है।[11] वही शतपथ मैं एक स्थान पर कहा गया है कि हाथ में 10 उंगलियां होती हैं जिन से प्रत्येक दिशाओं की ओर नमन किया जाता है जोकि इन दसों दिशाओं की ओर संकेत करते हैं।[12]

---

1 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिंदी कोश, वाराणसी, पृ० 460

2 दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य॥ ऋ० सं० 3.30.12

3 पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्टु। ऋ० सं० 1.95.3

4 चतस्रो दिशः। तै० ब्रा० 3.3.8.6

5 पञ्च दिशः। तै० सं० 1.8.3.

6 षडि दिशो। श० ब्रा० 6.7.1.16

7 सप्तसु दिक्षु। श० ब्रा० 10.2.4.5, सप्त दिशः। श० ब्रा०, 9.5.2.8

8 तानि नव भवन्ति। नव दिशो...। श० ब्रा० 6.8.2.10

9 दश दिशो। श० ब्रा० 62.2.34, 6.82.12

10 शतपथ ब्राह्मण, 6.1.2.19

11 स दिग्भिरेव सप्तविधः। ये प्राच्यां दिशि रश्मयः...मण्डलमेव सप्तमी विधा। श० ब्रा०10.2.6.3

12 यद्वेवाह दश दशेति। दश वाऽअञ्जलेरॉलयो दिशि दिश्यवैभ्य एतदञ्जलिं करोति....। श० ब्रा० 9.1.1.39

यजुर्वेद में दिशाओं का वर्गीकरण देवताओं, लोक, पशु, छन्द, और वेद के आधार पर किया गया है यहाँ हम प्रस्तुत तालिका में देखेंगे कि देवताओं के आधार पर किस प्रकार दिशाओं का वर्गीकरण किया गया।[1]

यजुर्वेद संहिता

	वाजसनेयी - संहिता	**काठक - संहिता**	**मैत्रायणी – संहिता**
दिशाएँ	देवता	देवता	देवता
प्राची	अग्नि	अग्नि	अग्नि
दक्षिण	यम	इन्द्र	इन्द्र
प्रतीची	विश्वेदेव	सोम	विश्वेदेव
उदीची	मरुत एवं मित्रावरुण	मित्रावरुण	मित्रावरुण
उर्ध्व	सोम	बृहस्पति	बृहस्पति

अथर्ववेद के आध्यात्मप्रकरण में व्रात्य (श्रेष्ठ) के लिए कहा गया है की वह ध्रुव दिशा की ओर[2], ऊर्ध्व दिशा की ओर[3], दक्षिण दिशा की ओर[4], पश्चिम दिशा की ओर[5], गमन करें। वहीं अन्य स्थान पर ‘‘सूर्य ‘‘सूर्य से छः दिशाएँ एवं उपदिशाएँ सूर्य से प्रकाशित होकर निवास करती हैं।[6] अथर्व में कहा गया है कि सभी देवी देवताओं और आदित्यदेवों की सबसे प्रिय दिशा पूर्व मानी गई है।[7] वहीं पूर्व दिशा को प्रगतिमार्ग का प्रतीक माना गया है।[8] वहीं अन्य स्थान पर पूर्व दिशा[1], पश्चिम दिशा[2], उत्तर दिशा[3], तथा दक्षिणदिशा[4] चारों दक्षिणदिशा[4] चारों मुख्य दिशाओं के देवताओं की नियुक्ति की गई है।

---

1 वाजसनेयी स० 9.35-36
काठक सं०। वहीं, 7.2.17
मैत्रायणी सं०। वहीं, 2.8.1

2 स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत। अथर्ववेद 15.6.1

3 स ऊर्ध्वा दिशमनु व्यचलत्। 15.6.4

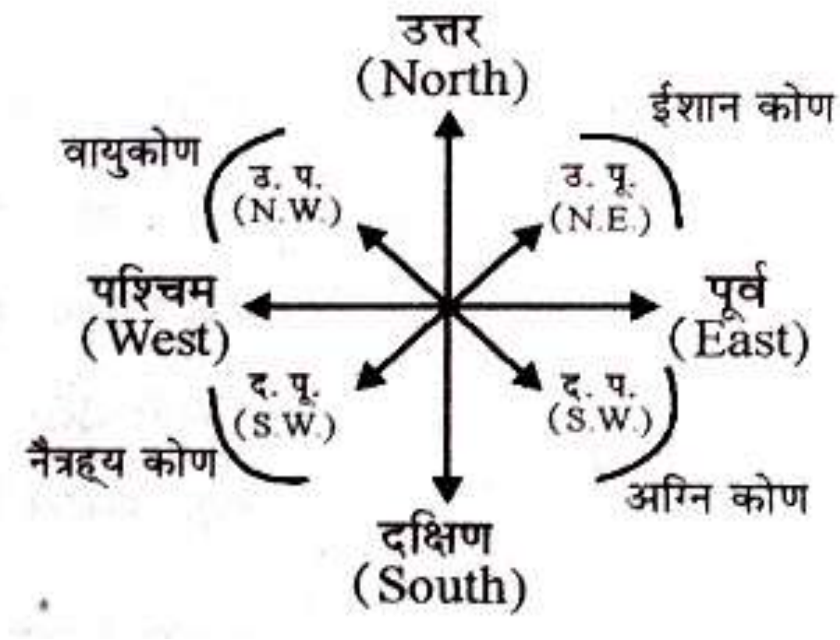
4 स उदतिष्ठत् स दक्षिणां दिशिमनु व्यचलत

5 स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिश मनुव्यचलत्। अथ० सं० 15.2.15

6 यस्मिन क्षियन्ति प्रदिशः षडुवीर्याः पतंङो अनु विचकशीति। अथर्व० सं० 13.3.1

7 देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्याम दिशि। अथ० सं० 15.2.3

8 स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिश मनुव्यचलत्। अथ० सं० 15.2.1



वहीं अथर्ववेद में सभी देवो ने व्रात्य (श्रेष्ठपुरुष) के लिए दिशाओं के साथ ऋतुओं के आधार पर मासों को संरक्षण कर्ता बताया गया है।[5]

---

[1] तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। अथ० सं० 15.5.1

[2] तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। अथ० सं० 15.5.6

[3] तस्मै उदीच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। अथ० सं० 15.5.8

[4] तस्मै दक्षिणायां दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्। अथ० सं० 15.5.4

[5] अथर्व वेद 15.4
तस्मै प्राच्या दिशः। वहीं० 15.4.1
वासन्तौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् वच्च रथन्तरंचानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.2
वासन्तावेन मासौ प्राच्या दिशो गोपायतोवहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद। वहीं० 15.4.3
तस्मै दक्षिणाया दिशः। वहीं० 15.4.4
ग्रैष्मौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्यज्ञायज्ञियं च वामदेव्य चानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.5
ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञायज्ञियंच वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद। वहीं० 15.4.6
तस्मै प्रतीच्या दिशः। वहीं० 15.4.7
वार्षिको मासौ गोप्तारावकुर्वन्वैलपञ्चवराज चानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.8
वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपञ्च वैराजंचानु तिष्ठतो य एवं वेद। वहीं० 15.4.9
तस्मा उदीच्या दिशः। वहीं० 15.4.10
शारदौ मासौ गोप्तारावकुर्वन्तं च नौधसंचानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.11
शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च नौघसंचानु तिष्ठतो य एवं वेद। वहीं० 15.4.12
तस्मै ध्रुवाया दिशः। वहीं० 15.4.13
हैमनौ मासौ गोप्तारावकुर्वन् भूमि चाग्ने चानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.14

1.12.3 नक्षत्र

"नक्षत्र" शब्द "नक्ष्" धातु अत्रन् से बना है।[1] नक्षत्र में नक्ष् धातु गत्यर्थक है। वहीं निरुक्त में नक्षत्र शब्द को दो प्रकार से प्रतिपादित किया गया है 1. पहला "नक्ष्" धातु गतिशीलता का वाचक है, 2. दूसरा नञ् पूर्वक क्षत्र का अर्थ क्षत्र रहित होने से है।[2] नक्षत्र का एक अर्थ तारा है और ताराओं को सदा गतिशील बताया है।[3] वेदों में नक्षत्रों के लिए तारा, तारक, उडु, ऋक्ष, रोचना, भ तथा नभ आदि पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है।[4] शतपथ में नक्षत्रों के विषय में कहा गया है कि पहले नक्षत्र शक्ति सम्पन्न थे परन्तु उदित हुए सूर्य ने उनकी शक्ति ले ली, यही कारण है कि शतपथ में, जो बीर्य और शक्ति से रहित है उन्हें नक्षत्र कहा है न+ क्षत्र = इति नक्षत्र।[5] ऋग्वेद में सभी नक्षत्रों के नाम नही हैं परन्तु यजुर्वेद की सभी संहिताओं यथा तैत्तिरीय सहिंता[6], काठक सहिंता[7], मैत्रायणी संहिता[8], शतपथ ब्राह्मण[9] तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] में कहीं 27 तो

हैमनावेनं मासौ ध्रुवाया दिशो गोपायतो भूमिश्चाम्मिश्चानु तिष्ठतोय एवं वेद। वहीं० 15.4.15
तस्मा ऊर्ध्वाय दिशः। वहीं० 15.4.16
शैशिरौमासौ गोप्तारावकुर्वन् दिवंचादित्यं चानुष्ठातारौ। वहीं० 15.4.17
शैशिरावेनं मासाळया दिशो गोपायतो द्यौछादित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद। वहीं० 15.4.18

1 नक्षति शोभां गछति। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, इलाहबाद, 1989, पृ० 578

2 नक्षत्राणि नक्षतेर्गतिकर्मणः नेमानि क्षत्राणि इति च ब्राह्मणम्। निरुक्त, 3.4.20

3 ताः हि नित्यमेव गछन्ति। उपाध्याय अनिल कुमार एवं उपाध्याय चन्द्रशेखर, वैदिककोश, दिल्ली 1995, भाग -2 पृ० 760

4 नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारका प्युडु। वामन, अमरकोश, प्रथम कांड, पृ० 17
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः सूराय विश्वचक्षसे। वहीं, ऋ० 1, 50, 2
ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून्दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः।
दृळहो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः। वहीं, ऋ० 6.67.6
ऋक्षा स्तृभिरिति नक्षत्राणाम्। वहीं, निरु० 3.4.20

5 "originally the naksatras were so many different powers (ksatra), just as that sun yonder.But as soon as he rose, he took from them their energy, their power;....The gods then said, ' They who have been powers, shall no longer (na) be powers (ksatra)!' Hence the powerfulessness (naksatratvamn) of the naksatras.",
G.C.Devasthali, Religion and Mythology Of The Brahmanas with particular reference to the Satapatha-Brahmana, University of Poona, 1965, p.29

6 कृत्तिकानक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा...। तै० सं० 4.4.1

7 अग्निर्देवता कृत्तिका नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता रोहिणी नक्षत्रं मरुतो देवतेन्वका नक्षत्रं रुद्रो...। का० सं० 39.13.90

8 कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताऽग्नेरुचः स्थ प्रजापतेः सोमस्य धातुः...। मै० सं० 2.13.20

9 नक्षत्राणि ह त्वेवैषोऽग्निश्रितः।
तानि वा एतानि सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि सप्तविंशतिः सप्तविंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकं...। श० ब्रा० 10.5.4.5

कहीं 28 सभी नक्षत्रों के नामों का प्रयोग किया गया है और साथ ही साथ उनके देवताओं का भी वर्णन किया गया है, वहीं अथर्वेद[2] में भी सभी नक्षत्रों को कहा गया है वेदाङ्गज्योतिष में सभी नक्षत्रों का सांकेतिक रूप प्रयोग देखने को मिलता है।[3]

1.12.4 मुहूर्त

सहिता ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर "मुहूर्त" शब्द का प्रयोग काल के अर्थ में किया जाता रहा है ऋग्वेद में देखेंगे तो वहाँ हमें "मुहूर्त" शब्द का ग्रहण "क्षण" एवं अल्पकाल के अर्थ शब्दों से लिया गया है।[4] मुहूर्त शब्द का प्रयोग काल की एक सूक्ष्म इकाई के रूप में किया जाता है वहीं कोशादि ग्रन्थों में भी मुहूर्त को अल्प समय अथवा एक क्षण का द्योतक बताया गया है।[5] वैदिक कोश में मुहूर्त को गमनशील बताया गया है।[6] और मुहूर्त की इस गमनशीलता अर्थ को निरुक्त ने भी सिद्ध किया गया है।[7] वहीं मैक्डोनल तथा कीथ का यह मानना है कि ब्रह्मणादि ग्रन्थों में वर्णित मुहूर्त शब्द दिन के तीसवें भाग, अथवा अड़तालीस मिनट के एक घंटे जैसी समय की अवधि का द्योतक है।[8] वहीं मोनियर विलियम्स ने भी इसी कथन का अनुगमन किया है।[9] ऋग्वेद संहिता में मुहूर्त के सन्दर्भ में एक मन्त्र के माध्यम से हम वहाँ देखते हैं कि नदियों से प्रार्थना की गई हैं "हे अत्यधिक जल वाली नदियों तुम मेरे रक्षण एवं गमन के लिए अपनी गतियों को "मुहूर्त" (क्षणभर) के

---

1 ब्रह्मणो वा अष्टाविंशो नक्षत्राणाम्। तै० ब्रा० 1.5.3.4

2 सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु...आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु। अथर्व० सं० 19.7.2-5

3 जौ द्रा घः खे श्वे ही रो षा चिन् मू ष ण्यः सो मा धा नः।
रे मृ धाः श्वा ओ जस् त्रि ष्वो हर् ये ष्ठा इत्यक्षा लिंगैः। ऋग, ज्यो० 14
जौ द्रा गः खा श्वे ही रो षा चि मू ष ण्यः सू मा धा णः।
रे मृ घाः स्वा पो जः कृ ष्यो ह ज्ये ष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गैः। वहीं, यजु० ज्यो० 18

4 रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीर् उध् मुहूर्तम् एवैः...। ऋ० सं० 3.33.5
रूपंरूपं मघवा बोभवीति...परि मुहूर्तम् आगात् स्वैर् मन्त्रैर् अनृतुपा ऋतावा। ऋ० सं० 3.53.8

5 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत - हिन्दी कोश, वाराणसी, 2007 पृ० 810
"द्वादशक्षणमिते काले, पञ्चदशविभक्तस्य दिनस्य पञ्चदशभागे, किञ्चिनन्यूनाधिकघटिकाद्वयरूपे...", वाचस्पत्यम्, वाराणसी, 1990, षष्ठ भाग, पृ० 4758

6 चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार उपाध्याय, वैदिक कोश, दिल्ली, 1995, भाग -3, पृ० 1078

7 मुहूर्तमेवैरयनैरवनैर्वा।। मुहूर्तो मुहुर्ऋतुः।। ऋतुरर्तेगतिकर्मणः।। मुहुर्मूहळ् इव कालः। निरु० 2.7.25

8 वैदिक इंडेक्स, रामकुमार राय, वाराणसी, 1962, भाग -2, पृ० 188

9 "A moment, instant, any short space of time, a partic.Division of time, the 30th part of a day, a period of 48 minutes.", Monier Williams, A Sanskrit - English Dictionary, Delhi, 2004, p.825

लिए शिथिल कर दो।[1] इसी प्रकार तैत्तिरीय शतपथ आदि ब्रह्मण ग्रन्थों में भी "मुहूर्त" शब्द का प्रयोग समय की लघु इकाई के रूप में प्रतिपादित किया गया है।[2] ऋगज्योतिष में 10 + 1/20 कला की एक नाडी, तथा दो दो नाडियों का एक मुहूर्त, 30 मुहूर्तों का एक अहोरात्र कहा गया है।[3] वहीं अथर्व ज्योतिष में मुहूर्त के परिमाण परिमाण का मापन लव-कला - त्रुटि[4], तथा शङ्कुछाया[5] आदि सूक्ष्म से सूक्ष्म काल की इकाइयों के प्रमाणों से प्रतिपादित किया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण[6] तथा वायु पुराण[7] में भी सूर्य प्रकाश के द्वारा शङ्कु प्रमाण से मुहूर्त के विषय में कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने एक अहोरात्र तीस मुहूर्तों वाला कहा गया है जिसमें पन्द्रह दिन के मुहूर्त तथा पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त माने गये हैं। तीस मुहूर्तों का अनेक स्थलों में वर्णन किया है जैसे तैतिरीय ब्राह्मण आदि में।[8] जिन्हें हम तालिका के माध्यम से देख सकते हैं -

---

1 रम॑ध्वं मे वच॑से सोम्याय ऋता॑वरीरुप॑ मुहूर्तमेवैः॑।
प्र सिन्धुमच्छा॑ बृहती म॑नीषावस्युर॑ह्वे कुशिकस्य॑ सूनुः॥ ऋ० 3.33.5

2 मुहूर्ताः प्रेष्या अभवन्। तै० ब्रा० 3.12.9.6
अथ प्रातः। अनशित्वा मुहूर्त सभायामा - सित्वापि कामं पल्ययेत...। वहीं, श० ब्रा० 2.3.2.5

3 कला दश सविंशाःस्यां नाडिका ते मुहूर्तकः। ऋ० ज्यो० 38

4 द्वादशाक्षिनिमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवस्त्रिंशत् कला ज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटिर्भवेत् ॥ अथर्व ज्यो० 4

5 त्रुटीनान्तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशाङ्गुलमुच्छेषं तस्य छायाप्रमाणतः ॥ वहीं, अथर्व ज्यो० 5

6 एते दिनमुहुर्ताश च दिवाकरविनिर्मिताः
शङ्कुछायाविषेण वेदितव्याः प्रमाणतः। ब्रह्मांड पुराण 2.3.41

7 वायु पुराण। वहीं 2.5.42

8 चित्रः केतुः प्रभानाभान्संभान्....शोभमानः कल्याणः। तै० ब्रा० 3.10.1.1
दाता प्रदाताऽऽनन्दो मोदः...सम्भवन्त्संभूतो भूतः। वहीं, तै० ब्रा० 3.10.1.1-2
सविता प्रसविता दीप्तो....शुम्भूः शुम्भमानो वामः। वहीं, तै० ब्रा० 3.10.1.2
अभिशास्ताऽनुमन्ताऽऽनन्दो मोदः प्रमोदः...प्रभूः शंभूर्भुवः। वहीं, तै० ब्रा० 3.10.13

वैदिक – मुहूर्त

	पूर्वपक्ष दिवस मुहूर्त	पूर्वपक्ष रात्रि मुहूर्त		उत्तरपक्ष दिवस मुहूर्त	उत्तरपक्ष रात्रि मुहूर्त
1	चित्रः	दाता	1	सविता	अभिशास्ता
2	केतु	प्रदाता	2	प्रसविता	अनुमन्ता
3	प्रभान्	आनन्दः	3	दीप्तः	आनन्दः
4	आभान्	मोदः	4	दीपयान्	मोदः
5	संभान्	प्रमोदः	5	दीप्यमानः	प्रमोदः
6	ज्योतिष्मान्	आवेशयन्	6	ज्वलन्	आसादयन्
7	तेज्स्वान्	निवेशयन्	7	जवलिता	निषादयन्
8	आतपन्	संवेशनः	8	तपन्	संसादन्
9	तपन्	संशान्तः	9	वितपन्	संसन्नः
10	अभितपन्	शान्तः	10	संतपन्	सन्नः
11	रोचनः	आभवन्	11	रोचन्	आभूः
12	रोचमानः	प्रभवन्	12	रोचमान्	विभूः
13	शोभनः	सम्भवन्	13	शुम्भू	प्रभुः
14	शोभमानः	संभूतः	14	शुम्भमान्	शम्भूः
15	कल्याणः	भूतः	15	वाम्	भुवः

1.12.5 तुलनात्मक विश्लेषण

प्रस्तुत अध्याय में ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित ज्योतिषीय पदार्थो यथा नवग्रहों के संक्षिप्त विवेचन के साथ साथ नक्षत्र, ऋतु, मास, अहोरात्र, दिशा तथा मुहुर्तादि के विषय में संक्षिप्त उल्लेख किया गया है वेदाङ्ग ज्योतिष तथा परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में विस्तार को प्राप्त होने वाले ज्योतिषीय पदार्थ तीनों वेदों में प्राप्त ज्योतिष विषयक तत्त्वों के आधार पर इनके (ऋगज्योतिष, यजुर्वेद ज्योतिष, अथर्व ज्योतिष) तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता हैं।

द्वितीय अध्याय

वैदिक साहित्य में नक्षत्र विवेचन

2.1 नक्षत्र व्युत्पत्ति

नक्षत्र शब्द नक्ष् धातु तथा अत्रन् प्रत्यय से जुड़कर बना है (नक्ष् + अत्रन्)।[1] यहाँ नक्ष् धातु का प्रयोग गति अर्थ में हुआ है जिसका अर्थ तारा माना गया है। तारा को हमेशा गमनशील भी कहा गया है।[2] यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण में भी नक्षत्रों को गमनशील कहा गया है।[3] निरुक्ताकार यास्क ने भी नक्षत्र शब्द की की निरुक्ति की है, पहला नक्ष् धातु गतिशीलता का वाचक है, दूसरा नञ् पूर्वक क्षत्र का अभिप्राय क्षत्र रहित होने से है।[4] अथर्ववेदीय गोपथ में भी नक्षत्रों के विषय में कहा गया है कि "नक्षत्र कभी नष्ट नहीं होते" इसलिए इसी में नक्षत्रों का नक्षत्रत्त्व है।[5] इसी कथन को पाणिनीय कहते हैं - "जो क्षीण नही होता वह नक्षत्र (न् + क्षर् + अत्रन्) है।[6] वेदों में नक्षत्रों के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग मिलता है। जैसे - भ, नभ, ऋक्ष, रोचना, तारक तथा तारा आदि शब्द।[7]

2.2 वेदों में नक्षत्र के लिए प्रयुक्त नभ, तारा आदि संज्ञाएँ

नक्षत्र और तारे दोनों ही शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। ऋग्वेद में "द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः" तारे के अर्थ में "नभः" शब्द का प्रयोग मिलता है। कालान्तर में चन्द्रमार्ग में पड़ने वाले नभः (तारों) के लिए नक्षत्र संज्ञा का प्रयोग होने लगा, फिर धीरे-धीरे पूर्ण आकाशस्थ जिन्हें "नभः" शब्द से सम्बोधित किया जाता था उन सभी को नक्षत्र नाम से जाना जाने लगा।[8] यही कथन हमें अथर्व में भी देखने को मिलता है।[9] वहीं

---

1 नक्षति शोभांगच्छति। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, प्रयाग, पृष्ठ - 578, 1989

2 तारा हि नित्यमेव गच्छन्ति। वैदिक कोश, पृ०.760, चन्द्रशेखर, अनिलकुमार

3 यन्ति वा आपः इत्यादित्य एति चन्द्रमायान्ति नक्षत्राणि। शत० ब्रा० 11.5.7.10

4 नक्षत्राणिनक्षतेर्गतिकर्मणः नेमानिनक्षत्राणि इतिचब्राह्मणम्। निरुक्त, 3.4.20

5 नक्षत्राणिनक्षतेर्गतिकर्मणः नेमानिनक्षत्राणि इतिचब्राह्मणम्। निरुक्त, 3.4.20

6 नक्षीयते नक्षरति इति नक्षत्रम्। वैदिक कोश, भाग 2, पृ० 760

7 शास्त्री गिरिजा शंकर, वैदिक ज्योतिष, प्रयाग, पृ० 182
नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाप्युडु। वामन, अमरकोश, प्रथम काण्ड (दिग्वर्ग), पृ० 17

8 ...नक्षत्राणामेषामुपस्थेसोम आहितः। ऋ० सं० 10.85.2

9 अथर्व० सं० 14.1.2

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि सूर्य के आते ही सारे नक्षत्र (तारागण) चोरों के समान भाग जाते हैं।[1] यही कथन हमें अथर्व में भी प्राप्त होता है।[2] मन्त्र का आशय यह कि जैसे ही प्रातः काल सूर्य का आगमन होता है वैसे ही सूर्य के प्रकाश से दिन में नक्षत्र तारागण हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं सूर्य की चमक से वह हमें दिखाई नहीं देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन्हें आज हम रात्रिकाल में आकाश की ओर देखते हुए तारा संज्ञा देते हैं उन्हीं तारागणों को वैदिक समय में नक्षत्र कहा जाता था। इसी प्रकार ऋग्वेद में वर्णित तारों के लिए अन्तरिक्ष के लिए भ अथवा नभः शब्दों के लिए अनेक स्थानों पर नक्षत्र शब्द प्रयुक्त हुआ है।[3] ऋग्वेद में लगभग 10 बार नक्षत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।[4]

2.3 ऋग्वेद में मघा,पुनर्वसु आदि नक्षत्रों के व्युत्पत्ति परक अर्थ

ऋग्वेद में मघा,पुनर्वसु आदि नक्षत्रों के व्युत्पत्ति परक अर्थ में वर्णित पुनर्वसु, मघा, चित्रा, रेवती, रोहणी और मृगशिरा नक्षत्र वाचक शब्दों के व्युतपत्तिपरक रोचक अर्थों का वर्णन प्राप्त होता है।

पुनर्वसु नक्षत्र - "बार-बार धन देने" के अर्थ में पुनर्वसु नक्षत्र का प्रयोग किया गया है।[5] सायणाचार्य भी अपने भाष्य में इसी अर्थ को प्रकट करते हैं।[6]

चित्रा, मघा नक्षत्र - चित्रा तथा मघा का अर्थ यहाँ "विचित्रधना" किया गया है।[7] आचार्य यास्क ने भी मघा शब्द के अर्थ में मघा के लिए "धननामधेयम" पद का प्रयोग किया है।[8]

रेवती नक्षत्र - रेवती के लिए "धनवती" कहा गया है।[9] अर्थात जो धन से युक्त है वह रेवती नक्षत्र है।

---

1 अपत्ये तावयो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः। सूराय विश्वचक्षसे। ऋ० सं० 1.50.2

2 अथर्व० सं० 13.2.17
अथर्व० सं०। वहीं - 20.47.14

3 शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्वंतरिक्षम्। ऋ० सं० 3.54.19
…नाकमुष्वं नुनुदे वृहन्तम द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम। वहीं, ऋ० सं० 7.86.

4 तिवारी शशि, वैदिक अध्ययन, पृ० 171

5 अग्नीषोमा पुनर्वसू। अस्मे धारयतं रयिम्। ऋ० सं० 10.19.1

6 "पुनः पुनर्वस्तारौ स्तोतृणामाच्छादयितारौ (देवौ)"

7 वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय इशे वसूनाम्। ऋ० सं० 7.75.5

8 मघमिति धननामधेयं महतेदनकर्मणः। निरुक्त 1.7

9 स्वस्ति पथ्ये रेवती। ऋ० सं० 5.51.14
उपमास्वबृहती रेवतीरिषोधि स्तोत्रस्य पवमान नोगहि। ऋ० सं० 9.72.9

रोहणी, मृगशीर्ष नक्षत्र - ऋग्वेदीय ऐतरेय में रोहणी और मृगशीर्ष दोनों नक्षत्रों के विषय में संक्षिप्त चमत्कारिक कथा मिलती है।[1]

2.4 यजुर्वेद में रोहिणी,अनुराधा आदि नक्षत्रों के व्युत्पत्ति परक अर्थ

तैत्तिरीय ब्राह्मण पर सायण भाष्यानुसार किये गए कुछ नक्षत्रों का व्युत्पत्ति परक सामान्य अर्थ -

रोहणी - रोहिणी नक्षत्र शब्द रूह धातु से बना है।[2] जिस नक्षत्र में सभी कामनाएं पूर्ण होती हैं उस नक्षत्र का नाम रोहणी है।[3]

पुनर्वसू नक्षत्र।[4] पुनर्वसु शब्द पुनः + वसु से बना है। जिस नक्षत्र से पुनः धन - ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है उसे "पुनर्वसु" नक्षत्र कहते हैं।[5]

अनूराधा नक्षत्र।[6] अनूराधा नक्षत्र की व्युत्पत्ति अनु + राध् से हुई है। अनूराधा नक्षत्र में अनुकूल सामग्री से समृद्धि प्राप्त होती है।[7]

रेवती नक्षत्र।[8] रेवती शब्द रेवत + ङीष् से बना है। रेवती नक्षत्र में देवताओं ने असुरों को भयभीत करने वाला वाला शब्द किया। इसलिए रेवती नाम पड़ा।[9]

---

1 प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्।
दिवमित्यन्य.....सिक्तमधावत् त्तत् सरोऽभवत्। ऐ० ब्रा० 13.9

2 प्रजापति रोहिण्यामग्निसृजत। तं देवा रोहिण्यामादधत। ततो वै ते सर्वानोहानरोहन्।
तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम्। यो रोहिण्यामग्निमाधत्ते। ऋध्नोत्येव। सर्वानोहानोहति। तै० ब्रा०1.1.2.2

3 रुह्यन्ते प्राप्यन्त इति रोहाः कामास्ते च यस्यां रुह्यन्ते सा रोहिणी। तै० ब्रा० सा० भा०, पृ०7

4 दैवा वै भद्राः सन्तोऽग्निमाधित्सन्त। तेषामनाहितोऽग्निरासीत्। अथैक्यो वाम वस्वपाकामत्।
ते पुनर्वस्वोरादधत...पुनरेवैन वामं वसूपावर्तते। तै० ब्रा० 1.1.2.2-3

5 पुनरुपावृत्तं वस्वनयोरिति पुनर्वसू इति भावः। तै० ब्रा०, भट्टभास्कर भाष्य, प्रथमाष्टकम्, पृ०8

6 अन्वेषामरात्स्मेति। तदनूराधाः। तै० ब्रा० 1.5.2.8
पुरा कदाचिद्युयुत्सवो देवाः परस्परमिदमब्रुवोषामसुराणा.....समृद्धिरत्रेति व्युत्पत्तेः। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 229

7 पुरा कदाचिद्युयुत्सवो देवाः परस्परमिदमब्रुवोषामसुराणा.....समृद्धिरत्रेति व्युत्पत्तेः। तै० ब्रा० सा० भा०, पृ० 229

8 रेवत्यामरवन्त। तै० ब्रा० 1.5.2.9

9 यस्मिन्नक्षत्रे....शब्दमकुर्वंस्तस्य रेवतीति नाम। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 229

अश्वयुजौ।[1] जिस नक्षत्र में देवताओं ने रथ एवं अश्व तैयार किए उस नक्षत्र का नाम अश्वयुक् हुआ।[2] 'अश्विनी' 'अश्विनी' अश्व + युज् से यह शब्द निष्पन्न हुआ है।

अपभरणी नक्षत्र।[3] जिस नक्षत्र में असुरों ने प्राणों का अपहरण कर दिया उस नक्षत्र का नाम अपभरणी हुआ है।[4] यहाँ अप + वह् के द्वारा अपभरण अथवा अपहरण का अर्थ स्पष्ट है।[5]

2.5 वैदिक संहिताओं में क्रमानुसार नक्षत्रों का आरम्भ

यदि नक्षत्रों के क्रम को देखा जाए तो वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर वेदाङ्ग ज्योतिष तक सभी में नक्षत्रों के नाम एक क्रम से आए हैं। और उन सभी में नक्षत्रों का प्रारम्भ एक निश्चित नक्षत्र से होता है। जैसे तैत्तिरीय संहिता में, काठक संहिता में, मैत्रायणी संहिता में तथा शौनकीय अथर्ववेद संहिता में सभी नक्षत्रों के क्रमपूर्वक नाम आए हैं।[6] और इसी क्रम में लगध विरचित वेदाङ्ग ज्योतिष में भी नक्षत्र क्रमानुसार नक्षत्रों के देवताओं का वर्णन प्राप्त होता है।[7] इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में श्राद आदि क्रियाओं के प्रसङ्ग में नक्षत्रों नक्षत्रों का क्रमिक उल्लेख किया गया है।[8] वहीं श्राद्ध के प्रसङ्ग में महाभारत के अनुशासन पर्व में क्रमपूर्वक नक्षत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है।[9] यही श्राद कर्म के विषय में अग्नि पुराण में भी नक्षत्रों का क्रमपूर्वक वर्णन किया गया है।[10] कूर्म पुराण में भी श्राद्धकर्म के विषय में क्रमपूर्वक नक्षत्रों को सूचित किया गया है।[11] वहीं

---

1 अश्वयुजोरयुञ्जत। तै० ब्रा० 1.5.2.9

2 यस्मिन्नक्षत्रे...वन्तस्याश्वयुगगिति नाम। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 229

3 अपभरणीष्वपावहन्। तै० ब्रा० 1.5.2.9

4 यस्मिन्नक्षत्रे......अवहंस्तस्यापभरणीति। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 229

5 सरोज ' दीक्षा ' विद्यालंकार, ऐतरेय एवं तैत्तिरीय ब्राह्मणों के निर्वचन, पृ० 139,

6 तैत्तिरीय संहिता। 4.4.10.1-2
काठक संहिता। वहीं, 39.13
मैत्रायणी संहिता। वहीं, 2.13.20
अथर्व शौनाकीय शाखा। 19.7.2-5

7 वेदाङ्ग ज्योतिष। श्लोक - 32-34

8 याज्ञवल्क्य स्मृति। 1.265- 268

9 महाभारत, अनुशासन पर्व। 89.2-14

10 अग्निपुराण। 163.37-40

11 कूर्मपुराण। 2.20.9-15

ब्रह्माण्ड पुराण में भी नक्षत्रों के आधार पर श्राद्धकर्म का विषय बताया गया है।[1] इसी प्रकार से नक्षत्रों का वर्णन मार्कंडेय पुराण मैं यजमान द्वारा श्राद्ध से प्राप्त होने वाले फल के विषय में बताया गया है।[2] मनुष्य द्वारा किसी विशेष कामना की इच्छा से किसी विशेष नक्षत्र में श्राद करने का विधान विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बताया गया है।[3] इस प्रकार से इन सभी वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, स्मृतिग्रन्थों, वेदाङ्ग तथा महाभारत पुराण आदि में हमें जो नक्षत्रों का क्रम प्राप्त होता है वह कृतिका नक्षत्र से प्रारम्भ होता है और भरणी नक्षत्र में नक्षत्र कर्मों की समाप्ति होती है इन सभी स्थलों पर हमें एक समान कृतिका से नक्षत्रों का प्रारम्भ होना देखा जाता है परन्तु वेदाङ्गोत्तर अनेक ज्योतिषीय ग्रन्थ इस प्रकार से हैं जिनमें नक्षत्रों का प्रारम्भ अश्वनी से होता है और उनकी समाप्ति अभिजीत पर हो जाती है।

2.6 वैदिक संहिताओं में नक्षत्रों की भिन्न-भिन्न संख्याएँ

वेद एवं वेदाङ्गों में नक्षत्रों की संख्या के विषय में भिन्न भिन्न मत प्राप्त होते हैं। परन्तु वर्तमान समय में भारतीय ज्योतिष की गणनाओं में कुल 28 नक्षत्र हैं। इन 28 नक्षत्रों में भी 28 वां नक्षत्र "अभिजित " को कुछ ग्रन्थों में नहीं गिनाया गया है। इसीलिए कुछ ज्योतिर्विद 27 नक्षत्रों को मानते हैं तथा कुछ ज्योतिर्विद 28 नक्षत्रों को ही मानते हैं।

2.6.1 ऋग्वेद में नक्षत्रों की संख्याएँ

ऋग्वेद में हमें एक स्थान पर 34 प्रकार के पिण्डों का उल्लेख प्राप्त है। जिसमें सम्भवतः सूर्य ग्रह चन्द्र ग्रह 5 तारा ग्रह तथा 27 नक्षत्रों का समावेश किया है इन सभी में से एकमात्र सूर्य ही समस्त ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाला प्रकाशपुंज ग्रह है।[4] यहाँ हमें चन्द्र मार्ग में पड़ने वाले 27 नक्षत्रों का संकेत तो प्राप्त होता है। परन्तु उन 27 नक्षत्रों में से कुछ नक्षत्रों का ही वर्णन हमें यहाँ देखने को मिलता हैं। इन नक्षत्रों के नामों में भी कुछ भिन्नता देखने को मिलती है।

---

1 ब्रह्मांड पुराण, माध्यम भाग 18.2-15

2 मार्कंडेय पुराण। 30.8-17

3 विष्णुधर्मोत्तर पुराण। 1.142.33-37

4 शर्मा पुनीता; लगध ज्योतिष, सुयशाटीका, पृ० 46

जैसे – पुष्य नक्षत्र के लिए ऋग्वेद में तिष्य[1] शब्द का प्रयोग किया गया है, चित्रा[2], रेवती[3], मघा नक्षत्र के लिए ऋग्वेद में अघा शब्द का प्रयोग किया गया है फल्गुनी को अर्जुनी[4], पुनर्वसु[5], मृगशीर्ष। इस प्रकार से हमें ऋग्वेद में नक्षत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है

2.6.2 यजुर्वेद में नक्षत्रों की संख्याएँ

ऋग्वेद में जहाँ हमें 27 भागों में विभक्त नक्षत्रमण्डल के 27 नक्षत्रों में से कुछ ही नक्षत्रों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। वही हमें "कालक्रमेण परिवर्तमान" तथा "चक्रार पंक्ति इव गछति" के समान कालचक्र के घूमने के कारण कुछ ही कालान्तर में यजुर्वेदीय संहिताओं में नक्षत्रों का विशद वर्णन प्राप्त होने लगा। यजुर्वेदीय संहितओं में कहीं 27 तो कहीं 28 नक्षत्रों का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे - तैत्तिरीय ब्राह्मण में क्रमानुसार 28 नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है।[6] परन्तु यहाँ 28 वां नक्षत्र अभिजीत ना हो करके 28 हुए नक्षत्र को ब्राह्मण कहा गया है।[7] वही शतपथ में 27 नक्षत्रों तथा 27 उप - नक्षत्रों की चर्चा मिलती है।[8] परन्तु परन्तु कहीं ना कहीं शतपथ ब्राह्मण के एक दो प्रसङ्गों में "अभिजीत" शब्द अवश्य प्राप्त होता है जिसे हम अभिजित नक्षत्र कह सकते हैं।[9] वहीं ताड्य ब्राह्मण में भी 27 नक्षत्रों को कहा गया है।[10] अथर्ववेद संहिता में

---

1 न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवोस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम्। ऋ० सं० 5.54.13
कृशानुमस्तर्नि तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे। वहीं, ऋ० सं० 10.64.8,

2 अस्थुरु चित्रा उपसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु...। ऋ० सं० 4.51.2

3 येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष। ऋ० सं० 4/51/4

4 सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अधासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यों पर्युह्यते। ऋ० सं० 10.85.13

5 अग्नीषोमा पुनर्वसू। अस्मे धारयतं रयिम्।। ऋ० सं० 10.19.1

6 कृतिकादीनि भरण्यन्तानि सप्तविंशतिनक्षत्राणि तदपेक्षया ब्राह्मणो अष्टाविंशो नक्षत्रम्। तै० ब्रा०, सा० भा०, पृ० 232
अग्नेः कृत्तिका। शुक्र परस्ताज्ज्योतिरवस्तात्। प्रजापते रोहिणी...। तै० ब्रा० 1.5.1
अग्निनः पातु कृत्तिकाः। नक्षत्रं देवमिन्द्रियम्..। वहीं, तै० ब्रा० 3.1.1
ऋध्यास्म हव्यैर्नमसोपसद्य। मित्रं देवं मित्रधेयं नो अस्तु...। वहीं, तै० ब्रा० 3.1.2
अग्निर्वा अकामयत। अन्नादो देवानां स्यामिति...। वहीं, तै० ब्रा० 3.1.4
मित्रो वा अकामयत। मित्रधेयमेषु लोकेष्वभिजयेयमिति...। वहीं, तै० ब्रा० 3.1.5

7 ब्राह्मणो वा अष्टाविंशौ नक्षत्राणाम्। तै० ब्रा० 1.5.3.4

8 नक्षत्राणि ह त्वेवैषोऽग्निश्रितः। तानि वाऽएतानि सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि सप्तविंशतिः
सप्तविंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकं...। श० ब्रा० 10.5.4.5

9 क्षत्रात्पृष्ठयमग्नेरभिजितमह्यः...। श० ब्रा० 12.1.2.2
अयमेव दक्षिणी बाहुरभिजित्। वहीं - श० ब्रा० 12.1.4.2

10 सप्तविंशतिनक्षत्राणि...! ता० ब्रा० 23.23.3

भी हमें 28 नक्षत्रों का वर्णन प्राप्त होता है।[1] वेदों के पश्चात वेदाङ्ग ज्योतिष की बात करें तो वेदाङ्ग ज्योतिष में भी 27 नक्षत्रों का नाम उल्लेख प्राप्त होता है। परन्तु ऋग्यजुवेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का वर्णन सांकेतिक रूप में किया गया है।[2]

2.6.2.1 यजुर्वेदीय संहिताओं में नक्षत्रों का देवतापरक वर्गीकरण

यहाँ हमें नक्षत्रों का भिन्न भिन्न प्रकार से वर्गीकरण मिलता है। यजुर्वेद काल में महर्षियों को नक्षत्र विषय का ज्ञान पूर्ण रूप से हो चुका था। यहाँ हमें नक्षत्रों का विकसित रूप देखने को मिलता है। वर्गीकरण का स्पष्ट उदाहरण - तैत्तिरीय संहिता[3], काठक संहिता[4], मैत्रायणी संहिता[5], कठ - कपिष्ठल संहिता, वाजसनेयी संहिता आदि में उपलब्ध होता है। वेदों में नक्षत्रों का वर्गीकरण लिंग, वचन,एवं देवता के आधार पर होता था परन्तु उनमें भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में मुख्यरूप से 28 नक्षत्रों का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है। 1. देवतागत 2. गतिगत, पहला यहाँ जो देवता पर धारित नक्षत्र हैं उन सभी नक्षत्रों के अपने - अपने अधिष्ठातृ देवताओं का वर्णन किया गया है।[6]

---

1 सुहवमग्ने कृत्तिका रोहणी चास्तु..आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु। अथर्व० सं० 19.7.2.5

2 जौ द्रा घः खे श्वे ही रो षा चिन् मू ष ण्यः सो मा धा रे मृ ध्राः श्वा ओ जस् त्रि ष्वो हर् ये ष्ठा इत्यृक्षा लिंगैः। ऋग.ज्यो.14
जौ द्रा घः खे श्वे ही रो षा चिन् मू ष ण्यः सो मा धा रे मृ ध्राः श्वा ओ जस् त्रि ष्वो हर् ये ष्ठा इत्यृक्षा लिंगैः। वहीं, याजुष.ज्यो.18

3 कृत्तिकानक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातुः ऽपभरणं निक्षत्रं यमो देवता पूर्णापश्चाद्यते देवा अदघुः। तै० सं० 4.4.10

4 अग्निर्देवता कृत्तिका नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता रोहिणी नक्षत्रं मरुतो देवतेन्वका नक्षत्रं रुद्रः...। का० सं० 39.13.90

5 कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताऽग्नेरुचः स्थ प्रजापतेः सोमस्य धातुः...। मै० सं० 2.13.20

6 अग्ने : कृत्तिका। शुक्र परस्ताज्ज्योतिरवस्तात्। प्रजापते रोहिणी। आप : परस्तादोषधययोवस्तात्।
सोमस्येन्वका विततानि। परस्तात् वयन्तोवस्तात्। रुद्रस्य बाहू। मृगयवः परस्ताद्विक्षारोऽवस्तात्।
आदित्यै पुनर्वसू। वातः परदामवस्तात्। बृहस्पतेस्तिष्यः। जुह्वतः परस्ताद्यजमाना अवस्तात्।
सर्पाणामाश्रेषाः।...अपकर्षन्तः परस्तादपवहन्तोवस्तात्। पूर्णा पश्चाद्यत्ते देवा अदघुः। तै० ब्रा० 1/5/1
वहीं - अग्निनः पातु कृत्तिकाः। नक्षत्रं देवमिन्द्रियम्....। तै० ब्रा० 3.1.1
वहीं - ऋध्यास्म हव्यैर्नमसोपसद्य। मित्रं देवं मित्रधेयं नो अस्तु...। तै० ब्रा० 3.1.2
वहीं - अग्निर्वा अकामयत। अन्नादो देवानां स्यामिति...। तै० ब्रा० 3.1.4
वहीं - मित्रो वा अकामयत। मित्रधेयमेषु लोकेष्वभिजयेयमिति...। तै० ब्रा० 3.1.5

नक्षत्र एवं देवत्त्व युक्त तालिका

तैत्तिरीय संहिता	**काठक संहिता**	**मैत्रायणी संहिता**	**तैत्तिरीय ब्राह्मण**
कृतिका अग्नि	कृतिका अग्नि	कृतिका अग्नि	कृतिका अग्नि
रोहिणी प्रजापति	रोहिणी प्रजापति	रोहिणी प्रजापति	रोहिणी प्रजापति
मृगशीर्ष सोम	इन्वका मरुत	इन्वगा मरुत	मृगशीर्ष सोम
आद्रा रुद्र	बाहु रुद्र	बाहु रुद्र	आद्रा रुद्र
पुनर्वसू अदिति	पुनर्वसु अदिति	पुनर्वसु अदिति	पुनर्वसू अदिति
तिष्य बृहस्पति	तिष्य बृहस्पति	तिष्य बृहस्पति	तिष्य बृहस्पति
आश्रेषा - सर्प	आश्लेषा सर्प	आश्लेषा सर्प	आश्रेषा सर्प
मघा - पितर	मघा पितर	मघा पितर	मघा पितर
फल्गुनी - अर्यमा	फाल्गुनी भग	फाल्गुनी भग	पूर्वे फाल्गुनी अर्यमा
फल्गुनी - भग	उत्तराफल्गुनी अर्यमा	फल्गुनी अर्यमा	उत्तरे फल्गुनी भग
हस्त - सविता	हस्त - सविता	हस्त सविता	हस्त सविता
चित्रा - इन्द्र	चित्रा त्वष्टा	चित्रा त्वष्टा	चित्रा द्र, त्वष्टा
स्वाती - वायु	निष्टया वायु	निष्ट्यम् वायु	निष्ट्या वायु
विशाखे - इन्द्राग्नि	विशाखम इन्द्राग्नि	विशाखम इन्द्राग्नि	विशाखे इन्द्राग्नि
अनूराधा मित्र	अनूराधा मित्र	अनूराधा मित्र	अनुराधा मित्र
रोहिणी इन्द्र	ज्येष्ठा इन्द्र	ज्येष्ठा वरुण	रोहिणी इन्द्र
विचृतौ पितर	मूलम् निर्ऋति	मूलम् निर्ऋति	मूलवर्हणी निऋति
अषाढ़ा आप	अषाढ़ा आप	अषाढ़ा आप	पूर्वाअषाढ़ा आप
अषाढ़ा विश्वेदेवा	उत्तराषाढ़ा विश्वेदेवा	अषाढ़ा विश्वेदेवा	उत्तराअषाढ़ा विश्वेदेव
श्रोणा विष्णु	अश्वथ विष्णु	श्रोणा विष्णु	अभिजित ब्रह्म

श्रविष्ठा वसु	श्रविष्ठा वसु	श्रविष्ठा वसु	श्रोणा विष्णु
शतभिषक् इन्द्र	शतभिषक् वरुण	शतभिषं इन्द्र	श्रविष्ठा वसु
प्रोष्ठपदा अजेकपाद	प्रोष्ठपदा अजेकपाद	प्रोष्ठपदा अहिर्बुध्निया	शतभिषक् इन्द्र,वरुण
प्रोष्ठपदाअहिर्बुध्निया	उत्तरेप्रोष्ठपदा अहिर्बुध्निया	प्रोष्ठपदा अजेकपाद	पूर्वेप्रोष्ठपदा अजएकपाद
रेवती पूषा	रेवती पूषा	रेवती पूषा	उत्तरेप्रोष्ठपदा अहिर्बुध्निय
अश्वयुजौ अश्वन्	अश्वयुजौ अश्वन्	अश्वयुजौ अश्वन्	रेवती पूषा
अपभरणी यम	अपभरणी	भरणी	अश्वयुजौ अश्विन
			अपभरणी यम

2.6.2.1.1 देव तथा यम दो भागों में नक्षत्रों का वर्गीकरण

दूसरा यहाँ नक्षत्रों को गति के आधार पर देव नक्षत्र एवं यमनक्षत्र कहकर सम्बोधित किया गया है।[1]

देव नक्षत्र	यम नक्षत्र
कृतिका	अनुराधा
रोहिणी	रोहिणी या ज्येष्ठा
मृगशीर्ष	मूलवर्हणी या मूल
आद्रा	पूर्व अषाढ़ा या अषाढ़ा
पुनर्वसू	उत्तरा या अषाढ़ा
तिष्य	अभिजित्
आश्रेषा	श्रौणा
मघा	श्रविष्ठा
फल्गुनी	शतभिषक

[1] कृत्तिकाः प्रथमम्। विशाखे उत्तमम्। तानि देवनक्षत्राणि। अनुराधा प्रथमम् अपभरणीरुत्तमम्।
तानि यमनक्षत्राणि। यानि देवनक्षत्राणि। तानि दक्षिणेन परियन्ति यानि यमनक्षत्राणि तान्युत्तरेण। तै० ब्रा० 1.5.2.7

फल्गुनी	पूर्वे प्रोष्ठपदा या प्रोष्ठपदा
हस्त	उत्तरे या प्रोष्ठपदा
चित्रा	रेवती
निष्ट्या	अश्वयुजौ
विशाखे	अपभरणी या भरणी

यहाँ यह कहा गया है कि कृतिका नक्षत्र से विशाखा नक्षत्र पर्यन्त देवनक्षत्र हैं। और अनुराधा नक्षत्र से अन्तिम (भरणी) अपभरणी नक्षत्र पर्यन्त यम नक्षत्र कहे गए हैं। यहाँ जो देव नक्षत्र हैं वे देवलोक के समीप और दक्षिण दिशा में रहते हैं। और जो यम नक्षत्र हैं वे यमलोक के समीप उत्तर दिशा में घूमते हैं। इस प्रकार से यहाँ देव नक्षत्रों को दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर भ्रमण करने वाला तथा यम नक्षत्रों को उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की ओर भ्रमण करने वाला कहा गया है। उपयुक्त विषय में बाल गंगाधर तिलक "ओरायन" में लिखते हैं कि देवनक्षत्र दक्षिण गोलार्ध में वसन्त सम्पात से शरद सम्पात और यम नक्षत्र उत्तरी गोलार्ध में शरद सम्पात से वसन्त सम्पात तक विचरण करते हैं।[1]

2.6.3 अथर्वसंहिता में नक्षत्र वर्गीकरण एवं उनसे प्राप्त काम्यपदार्थ

अथर्ववेद में दो सम्पूर्ण सूक्तों के देवता "नक्षत्राणि" हैं।[2] और यहाँ सभी 28 नक्षत्रों का नामोल्लेख प्राप्त होता है।[3] अथर्ववेदीय नक्षत्रसूक्तों में नक्षत्रों की स्तुति की गई है।[4] सभी 28 नक्षत्रों से काम्य अर्थ की प्रार्थना करते हुए इन नक्षत्रों को द्युलोक में प्रकाशित होने वाला, सदा गमनशील, वेगवान और कभी विनष्ट न होने वाला कहा गया है।[5] एक अन्य मन्त्र में ऋषि कल्याण की भावना को प्रकट करते हुए कहता है कि जो

---

1 Nakshatras of the Devas were counted from the vernal to the autumnal equinox, that is, to the point where the south (southern hemisphere) begins, and conversely in the case of the Nakshatras of Yama.", Lokamanya Bal Gangadhar Tilak, The Orion or Researches into The Antiquity of The Vedas, p.43

2 अथर्ववेद काण्ड - 19, मन्त्र 7- 8

3 हन्तु। अथर्व० सं० 19.7.2 - 5 सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु......आ मे रयिं भरण्य आ व

4 चित्राणि साकं दिवि रोचानि सरीसद्धपाणि भुवने जवानि......आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु। अथर्व० सं० 19.7.1 - 5

5 शशि तिवारी, वैदिक अध्ययन, पृ० 171 - 173

नक्षत्र द्युलोक में, अन्तरिक्ष में, जलों में, भूमि पर, पर्वतों पर, दिशाओं में, चन्द्रमा जिसका भोग करता हुआ जाता है, वे सब नक्षत्र मेरे लिए कल्याणकारी हो।[1]

अथर्ववेद में जिन जिन नक्षत्रों से जिस जिस फल की प्राप्ति की इच्छा की गई है उन सभी काम्य पदार्थों और उन नक्षत्रों से युक्त प्रस्तुत तालिका -

क्रम	**नक्षत्र**	**इच्छित पदार्थ**	**क्रम**	**नक्षत्र**	**इच्छित पदार्थ**
1	कृतिका	सुख की इच्छा	15	अनुराधा	अविनाश
2	रोहिणी	सुख की इच्छा	16	ज्येष्ठा	अविनाश
3	मृगशीर्ष	कल्याण की कामना	17	मूल	अविनाश
4	आद्रा	शान्ति की प्रार्थना	18	पूर्वाषाढ़ा	भोज्य पदार्थ
5	पुनर्वसु	उत्तम वाणी	19	उत्तराषाढ़ा	बल
6	पुष्य	उत्तमता	20	अभिजित्	शुभकर्म फल
7	आश्लेषा	प्रकाश	21	श्रवण	उत्तम पुष्टि
8	मघा	प्रगति	22	धनिष्ठा	उत्तम पुष्टि
9	पूर्वाफल्गुनी	शुभ कर्म फल	23	शतभिषक्	वर्णीय धन
10	उत्तराफल्गुनी	शुभ कर्म फल	24	पूर्वा भाद्रपद	उत्तम सुख
11	हस्त	कल्याण	25	उत्तरा भाद्रपद	उत्तम सुख
12	चित्रा	कल्याण	26	रेवती	धन
13	स्वाती	सुख	27	अश्विनी	धन
14	विशाखा	उत्तम प्रार्थना	28	भरणी	ऐश्वर्य

1 यानि नक्षत्राणि दिव्य अन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु। अथर्व० सं० 19.8.1
अष्टविंशति शिवानि शम्मानि सह योगं भजन्तु मे। वहीं, अथर्व० सं० 19.8.2

2.6.3.1 अथर्ववेद में नक्षत्रों के प्रति प्रार्थना

यहाँ अभिजीत सहित सभी 28 नक्षत्रों का वर्णन किया गया है। ज्योतिर्गणित में सवा दो नक्षत्र की एक राशि मानी जाती है। इस प्रकार 12 × 2 . 25 = 27 नक्षत्रों का ही प्रयोग होता है। यहाँ नक्षत्रों का प्रारम्भ कृतिका नक्षत्र से किया गया है।

अनिष्ट निवारक सद्बुद्धि की कामना करते हुए, द्युलोक में विचित्र वर्णों से चमत्कृत, अविनाशी, तीव्र गतिशील, नक्षत्रों एवं स्वर्गलोक की स्तुति करते हैं।[1] हे अग्निदेव, कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र हमारे लिए सुखपूर्वक आवाहन करने योग्य हो। मृगशिरा नक्षत्र कल्याणकारी हो। आर्द्रा शान्तिकारक हो। पुनर्वसु श्रेष्ठ वाक्शक्ति देने वाला एवं उत्तम फलदायी हो। आश्लेषा प्रकाश करने वाला तथा मघा नक्षत्र हमारे लिए प्रगतिशील मार्ग दिखाने वाला हो।[2] पूर्वाफाल्गुनी पुण्यदायी, हस्त और चित्रा नक्षत्र कल्याणप्रद, स्वाति नक्षत्र सुखदायी राधा - विशाखा नक्षत्र आवाहन करने योग्य तथा अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल नक्षत्र मंगलप्रद हो।[3] पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र अन्न देने वाला और उत्तराषाढा बलदायक अन्नरस देने वाला हो। अभिजित् पुण्यदायी बने, श्रवण एवं धनिष्ठा नक्षत्र हमारे लिए उत्तम रीति से पालन करने वाले हो।[4] शतभिषा हमें वैभव देने वाला तथा दोनों श्रेष्ठपदा सुख प्रदान करने वाले हो। रेवती और अश्वयुग नक्षत्र ऐश्वर्यदाता तथा भरणी वैभव प्रदान करने वाला हो।[5] यहाँ समूह रूप में नक्षत्रों की प्रार्थना की गई है। कृत्तिकादि कल्याणप्रद जो सभी २८ नक्षत्र है, वे हमें अभीष्ट प्रदान करें। नक्षत्रों का सहयोग हमारे लिए लाभप्रद हो।[6] जो नक्षत्र द्युलोक में, अन्तरिक्ष लोक में,

---

1 चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्। अथर्ववेद- 19.7.1

2 सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्दा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे। वहीं, अथर्व० 19.7.2

3 पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्। वहीं, अथर्व० 19.7.3

4 अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्ज देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्। वहीं, अथर्व० 19.7.4

5 आ मे महच्छतभिषग् वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भर्ग म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु। वहीं, अथर्व०19.7.5

6 अष्टाविंशानि शिवानि शम्मानि सह योग भजन्तु में। वहीं, अथर्व० 19.7.2

जल में पृथ्वी में पर्वतश्रेणियों तथा दिशाओं में दिखाई देते हैं। चन्द्रमा जिनको प्रकाशित करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं वे सभी नक्षत्र हमें सुख प्रदान करने वाले हो।[1]

2.7 तुलनात्मक विश्लेषण

जब हम नक्षत्रों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देखते हैं तो वहाँ हमें सभी सत्ताईस - अट्ठाईस नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है। जहाँ ऋग्वेद में 34 प्रकार के ज्योतिष पिण्डों के विषय में 27 नक्षत्रों का संकेत मिलता है और वहाँ कुछ ही नक्षत्रों का उल्लेख किया जाता है। वही नक्षत्र जिनका संकेत ऋग्वेद में मिलता है उन सभी सत्ताईस नक्षत्रों की संज्ञा सहित यजुर्वेद में पूर्णरूप से उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ हमें नक्षत्रों का देवताओं के आधार पर तथा गति के आधार पर वर्गीकरण देखने को मिलता है जहाँ ऋग, यजुर्वेद में नक्षत्रों के अर्थो का प्रयोग मिलता है वहीं अथर्ववेद में अट्ठाईस नक्षत्रों के साथ साथ उनके मनवांछित फल की कामना करते हुए नक्षत्रों की स्तुति की गयी है। वहीं हमें नक्षत्रों के नामों में भी कुछ भेद देखने को मिलता है जहाँ ऋग्वेद में अघासु और अर्जुनी है वहीं अथर्ववेद में इनके स्थान पर मघासु तथा फाल्गुनी का प्रयोग हुआ है ऋग्वेद के ' अर्जुनी ' का अथर्ववेद में ' फाल्गुनीषु ' शब्द में हुए परिवर्तन का समाधान शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट होता है। यहाँ वर्णन है कि फाल्गुनी नक्षत्रों का अर्जुनी नाम इन्द्र के गुप्त नाम पर पड़ा है। ये फाल्गुनी नक्षत्र इन्द्र के नक्षत्र हैं और इन्द्र का नाम अर्जुन भी है। जहाँ ऋग्वेद में लगभग दस बार नक्षत्र शब्द का प्रयोग हुआ है वहीं अथर्ववेद में सम्पूर्ण दो सूक्तों में नक्षत्रों के देवता नक्षत्राणि है।

2.8 ऋग्यजुर्वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र

वेदाङ्ग ज्योतिष अर्थात लगध ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष को कहा गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का सांकेतिक रूप में उल्लेख किया गया है।[2] इन्ही नक्षत्र विद्या पर आचार्य

1 यानि नक्षत्राणि दिव्य १ न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु। वहीं, अथर्व०19.7.1

2 "जौ द्रा गः खे श्वे ही रो पा श्चिन्मूषक्ण्यः सृभाधाणः।
रे मृ घाः स्वा पो जः कृष्यों ह ज्येष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गै "। याजुष ज्योतिष, पृ०191, पद्य - 18,
"जौ द्रा गः खे श्वे ही रो पा श्चिन्मूषक्ण्यः सृभाधाणः।
रे मृ घाः स्वा पो जः कृष्यों ह ज्येष्ठा इत्यृक्षा लिङ्गै "। वहीं - आर्च ज्योतिष, पृ० 300, पद्य - 14

सोमाकर एवं सुधाकर दोनों ने भाष्य किया है।[1] शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने नक्षत्रो के विशेष क्रम की उत्पत्ति के नियम का प्रतिपादन करते हुए "भारतीय ज्योतिष" में लिखा है कि - यहाँ संकेत के लिए कुछ नक्षत्रों के आद्य, कुछ नक्षत्रों के अन्त्य अक्षर लिखे गये हैं तथा किन्हीं नक्षत्रों के देवताओं के अन्त्य अक्षर लिए गए हैं। अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ करके प्रत्येक पाँच-पाँच नक्षत्रों के अन्तर से आगे के सांकेतिक नक्षत्र लिए गए हैं। अश्वनी के बाद उससे छटा नक्षत्र आद्रा और तत्पश्चात आद्रा से छटा नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी लिया है अग्रिम नक्षत्रों में भी यही क्रम है।[2]

2.8.1 ऋग्यजुर्वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का सांकेतिक रूप

वेदाङ्ग ज्योतिष में उल्लिखित नक्षत्रों के सांकेतिक वर्ण एवं पूर्ण नक्षत्र तालिका -ऋग्याजुष वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों को यद्यपि संकेत रूप में उल्लिखित किया गया हो तथापि उन सभी 27 नक्षत्रों के देवताओं के नाम पूर्ण रूप से वर्णित किया गया है। देवताओं का आरम्भ कृतिका नक्षत्र के देवता अग्नि से हुआ है।[3]

---

[1] जौ द्रा गः खे श्वे इति। सप्तविंशतिभिरक्षरैर्नामदेवतावयवभूतैर्नक्षत्राणि तेषामवयवास्तेषां क्रमस्तस्य च कालव्यवस्था तथा तिथेर्ऋतोर्नक्षत्रस्य युगस्य चाधिमाससम्भवस्योत्तरनक्षत्राणां वर्षस्य भानान्येतानि दश वस्तूनि चोदितानि भवन्तीति वाक्यशेषः। तेषां संख्याद्योतनार्थं स्थाननियमार्थं चैवं निर्देशः। यस्य पादाक्षरं यत्सङ्ख्याकं प्रतिपदादौ भवति पूर्वं पञ्चदशयन्ते यदि द्वौ तदोभौ विभज्यौ। यथा द्वाशमाद्रा इति चोदितम्। एवं सर्वाणि द्वयक्षरचोदितानि.........तस्मादेवं सर्व एव प्रवक्ष्यतेऽस्य मासोपलक्षकाश्चापि भरण्याद्याः। तस्मादेव कालसाम्यम्। एवमेतेषाम्।। लगध ज्योतिष, पृ० 192, पद्य - 18
वहीं - सुधाकर - इदानी पक्षान्ते पूर्वागतभांशतो नक्षत्रज्ञानार्थमादौ लाघवेन नक्षत्रनामस्मरणार्थं भांशक्रमतो नक्षत्राणां लघुनामान्याह जाविति। जौ (आश्वयुजौ = अश्विनौ)। द्रा (आर्द्रा)। गः (धगः = पूर्वफाल्गुन्यौ)। खे (विशाखे)। श्वे (उत्तराषाढा (उत्तरभाद्रपदा अहिर्बुध्न्यम्)। रो (रोहिणी)। षाः (आश्लेषाः)। चित् (चित्रा)। मू (मूलम्)। षक् (शतभिषक्)। ण्यः (भरण्यः)। सू (पुनर्वसू)। मा (उत्तरफाल्गुन्यौ अर्यमा)। धाः (अनुराधाः)। णः (श्रवणः)। रे (रेवती)। मृ (मृगशिरः)। घाः (मघाः)। स्वा (स्वाती)। पः (पूर्वाषाढा : आपः)। जः (पूर्वभद्रपदाः अजः एकपात्)। कृ (कृत्तिकाः)। ष्यः (पुष्यः)। ह (हस्तः)। ज्ये (ज्येष्ठा)। ष्ठाः (श्रविष्ठा : धनिष्ठाः)। इति लिङ्गैः सङ्केतैः ऋक्षा नक्षत्राणि द्राक्स्मरणार्थं ज्ञेया इति। इदं विद्युन्मालानाम छन्दः। तत्र सर्वे वर्णा दीर्घा भवन्ति। लाघवेनैकाक्षरेण नामग्रहणे सर्वेषां नामानि भिन्नानि यथा भवेयुर्यथा। छन्दो भङ्गोऽपि न भवेत् तथा स्वेच्छया नक्षत्रनामतः पूर्वात्रये उत्तरात्रये च तुल्याक्षरग्रहणे नामैक्यदोषात् तद्देवतानामतोऽक्षराणि गृहीतानि आचार्येण। मन्मते चित्रायामाचार्येण ' चित् ' इति गृहीतम् तेन ' चिन्मू ' इति पाठः साधुः। एवं वैदिकव्याकरणानुसारेण ' मृ ' इत्यस्योच्चारणं ' ने ' इति भवति तेन न छन्दोभङ्गदोष इति। अत्र बार्हस्पत्यव्याख्यानं समीचीनम्। युक्तपरो हि वर्णो दीर्घो भवति - इति बुद्ध्याचार्येण नक्षत्रनामसु आदिमध्यान्ताक्षराणि गृहीतानि यतो नामाक्षराणां कस्याप्यक्षरस्य ग्रहणेन न कश्चिद्विशेषस्तदक्षरेण तस्यैव नक्षत्रस्य ग्रहणादित्यलम्।। लगध ज्योतिष, पृ० 193, सुधाकर भाष्य- 18

[2] शंकर बालकृष्ण दीक्षित, लखनऊ, भारतीय ज्योतिष, पृ० 103-104

[3] अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्ब्रहस्पतिः।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च। याजुष ज्योतिष, पृ०245, पद्य- 32

जौ (आश्वयुजौ = अश्विनौ)।

द्रा (आर्द्रा)।

गः (धगः = पूर्वफाल्गुन्यौ)।

खे (विशाखे)।

श्वे (उत्तराषाढा (उत्तरभाद्रपदा अहिर्बुध्न्यम्)।

रो (रोहिणी)।

षाः (आश्लेषाः)।

चित् (चित्रा)।

मू (मूलम्)।

षक् (शतभिषक्)।

ण्यः (भरण्यः)।

सू (पुनर्वसू)।

मा (उत्तरफाल्गुन्यौ अर्यमा)।

धाः (अनुराधाः)।

णः (श्रवणः)।

रे (रेवती)।

मृ (मृगशिरः)।

अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिर्ब्रहस्पती।
सर्पाश्च पितरश्चैव भगश्चैवार्यमापि च। वहीं - आर्च ज्योतिष, पृ० 303, पद्य- 25
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च। याजुष ज्योतिष, पृ० 245, पद्य- 33
सविता त्वष्टाऽथ वायुश्चेन्द्राग्नी मित्र एव च।
इन्द्रो निर्ऋतिरापो वै विश्वेदेवास्तथैव च। वहीं - आर्च ज्योतिष, पृ०303, पद्य-26
विष्णुर्वसवो वरूणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च। याजुष ज्योतिष, पृ० 245, पद्य- 34, ।
विष्णुर्वसवो वरूणोऽज एकपात् तथैव च।
अहिर्बुध्यस्तथा पूषा अश्विनौ यम एव च। वहीं- आर्च ज्योतिष - पृ० 303, पद्य- 27

घाः (मघाः)।

स्वा (स्वाती)।

पः (पूर्वाषाढा : आपः)।

जः (पूर्वभद्रपदाः अजः एकपात्)।

कृ (कृत्तिकाः)।

ष्यः (पुष्यः)।

ह (हस्तः)।

ज्ये (ज्येष्ठा)।

ष्ठाः (श्रविष्ठा : धनिष्ठाः) ।

2.8.1.1 ऋग्यजुर्वेदाङ्ग ज्योतिष में कृतिका से नक्षत्रारम्भ

क्रम	नक्षत्र	देवता	क्रम	नक्षत्र	देवता
1	कृतिका	अग्नि	15	अनुराधा	मित्र
2	रोहिणी	प्रजापति	16	ज्येष्ठा	इन्द्र
3	मृगशिरा	सोम	17	मूल	निऋति
4	आद्रा	रुद्र	18	पुर्वाषाढा	आपः
5	पुनर्वसु	अदिति	19	उत्तराषाढा	विश्वे देवा
6	पुष्य	वृहस्पति	20	श्रवण	विष्णु
7	आश्लेषा	सर्प	21	धनिष्ठा	वसु
8	मघा	पितर	22	शतभिषा	वरुण
9	पूर्वा फल्गुनी	भग	23	पूर्वाभाद्रपद	अज एकपाद
10	उत्तरा फल्गुनी	अर्यमा	24	उत्तराभाद्रपद	अहिर्बुध्निया
11	हस्त	सविता	25	रेवती	पूषा

12	चित्रा	त्वष्टा	26 अश्विनी	अश्विनौ
13	स्वाती	वायु	27 भरणी	यम
14	विशाखा	इन्द्राग्नी		

ऋग्याजुष वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्र देवतापरक आचार्य सोमाकर ने भाष्य किया है।[1] वहीं सुधाकर कृत भाष्य भी वर्णित है।[2] लगध ज्योतिष के एक पद्य में अयनारम्भ के विषय में और चन्द्रमा जिन जिन नक्षत्रों में रहता है उन उन नक्षत्रों के स्वामियों का वर्णन किया गया है।

वसु - धनिष्ठा,

त्वष्टा - चित्रा,

भव - आद्रा,

अज - पूर्वाभाद्रपद,

मित्र - अनुराधा,

सर्प - आश्लेषा,

अश्वनी - अश्वयुज,

जल - पूर्वाषाढ़ा,

धाता - उत्तराफाल्गुनी,

ब्रह्मा - रोहिणी।[3]

1 अग्निः प्रजापतिरिति। प्रसिद्धा एता देवताः। रुद्रस्य प्रतिरूपः सोमः प्रोष्ठपदयोर्विपर्यय : पाठदोषो वा।
याजुष ज्योतिष, पृ० 254, पद्य - 32-34

2 सुधाकरः इदानीं यज्ञेऽर्चनाय नक्षत्रदेवता आह अग्निरिता। कृत्तिकादेरेता नक्षत्रदेवताः संहितायन्येषु सर्वत्र प्रसिद्धाः। अत्र पूर्वभद्रपदाया अजो वैकपादिति देवताद्वयं वा एकदेवताया नामद्वयम्। याजुष ज्योतिष, पृ० 254, पद्य - 33 - 34

3 वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्च मित्रः सर्पोऽश्विनौ जलम्।
धाता कश्चायनाद्याः स्युरर्धपञ्चमभस्त्वृतुः ॥ लगध ज्योतिष, पद्य - 10

उपयुक्त विषय पर सोमाकर तथा सुधाकर ने भाष्य प्रस्तुत किया है।[1]

वही वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया है दोनों भाग क्रूर संज्ञक और उग्र संज्ञक माने जाते हैं। जो क्रूर संज्ञक हैं उनमें आद्रा, चित्र, विशाखा, श्रवण और अश्विन ये नक्षत्र उग्र नक्षत्र कहे गये हैं। मघा, स्वाति, ज्येष्ठा, मूल तथा यम ये क्रूर नक्षत्र माने जाते हैं इनमें शेष कृतिकादि सभी नक्षत्र पुण्य नक्षत्र कहे गये हैं।[2]

2.9 अथर्ववेदीय ज्योतिष में नक्षत्रों की जन्म, सम्पद आदि उपाधियाँ

मूल अथर्ववेदसंहिता को छोड़कर यह एक अर्वाचीन कृति है। "काश्यप प्रजापति संवाद" के रूप में इसमें ज्योतिषीय तत्त्वों का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें यद्यपि नक्षत्रों के नाम उल्लिखित नहीं हैं तथापि इसमें सत्ताईस (27)नक्षत्रों के तीन तीन भाग करके उनकी नौ उपाधियों के नामों की चर्चा की गई है और उनमें किये जाने वाले कार्यों अथवा प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है।[3] सभी 27 नक्षत्रों के 9 विभाग करके प्रत्येक विभाग में 3-3 नक्षत्र आते हैं और फिर वह जन्म, कर्म, आधानादि तथा उत्तम, मध्यम, अधम आदि क्रम से वर्णन किया गया है।[4] वहाँ कुछ इस प्रकार से नौ विभाग हैं - जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र तथा परमैत्र ये नक्षत्रों के 9 विभाग किये गए हैं।[5]

---

1 सोमकर: - वसुस्त्वष्टा भवोऽजश्चेति…..। बसुर्धनिष्ठा देवतोपलतिना। एवं त्वष्टा चित्रा भवो रुद्र आर्द्रा।
अजः पूर्वप्रोष्ठपदाः। मित्रोऽनुराधाः। सर्प आश्लेषाः। अश्विनावश्वयुजौ। जलं पूर्वाषाढ़ाः। धाता उत्तरफाल्गुनी धातार्यमेति मन्ववर्णात्। को रोहिणी। एवमेते ऋक्षाः। एतेनैव क्रमेणायनाद्या स्युर्भवेयुः। एवमप्यर्धपञ्चमभस्त्वृतुः। ऋतौ ऋतौ सार्धाश्चत्वार ऋक्षा भवन्ति। वक्ष्यमाणनक्षत्रैर्जावाद्यैः।। लगध ज्योतिष, पृ०159, भाष्य - 10।
वहीं - सुधाकर: - इदानीमयनेषु नक्षत्राणि ऋतुनक्षत्राणि चाह वसुरिति। वसुर्धनिष्ठा। त्वष्टा चित्रा। भवो रुद्र आर्द्रा। अज एकपात्। मित्रोऽनुराधा। सर्प आश्लेषाः। अश्विनावश्विनी। जलं पूर्वाषाढा। अर्यमा उत्तरफाल्गुन्यः। को रोहिणी। एता अयनाद्याश्चन्द्रोडवः स्युः ऋतुश्चार्धपञ्चमभः। पञ्चमभस्य यदधु सार्धवेद = 4.1/2, सूर्यनक्षत्राणि चैकर्तो भवन्ति। एकस्मिन युगे चन्द्रनक्षत्राणि.....सूर्यनक्षत्राणि......अत उपपन्नम सर्वम्। लगध ज्योतिष, पृ० 160, भाष्य - 10

2 उग्राण्यार्द्रा च चित्रा च विशाखा श्रवणोऽश्वयुक्।
क्रूराणि तु मघाः स्वातिर् ज्येष्ठा मूलं यमस्य यत्। वेदाङ्ग ज्योतिष 36

3 अथर्ववेदीय ज्योतिषम्, महर्षि अभय कात्यायन, भ्रमभञ्जनी - टिका, पृ० 48 - 49

4 नवानां त्रिकवर्णानामाधाने जन्मकर्मणि।
अधमोत्तमवर्गेषु संवदन्तीह भागशः। अथर्ववेदीय ज्योतिषम्, पृ० 48, पद्य-108

5 जन्मसम्पद्विपत्क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव तु। वहीं, अथ० ज्यो० पृ० 48, पद्य- 109

जन्म नक्षत्र - जिस नक्षत्र में जातक का जन्म हो उस नक्षत्र को जन्मतारा अथवा जन्मनक्षत्र कहते हैं।

कर्म नक्षत्र - जन्म नक्षत्र से दसवां नक्षत्र कर्म नक्षत्र होता है[1] और 19 व नक्षत्र गर्भाधान या आधान नक्षत्र कहलाता है।

यह तीनों नक्षत्र ही जन्म तारा के अन्तर्गत आते हैं। यह तीनों नक्षत्र ही परस्पर एक दूसरे के त्रिकोण में स्थित होते हैं (0 अंश 120 अंश तथा 240 अंश)। ये तीनों बिन्दु जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि यह जन्म, भाग्य तथा आधान होते हैं।[2]

सम्पत् नक्षत्र - सम्पत् में जन्म नक्षत्र से दूसरा, ग्यारहवां एवं बीसवाँ ये तीनों नक्षत्र आते हैं।[3]

विपत् नक्षत्र - जन्म से तीसरा, बारहवाँ तथा इक्कीसवाँ नक्षत्र विपत् तारा अथवा विपत्

नक्षत्र कहा गया है।[4]

क्षेम नक्षत्र - क्षेम नक्षत्र के अंदर आने वाले तीन नक्षत्र, जन्मनक्षत्र से चौथा, तेरहवाँ तथा बाईसवाँ, ये नक्षत्र शुभ होते हैं। और इन्हें कुशल भी कहा जाता है।[5]

प्रत्वर नक्षत्र - इसी प्रकार जन्म नक्षत्र से पाँचवें, चौदहवें तथा तेईसवें में नक्षत्र प्रत्वर या प्रत्यरि नक्षत्र कहलाते हैं प्रत्यरि का अर्थ सामने वाला शत्रु होता है।[6]

साधक नक्षत्र - साधक नाम वाला नक्षत्र जन्म नक्षत्र से छठा पन्द्रहवाँ तथा चौबीसवाँ नक्षत्र होता है।[7]

नैधन नक्षत्र - नैधन नक्षत्र जन्म से सातवां, सोलहवाँ तथा पच्चीसवाँ नक्षत्र कहलाता है। यही नैधनतारा बधतारा या वैनासिक तारा भी कहलाता है।[8]

---

1 जन्मनक्षत्रात् कर्मनक्षत्रमुच्यते।

2 एकोनविंशतिश्चैव गर्भाधानकमुच्यते। वहीं, अथर्व० ज्यो०, पृ०48, पद्य - 110

3 द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करो गणः।

4 तृतीयमेकविंशं तु द्वादशं तु विपत्करम्। वहीं, अथर्व० ज्यो०, पृ० 49, पद्य - 111

5 क्षेम्यञ्चतुर्थं द्वाविंशं भवेद्यंच्च त्रयोदशम्।

6 प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात् त्रयोविंशं चतुर्दशम्। वहीं, अथर्व०ज्यो०, पृ० 49, पद्य - 112

7 साधकन्तु चतुर्विंशं षष्ठं पञ्चदशञ्च यत्।

8 नैधनं पञ्चविंशन्तु षोडशं सप्तमं तथा। अथर्व० ज्यो०, पृ० 49, पद्य - 113

मैत्र नक्षत्र - अन्तिम में मैत्र एवं परममैत्र संज्ञक नक्षत्रों के दो विभाग होते हैं। जिनमें से जन्म नक्षत्र से आठवाँ सत्रहवाँ तथा छब्बीसवाँ ये तीनों मित्र संज्ञक होते हैं।[1]

परमैत्र नक्षत्र - नवाँ, अट्ठारहवाँ तथा सत्ताईसवाँ नक्षत्र ये तीनों परममित्र संज्ञक कहलाते हैं।[2]

वर्तमान समय में नक्षत्रों के सम विभाग प्रचलित हैं। और इन्हीं को भास्कराचार्य ने स्थूल नक्षत्र बताया है। जिनमें प्रत्येक भाग 13°/20 का होता है। और यह विभाग केवल राशियों के साथ नक्षत्रों की गणितीय संगति बिठाने के लिए किया गया है। परन्तु इनके अनुसार अथर्व ज्योतिष में फल का कथन करना समीचीन नहीं होगा। वेदाङ्ग ज्योतिष के समय विषम विभाग वाले सूक्ष्म नक्षत्रों का प्रचलन था ऐसा समझना चाहिए। इनसे प्राप्त होने वाला फलादेश सही घटित होता है।[3]

2.9.1 अथर्ववेद ज्योतिष में नक्षत्रों की बृहत् आदि तीन संज्ञाएँ

वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का आकाशीय विस्तार उनके बृहत्संज्ञक नक्षत्र, सम संज्ञक नक्षत्र तथा जघन्य संज्ञक नक्षत्र के अनुसार अलग-अलग है। यह विषम विभाग कहलाता है। इनका आधार चन्द्रमा की दैनिक गति है।[4]

1. बृहत् नक्षत्र - बृहत् अर्थात बड़ा आकाश में जिन नक्षत्रों का विस्तार सामान्य से अधिक है ऐसे 6 नक्षत्र बृहद संज्ञा वाले कहे गए हैं। जिनमें डेढ़ दिन में एक योगतारा (नक्षत्र) प्राप्त होता है। उक्त छः नक्षत्र - रोहिणी, पुनर्वसु, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा तथा उत्तराभाद्रपद है। इनका आकाशीय विस्तार 11°/85/52 मान वाला होता है।[5]

11 अंश

85 कला

52 विकला

---

1 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षड्विंशतिश्चाष्टमम्।

2 सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशञ्च यत्। अथर्व० ज्यो०, पृ० 49, पद्य - 114

3 वहीं, अथर्व०ज्यो० पृ० 64

4 वहीं, अथर्व०ज्यो०, पृ० 62

5 वहीं, अथर्व० ज्यो०, पृ० 63

2. सम नक्षत्र - सम नक्षत्र वे होते हैं जिनमें एक दिन (तीस मुहूर्त बारह घण्टे) में एक योगतारा (नक्षत्र) से युति सम्भव होती है। ये सम संज्ञक 15 नक्षत्र होते हैं। १.कृत्तिका, २.मृगशिरा, ३.पुष्य, ४.मघा, ५.पूर्वाफाल्गुनी, ६.हस्त, ७.चित्रा, ८.अनुराधा ९.मूल, १०.पूर्वाषाढ़ा, ११.श्रवण, १२.धनिष्ठा, १३.पूर्वाभाद्रपद १४.रेवती तथा १५.अश्विनी। आचार्य भास्कर ने इन्हें 13°/10'/35" मान वाला बताया है।[1]

13 अंश

10 कला

35 विकला

3. जघन्य नक्षत्र - यह वह नक्षत्र हैं। जिनमें आधे या उससे कम दिन में ही अग्रिम (नक्षत्र) योगतारा प्राप्त हो जाता है। ये छः नक्षत्र हैं। आद्रा, आश्लेषा, स्वाति,ज्येष्ठा,भरणी तथा शतभिषा। ये 15 मुहूर्त वाले कहे गए हैं। इनका आकाशीय विस्तार छः अंश, पैंतीस कला तथा सत्रह विकला होती है।[2]

6 अंश

45 कला

17 विकला

2.10 तुलनात्मक विश्लेषण

लगधकृत ऋग्याजुषवेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का स्वरुप वैदिक नक्षत्रों से किंचित भिन्न है। यहाँ नक्षत्रों के “जो” “द्रा” “खे” आदि रूप मिलते हैं जो कि नक्षत्रों के ही आदि मध्य तथा अन्त्य वर्ण हैं। यथा आद्रा नक्षत्र के लिए द्रा शब्द का प्रयोग किया गया है (अश्विनौ) आश्वयुजौ के लिए “जौ” का प्रयोग किया गया इसी प्रकार यहाँ सभी नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है जिनका यहाँ देवताओं के साथ उल्लेख प्राप्त होता है। वहीं अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष में यद्यपि नक्षत्रों के नामों का उल्लेख नहीं मिलता तथापि इसमें सत्ताईस (27) नक्षत्रों के तीन तीन भाग करके उनकी नौ उपाधियों के नामों की चर्चा अवश्य की गई है। सत्ताईस नक्षत्रों

---

[1] वहीं, अथर्व० सं०, पृ० 63

[2] वहीं, अथर्व० सं०, पृ०- 63

के क्रमशः नौ विभाग हैं - जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र तथा परमैत्र ये नक्षत्रों के 9 विभाग किये गए हैं।[1] वहीं नक्षत्रों का जन्म, कर्म, आधानादि तथा उत्तम, मध्यम, अधम आदि वर्ग किये गये हैं और साथ ही साथ उनमें किये जाने वाले कार्यों अथवा प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है।[2] वहीं एक नक्षत्र में होने वाले अनेक ताराओं का उल्लेख मिलता है यद्यपि अथर्व ज्योतिष में नक्षत्रों के नाम नहीं है परन्तु मूल अथर्ववेद संहिता में इनके नामों का उल्लेख अवश्य मिलता है जो अथर्व ज्योतिष का आधार है तात्पर्य यह है कि जो नक्षत्रों का वर्णन हमें ऋग यजुर्वेद ज्योतिष में मिलता है उन्ही नक्षत्रों का उल्लेख हमें अथर्व ज्योतिष में मिलता है अथर्ववेद में नक्षत्रों का फलित होने के कारण ये परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में फलित का आधार बनते हैं

2.11 कृतिकादि भरण्यन्त वैदिक नक्षत्रों का भौगोलिक स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक साहित्य में वर्णित कृतिका से भरणी पर्यन्त सभी नक्षत्रों के प्रभाव उनके स्वरूप, गुण, फल, भौगोलिक रूप, प्रत्येक नक्षत्रों में स्थित अनेक भिन्न भिन्न ताराओं की संख्याएँ, नक्षत्रों के अधिपति, नक्षत्रों से की गयी प्रार्थनाएं, किस नक्षत्र में कौनसा कार्य किया जाये जिसका अधिक लाभ मिले, सभी के लिए जो लाभकारी हो उन सभी वैदिक नक्षत्रों का क्रमानुसार यहाँ उल्लेख करते हैं।

2.11.1 कृतिका नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक साहित्य में अग्नि को प्रधान देवता माना गया है। ऋग्वेद एवं सामवेद में प्रारम्भ ही अग्नि शब्द से हुआ है। "अग्निमीडे पुरोहितं" तथा "अग्नि आयाहि वीतये। सम्भवतः यही कारण रहा है कि अग्निदेवता का नक्षत्र कृत्तिका भी नक्षत्रगण का प्रथम नक्षत्र वेदों में सर्वत्र उल्लिखित है। शतपद चक्र में कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में अकार है तथा चारों चरणों में स्वर से ही अक्षर आरम्भ हैं। अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में ' चू ' अक्षर न तो स्वर और न ही व्यंजन का प्रथमाक्षर है। सायद इसीलिए संहिताओं में नक्षत्रों का आरम्भ

---

1 जन्मसम्पद्विपत्क्षेम्यः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव तु। वहीं, अथ० ज्यो० पृ० 48, पद्य- 109

2 अथर्ववेदीय ज्योतिषम्, महर्षि अभय कात्यायन, भ्रमभञ्जनी - टिका, पृ० 48 - 49

अश्विनी से न होकर कृतिका से हुआ है तैत्तिरीय ब्राह्मण[1] के अनुसार कृत्तिका अग्नि का नक्षत्र है, देव नक्षत्र है और नक्षत्रों का मुख है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला प्रमुख होता है। वे अग्निदेव हमारी रक्षा करें जिनकी कृत्तिकाएँ इन्द्रियों को द्योतित करती हैं, जिनकी रश्मियाँ और केतु द्योतमान हैं तथा जो सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। जो अग्निदेव कृत्तिकाओं में बसते हैं वे हमें कर्मफल दें।

वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार कृतिका नक्षत्र का स्थान प्रथम माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्ग उत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों का प्रारम्भ अश्वनी से माना जाता है और कृतिका नक्षत्र का स्थान तृतीय माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित कृतिका नक्षत्र का मान 26°-40 से 40°-00 तक है। कृतिका नक्षत्र में छः तारे विद्यमान हैं जिनके योग से "क्षुर" आकृति का निर्माण होता है। क्षुर जो कि तीर का अन्तिम भाग कहा जाता है।[2] कृतिका नक्षत्र का देवता अग्नि है और यह अग्निवैश्य गोत्र वाला है।[3] इस नक्षत्र में अग्न्याधान आदि कार्य, पाकयज्ञ, यज्ञक्रिया, पशुओं का बन्धन, यज्ञोपवीत, पशु पूजा, आयुध, वस्त्र सम्बन्धित कार्य, बगीचा, चूल्हा बनाना आदि कार्य करने चाहिए।[4]

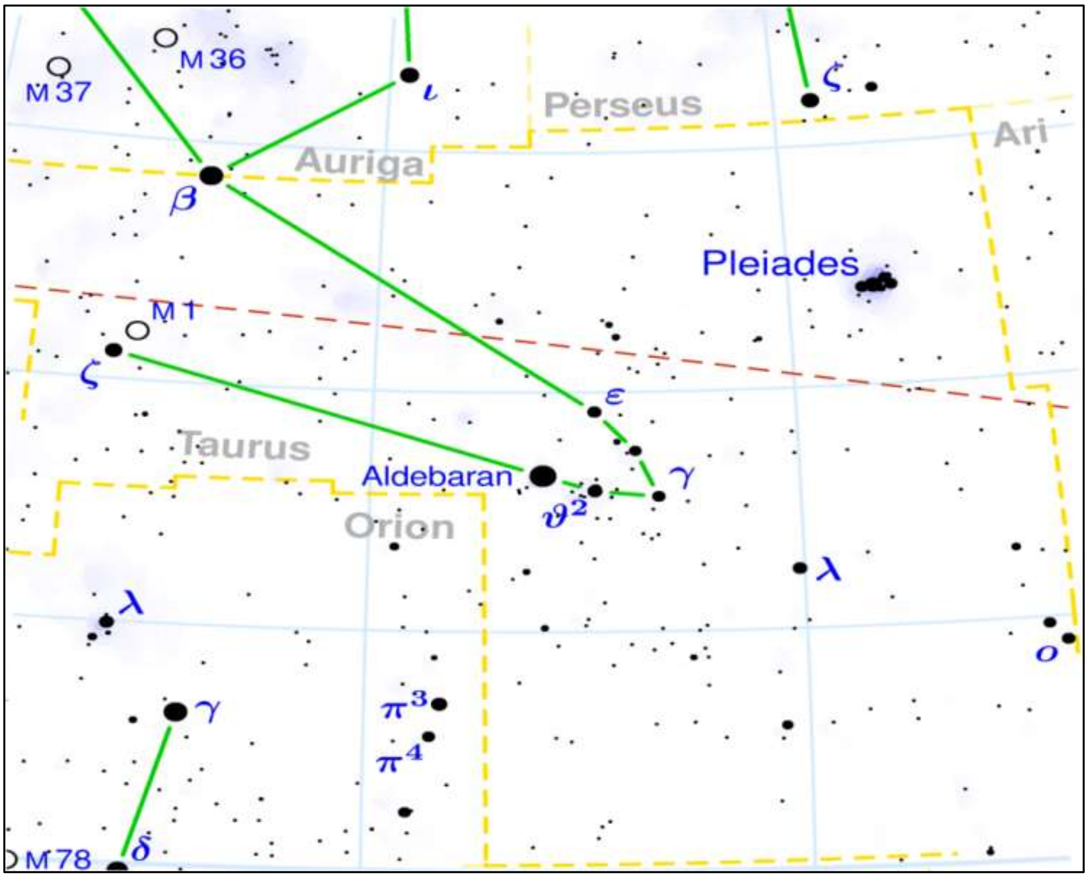
---

1 कृत्तिकास्वग्निमादधीत, एतदग्नेर्नक्षत्रं, मुखं वैतन् नक्षत्राणाम्।
यः कृत्तिकास्वग्निमाधत्ते, मुख्य एव भवति।।
कृत्तिकाः प्रथमं विशाखे उत्तम, एतानि देव नक्षत्राणि।
अग्निर्नः पातु कृत्तिकाः, नक्षत्रं देवमिन्द्रियम्।। तै० ब्रा० 3.1.1

2 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 256

3 वे० ज्यो०, पद्य - 32
क्रतिका क्षुरसंस्थान षडतारा चाग्निदेवता।
अग्निवेश्यश्च गोत्रेण विज्ञेया मृदुदारुण। वहीं, बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 3

4 बृहद्दैवज्ञरन्जनम - न० प्र० 2 - 6
अग्निपरिग्रहसाहस...। धातुर्वाद्विधानम..बहुलायाम। वहीं, वसिष्ठ संहिता, प्र० 14, श्लो० 42



कृतिका मानचित्र[1]

2.11.2 रोहणी नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वेदों में रोहिणी नक्षत्र का स्वामी प्रजापति (ब्रह्मा) कहा गया है[2]। तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] के अनुसार प्रजापति की पत्नी रोहिणी आवे। वह बहुरूपा, वृहती और तेजस्विनी है। वह हमारा यज्ञ सम्पन्न करे। जिससे हम सुवीर होकर सौ वर्ष जियें। रोहिणी का सामने से उदय हो रहा है। वह देवों की प्रिया है और सम्पूर्ण विश्व को प्रमुदित करती है। उसे हविष्यान प्रदान करने पर प्रजापति प्रसन्न होते हैं।

इसी क्रम में रोहिणी नक्षत्र वेदों में दूसरे स्थान पर है और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में रोहिणी नक्षत्र का स्थान चतुर्थ स्थान पर है। भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रो में रोहिणी नक्षत्र का मान 40°-०० से प्रारम्भ होकर

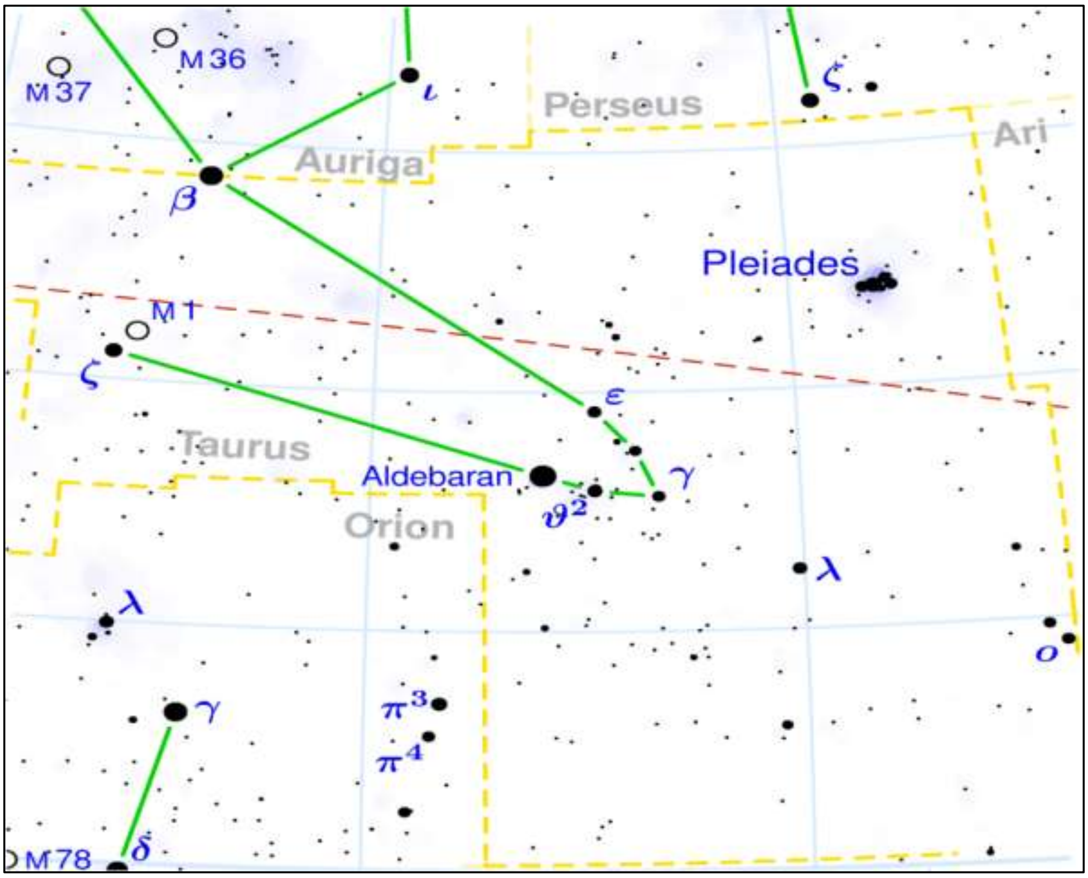
---

1 wikipedia.org/wiki/कृतिका

2 रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता। तै० सं० 4.4.10

3 प्रजापते वेतु पत्नी रोहिणी विश्वरूपा वृहती चित्रभानुः।
सा नो यज्ञस्य सुविते दधातुं यथा जीवेम शरदः सुवीराः।।
रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात् विश्वारूपाणि प्रतिमोदमाना।
प्रजापतिं हविषा वर्धयन्ती प्रियादेवानामुपयातु यज्ञम्।। तै ब्रा 3.1.1

53°-20 तक का है। रोहिणी नक्षत्र 5 तारा समूह के योग से उत्पन्न होता है जिसके कारण इसकी आकृति एक रथ के सामान दिखाई पड़ती हैं। भारतीय दक्षिण प्रान्तों के अनुसार रोहिणी नक्षत्र 42 ताराओं से युक्त तथा वट वृक्ष के सामान माना गया है।[1] रोहिणी का देवता प्रजापति (ब्रह्मा) तथा गोत्र गौतमी कहा गया है।[2] इस नक्षत्र में विवाह बन्धन, बगीचा, देवतायतन, शहर, गांव की स्थापना, खेती का आरम्भ या घर का आरम्भ, वाटिका और अभिषेक सम्बन्धित कार्यों को करना चाहिए।[3]



रोहणी मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 260

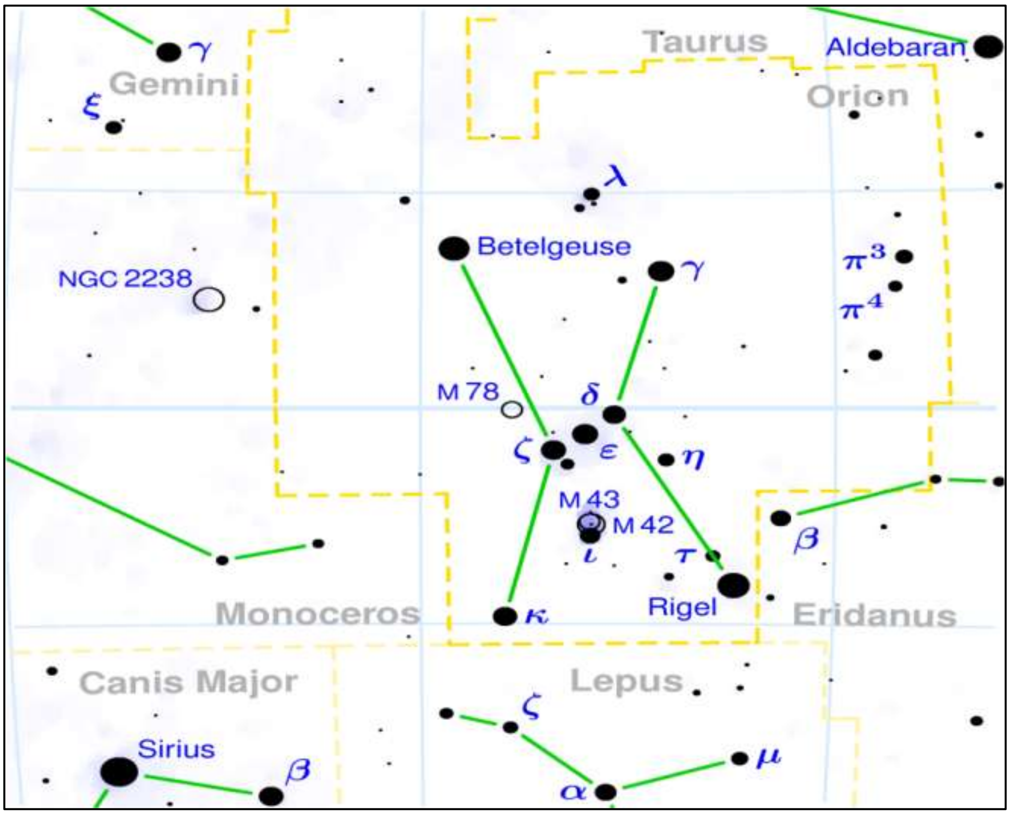
2 वे० ज्यो०, पद्य - 32
रोहिणी..पञ्चतारका।..गोत्रेणा गौतमी ज्ञेया..। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 7-8

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 8-11
सुरनरअखिलं विवाहधनधान्य..। मगलकार्यम..सपौष्टिकम। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 5

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/रोहिणी

2.11.3 मृगशीर्ष (मृगशिरा) नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक संहिताओं में मृगशीर्ष नक्षत्र का स्थान तीसरे पर है। जो कि वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में पाँचवे स्थान पर है। 27 भागों में विभक्त भ-चक्र में मृगशीर्ष नक्षत्र का मान 53° - 20 से प्रारम्भ होकर 66° - 40 तक का माना जाता है। आकाश में स्थित यहाँ 3 तारों के समूह से युक्त मृगशीर्ष नक्षत्र मृग के सिर अर्थात हिरन के सिर के सामान दिखाई देता है।[1] इसका चन्द्रमा देवता व कात्यायनी गोत्र है।[2] इस नक्षत्र में धर्म, दान, विद्यारम्भ, शुभ कार्य, वाहन, गोदान, शयन, आश्रम, राज्याभिषेक, गृहस्थी आदि कार्यों को करना चाहिए।[3]



मृगशिरा मानचित्र[4]

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 260 - 261

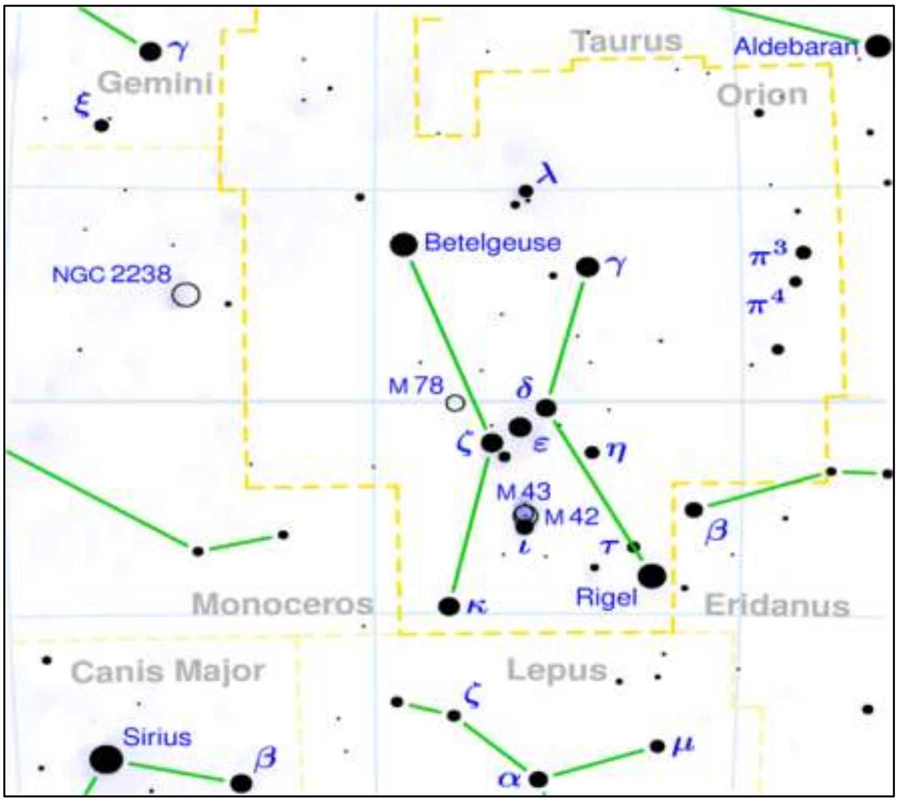
2 वे० ज्यो०, पद्य – 32
त्रितारं सोमदैवत्यं मृदुम मृगशिरो विदुः।
कात्यायनीति गोत्रेण....। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 1

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 12-16
शान्तिपौष्टिक..कर्मोवाहकमंगलाध्यदिकम।
सुरसंस्थापनवास्तु क्षेत्रारम्भादि सिध्यते सौम्ये। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 6

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/मृगशिरा

2.11.4 आर्द्रा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक नक्षत्रों में आर्द्रा नक्षत्र का स्थान चौथा कहा गया है और वेदाङ्गोत्तर ग्रन्थों में आर्द्रा नक्षत्र का स्थान छठें पर माना गया है। आकाशस्थ भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में आर्द्रा नक्षत्र का मान 66° - 40 से प्रारम्भ होकर 80° - 00 तक का माना गया है। यह आकाश में स्थित चमकते हुए एक रत्न के सामान है यह अकेला एक चमकता हुआ रक्तवर्णीय (लाल तारा) तारा जो मनुष्य के शिर की आकृति वाला दिखाई पड़ता है।[1] इस नक्षत्र का देवता (महादेव) रुद्र शीद्यपि गोत्र है।[2] इस नक्षत्र में पाप, दारुण, (कठिन कार्य)खेती सम्बन्धित समस्त धान्य सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।[3]



आर्द्रा मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 262

2 वे० ज्यो०, पद्य - 32
एकतारा भावेदाद्रा रुद्रश्चैवात्र देवता।
..शीद्यपि चैव गोत्रेण ….। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 17, 19

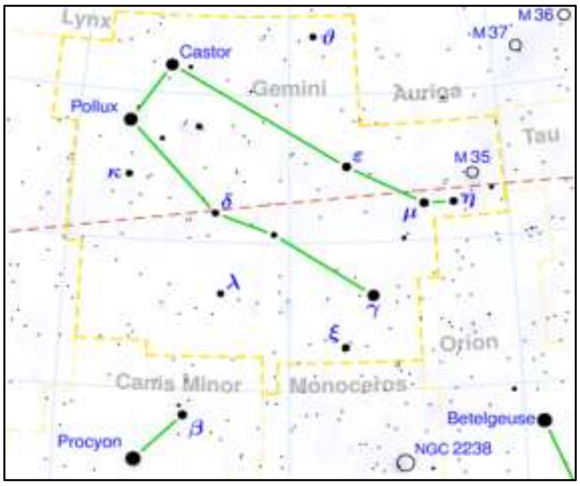
3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 17 - 19
प्रहरणदारुण बन्धननिग्रह विषसंधि वह्वीकर्माद्यम..। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 7

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/आर्द्रा

2.11.5 पुनर्वसु नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक संहिताओं में पुनर्वसु के देवतारूप में अदिति को माना गया है।[1] ऋग्वेद[2] के अनेक मन्त्रों में विद्या, आरोग्य तथा धन को वसु कहा गया है विशेष रूप से वाशु का अर्थ अन्न से है जब नये अन्न के उत्पत्ति का समय आरम्भ होता है तभी पुनर्वसु का प्राकट्य होता है।

वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार पुनर्वसु नक्षत्र का स्थान पञ्चम माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों में पुनर्वसु सातवाँ माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित पुनर्वसु नक्षत्र का मान 80° - 00 से 93°- 20 तक है। पुनर्वसु नक्षत्र में शाकल्य और खण्ड-कटक के अनुसार 2 तारे हैं परन्तु अन्य उल्लेखो में पाया जाता है कि 5 नक्षत्रों से युक्त है और यह नक्षत्र घर की आकृति के समान दिखाई देता है।[3] पुनर्वसु के अदिति देवता तथा वात्स्यायानी गोत्र है।[4] इस नक्षत्र में मन्त्र ग्रहण, समस्त शुभ कार्य, चिकित्सा, पौष्टिक, यात्रा, व्रत, इन्द्र के स्थान सम्बन्धी कार्य आदि करने चाहिए।[5]



पुनर्वसु मानचित्र[6]

---

1 पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता। तै० सं० 4.4 10

2 ऋग्वेद संहिता 1.10.6, 2.22.3, 6.1.13

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 263

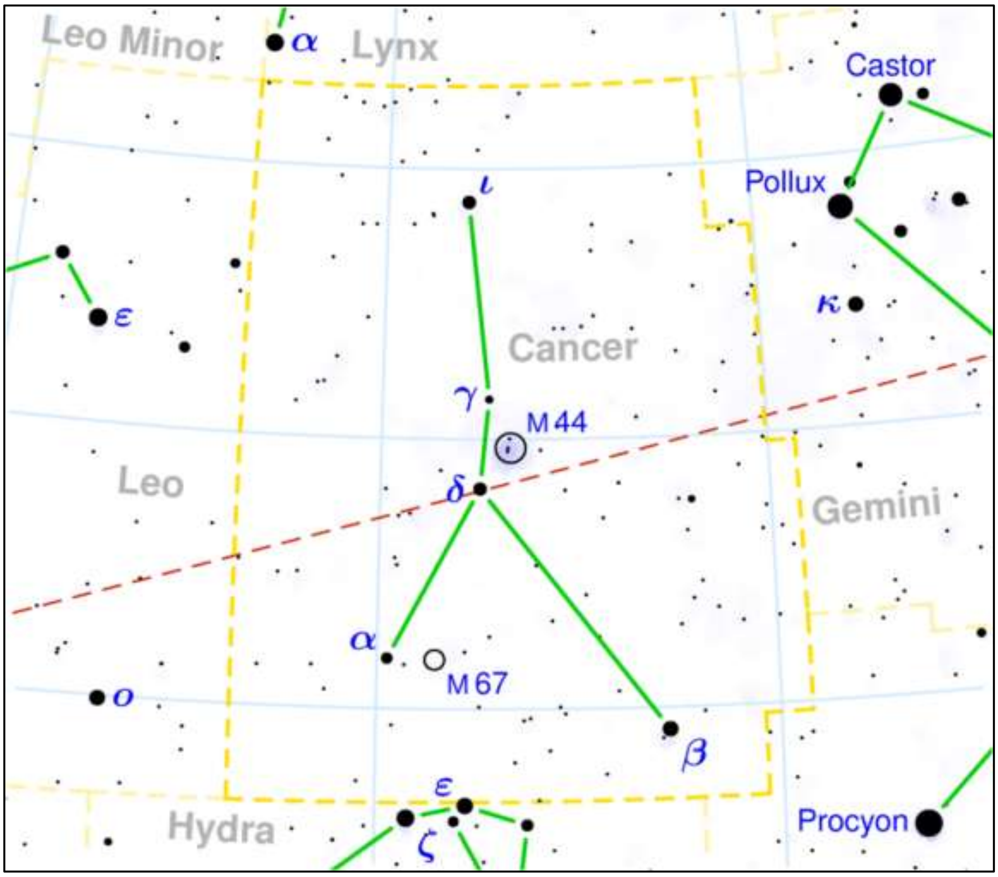
4 वे० ज्यो०, पद्य - 32
अदितिर्देवता मन्त्र योगम च कारयेत। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 20
वात्स्यायनी च गोत्रेण मेधावी चात्र जायते। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 22

5 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 20-22
शान्तिपौष्टिकयात्राव्रतप्रतिष्ठा....। व० सं०, प्र० 14, श्लो० 8

6 https://hi.wikipedia.org/wiki/ पुनर्वसु

2.11.6 पुष्य नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

इसी क्रम में पुष्य नक्षत्र वेदों में छठें स्थान पर है और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में पुष्य नक्षत्र का स्थान आठवाँ स्थान पर है। भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रो में पुष्य नक्षत्र का मान 93°- 20 से प्रारम्भ होकर 106°- 40 तक का है।[1] पुष्य नक्षत्र 3 तारा समूह के योग से उत्पन्न होता है जिसके कारण इसकी आकृति तिरछे चन्द्रमा के सामान दिखाई पड़ती हैं या फिर तीर के आकार की प्रतीत होती है। पुष्या के बृहस्पति देवता हैं।[2] इस नक्षत्र में राज्याभिषेक, मठ - मन्दिरों का निर्माण करना चाहिए।[3]



पुष्य मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 263-264

2 वे० ज्यो०, पद्य - 32
त्रितारामिषुसंस्थान..अत्र देवतं च वृहस्पतिः। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 23, 26

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 23 - 27
स्थिरचारशान्तिक पौष्टिकभूषण शिल्पव्रतोस्वाद्यखिलं।..वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 9

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/पुष्य

2.11.7 आश्लेषा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक संहिताओं में आश्लेषा या श्लेषा नक्षत्र का स्वामी सर्प देवता हैं।[1] वैदिक साहित्य में इस नक्षत्र को निन्दनीय (अश्लील) कहा है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] के अनुसार अश्लील नाम वाले नक्षत्र में न यज्ञ का आरम्भ करें और न ही इस नक्षत्र में यज्ञ समाप्त करें क्योंकि यह पाप नक्षत्र है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] का कथन है कि जो सर्प द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी में रहते हैं, तारे और ग्रहों में रहते हैं, सूर्य की किरणों में रहते हैं, नक्षत्र रूपी देहवाला आश्लेषाएँ जिनके चित्त और कामनाओं का अनुगमन करती हैं वे सर्प हमारे यज्ञ में आवें। हम उन्हें मधुमती हवि प्रदान कर रहे हैं।

वैदिक संहिताओं में आश्लेषा नक्षत्र का स्थान सातवाँ है जो कि वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में नवें स्थान पर है। 27 भागों में विभक्त भ-चक्र में आश्लेषा नक्षत्र का मान 106°- 40 से प्रारम्भ होकर 120° - 00 तक का माना जाता है।[4] आश्लेषा कितने तारों का समूह है इस विषय पर विद्वानों का एक मत नहीं है। खण्ड कटक के अनुसार इसमें छः तारे हैं जबकि अन्य स्थलों पर इसे 5 तारों के समूह से युक्त माना जाता है। और इसकी आकृति सर्प के समान दिखाई देती है। आश्लेषा के सर्प देवता तथा आग्रायणी गोत्र है।[5] इस नक्षत्र में वाहन, तालाब, शत्रु नाश, उग्रता, जहर वृद्धि, आदि सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।[6]

---

1 तै० 4.4.10

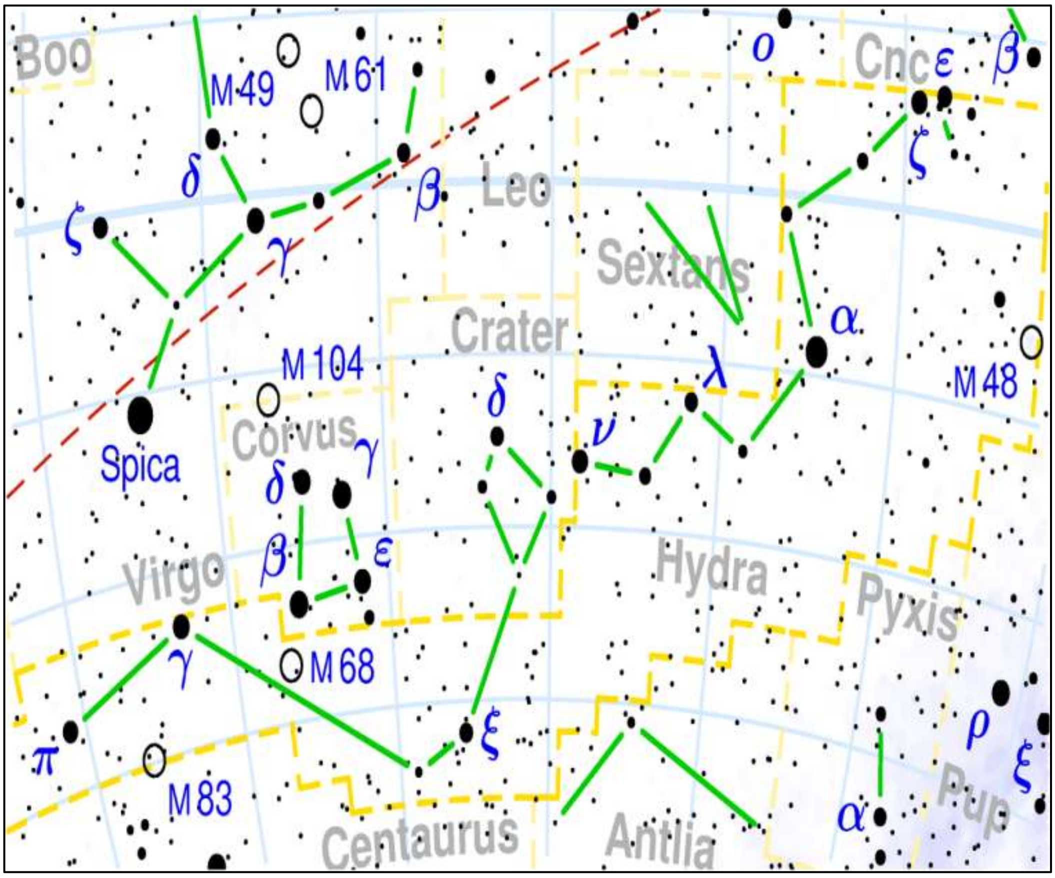
2 अश्लीलनामश्चित्रे नावस्येन्न यजेत्।
यथा पापाहे कुरुते तादृगेव तत्।। तै ब्रा० 1.5.2

3 नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये केचन् पृथिवी मनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः।।
इदं सर्पेभ्यो हविरस्तु जुष्टम्। ये अन्तरिक्षं पृथिवीं क्षियन्ति ते नः सर्पासो हव मागमिष्ठाः।
ये रोचने सूर्यस्यापि सर्पाः। ये दिवं देवीमनुसंचरन्ति। यजु० 10.30, 13.6, 23.56

4 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 264

5 वे० ज्यो०, पद्य - 32
आश्लेषा सार्पदैवत्या षटतारा तु विसंस्थिता।
आग्रायणीति गोत्रेण शाकटादीनि कारयेत। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 28

6 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 28 - 31
उदधृतरिपुमदमंज....। अनलायस..सर्पभे कार्यां। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो 10



आश्लेषा मानचित्र[1]

2.11.8 मघा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक संहिताओं में मघा नक्षत्र को देव नक्षत्र माना है। मघा के स्वामी पितर हैं[2]। इन्हें देवयान से आने वाला कहा गया हैं[3]। वेदों के अनुसार मघा का अर्थ है विद्या, विज्ञान, ऐश्वर्य, बल एवं इन्द्र। इन्द्र का एक नाम मघवा भी है। यह नक्षत्र सुकृत के लिए शुभ है। ऋग्वेद में "अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो पर्युह्यते[4]। का अर्थ अर्थ करते हुए शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने लिखा है कि सविता ने जो दहेज दिया वह दहेज सूर्या के पहले ही आगे गया। अघा (मघा) नक्षत्र में गायों को मारते हैं। अर्जुनी (फाल्गुनी) नक्षत्र में (कन्या) ले जाते हैं। सविता

---

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/आश्लेषा

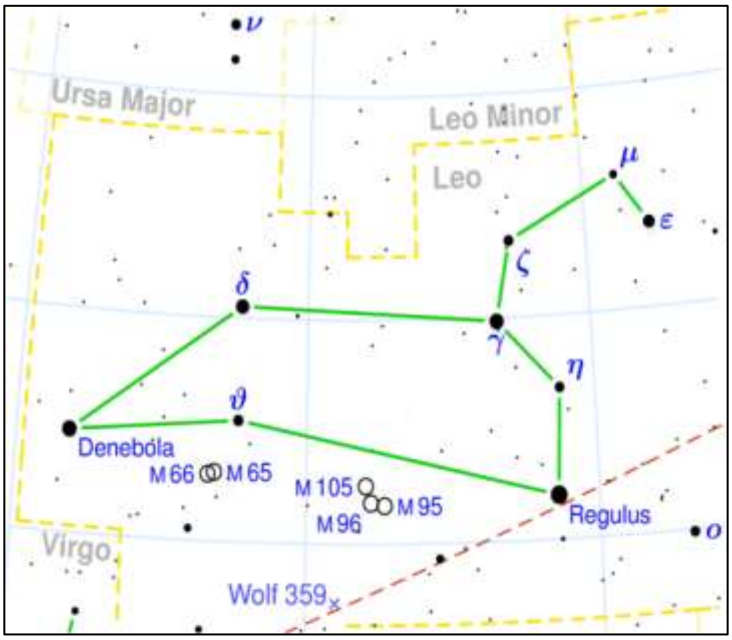
2 तै० 4.4.10

3 आ यन्तु नः पितरः सोम्यसोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि बुवन्तु ते अवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।। यजु० 19.58

4 ऋ० सं० 10.85.13

की कन्या सूर्या सोम को दी गयी। उस समय सूर्य ने दहेज में जो गायें दीं वे पहले ही दिन अर्थात् मघा नक्षत्र में ही हाँक कर ले जायी गयीं और कन्या अर्जुनी नक्षत्र में गयी।

वैदिक नक्षत्रों में मघा नक्षत्र का स्थान आठवां कहा गया है और वेदाङ्गोत्तर ग्रन्थों में मघा नक्षत्र का स्थान दसवाँ माना गया है। आकाशस्थ भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में मघा नक्षत्र का मान 120° - 00 से प्रारम्भ होकर 133° - 20 तक का माना गया है। मघा में भी आश्लेषा के समान तारों के विषय में विवाद है। यहाँ खण्ड कटक के अनुसार छः तारे तथा अन्य के अनुसार मघा पाँच तारों का समूह कहा गया है। इस प्रकार से तारा संख्या में भेद के कारण दो तारों का कम चमकना भी माना जा सकता है। जो विद्वान छः तारों से युक्त मघा को मानते हैं वह इसे एक घर की आकृति के समान देखते हैं। जो इसे पाँच तारों से युक्त मानते हैं उन्हें इसकी संरचना पालकी के दण्ड के समान दिखाई पड़ती है।[1] देवता पितर है।[2] इसमें भी वापी, कूप,तडाग आदि कार्य करने चाहिए।[3]



मघा मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 265

2 वे० ज्यो०, पद्य - 32
पितरो देवताश्चात्र। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 32

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 32
युवतीकर संग्रहणम वापीकूपतडागोः वाद्यं च।..पितृ च पैतृकं कार्यं। व० सं०, प्र० 14, श्लो० 22

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/मघा

2.11.9 पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक साहित्य में पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र का स्वामी भग देवता कहे गये हैं[1]। ' फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता। ' यजुर्वेद संहिता में भग का अर्थ भजनीय, परमात्मा, विद्वान्, ऐश्वर्य तथा सूर्य हैं[2]। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] का कथन है कि पूर्वाफाल्गुनी अशुभ है। यह सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला पाप का भागी होता है। उत्तराफाल्गुनी सम्वत्सर की प्रथम रात्रि है। यह सम्वत्सर का मुख है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला प्रमुख और श्रेष्ठ होता है।

वैदिक संहिताओं में पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र का स्थान नवां है जो कि वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में ग्यारहवें स्थान पर है। 27 भागों में विभक्त भ-चक्र में पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र का मान 133°- 20 से प्रारम्भ होकर 146° - 40 तक का माना जाता है। यह पूर्वा-फाल्गुनी दो तटों के समूह से बना है जो कि एक वर्गाकार आकृति के दोनों ओर हैं। और यह एक शय्या के दो पायों के समान दिखाई पड़ते हैं।[4] इसका भग देवता तथा पराशर गोत्र है।[5] इस नक्षत्र में चित्र, कपाट आदि कर्म तथा उग्र कार्य करने चाहिए।[6]

---

1 तै० सं 4.4.10

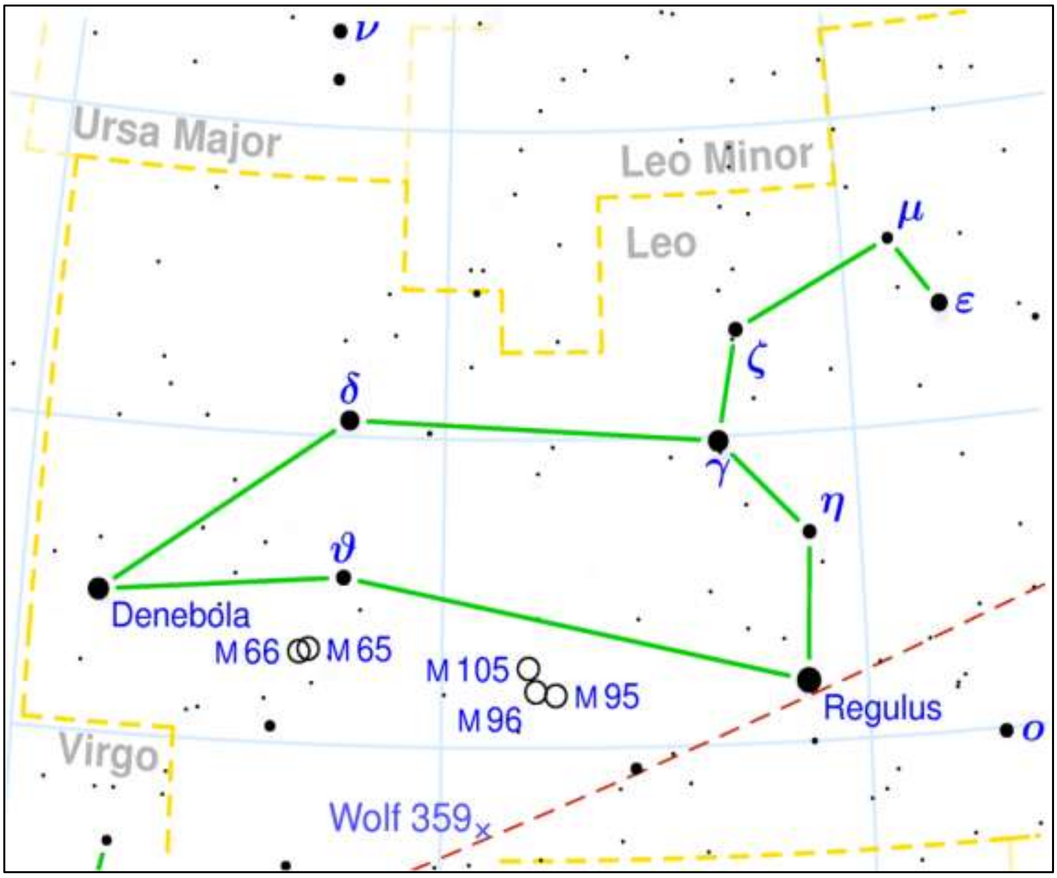
2 यजु० सं० 34.36, 34.38

3 न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत्, एषा वै जघन्या रात्रिः सम्वत्सरस्य।
पृष्ठित एव सम्वत्सरस्याग्निमाधाय पापीयान् भवति, उत्तरयोरादधीत।
एषा वै प्रथमा रात्रिः सम्वत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी।
मुखत एव सम्वत्सरस्याग्निमाधाय वसीयान् भवति।। तै० ब्रा० 1.1.2

4 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 266

5 वे० ज्यो०, पद्य - 32
द्वितारा फाल्गुनी पूर्वा उग्रा च भगदेवता।
पर्यंक संस्थिता वापिगोत्रं विद्यात्पराशरम। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 33

6 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 34
शिल्पप्रहरणबन्धनदारुणचित्रकापटं कर्म। व० सं०, प्र० 14, श्लो० 12



पूर्वा-फाल्गुनी मानचित्र[1]

2.11.10 उत्तरा-फल्गुनी नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वेदों में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का देवता अर्यमा है[2]। ऋग्वेद में अर्यमा का अर्थ न्यायकारी है।[3] वस्तुतः अर्यमा भी सूर्य का ही पर्याय है। वेद अर्यमा को गायों (किरणों) का स्वामी मानता है। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण[4] का कथन है कि पूर्वाफाल्गुनी अशुभ है। यह सम्वत्सर की अन्तिम रात्रि है। इसमें

[1] https://hi.wikipedia.org/wiki/पूर्वा-फाल्गुनी

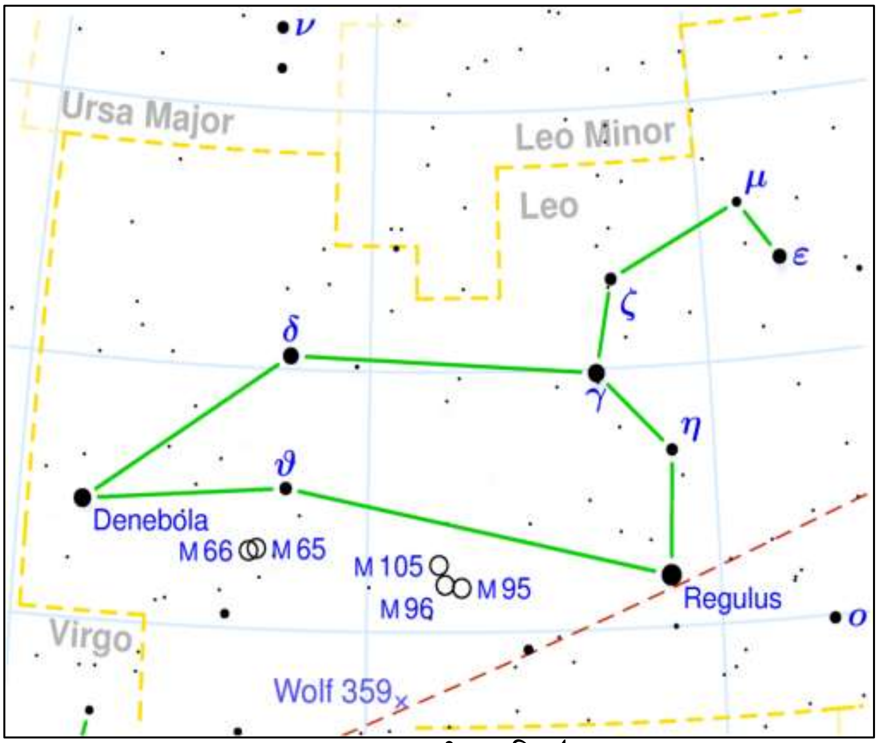
[2] तै० सं 4.4.10

[3] ऋ० सं 1.167.8

[4] न पूर्वयोः फल्गुन्योरग्निमादधीत्, एषा वै जघन्या रात्रिः सम्वत्सरस्य।
पृष्ठित एव सम्वत्सरस्याग्निमाधाय पापीयान् भवति, उत्तरयोरादधीत।
एषा वै प्रथमा रात्रिः सम्वत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी।
मुखत एव सम्वत्सरस्याग्निमाधाय वसीयान् भवति।। तै० ब्रा० 1.1.2

अग्न्याधान करनेवाला पाप का भागी होता है। उत्तराफाल्गुनी सम्वत्सर की प्रथम रात्रि है। यह सम्वत्सर का मुख है। इसमें अग्न्याधान करनेवाला प्रमुख और श्रेष्ठ होता है।

इसी क्रम में उत्तरा-फल्गुनी नक्षत्र वेदों में दसवें स्थान पर है और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में उत्तरा-फल्गुनी नक्षत्र का स्थान बारहवां स्थान पर है। भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रो में उत्तरा-फल्गुनी नक्षत्र का मान 146°- 40 से प्रारम्भ होकर 160°- 00 तक का है। यह नक्षत्र भी पूर्वाफाल्गुनी के समान ही है यह भी दो तारों के समूह से युक्त है और इसकी आकृति भी चारपाई के दो पायों के समान दिखाई देती है।[1] इसका अर्यमा देवता तथा खादसत्य गोत्र है।[2] इसमें नक्षत्र में उपनयन, शिल्प, आभूषण, शयन, आसन, विद्या, सोना, कन्या, ऐश्वर्या, नपुंसकता, वैश्या विवाद, अन्य माङ्गलिक कार्य आदि पुष्ट होते हैं।[3]



उत्तरा-फल्गुनी मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 267

2 वे० ज्यो०, पद्य - 32
द्वितारोत्तरफाल्गुन्या स्थिराख्यायमदेवता।
पर्यङ्कसंस्थिता चात्र गोत्रेण च पराशरः। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 35

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 36-39
उपनयनम करपीडनमखिलम...। पुरसदनप्रारम्भ..। व० सं०, प्र० 14, श्लो० 13

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/उत्तरा-फल्गुनी

2.11.11 हस्त नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वेदों में हस्त नक्षत्र का स्वामी देवता है सूर्य है[1]। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार सूर्य देव सोने के रथ पर आरूढ़ होकर इच्छापूर्वक, इष्ट फल देनेवाले, सौभाग्ययुक्त हस्त नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। हम उस दाता को सदा पावें। वह हम लोगों को शाश्वत अमृत प्रदान करें और हम उसे दायें हाथ से ग्रहण करें।[2]

भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में से वैदिक संहिताओं में 11वाँ नक्षत्र हस्त नक्षत्र को माना गया है। वही वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में हस्त नक्षत्र का 13वाँ स्थान माना गया है। 27 नक्षत्रों में से हस्त नक्षत्र का जो मान है वह 160°- 00 से लेकर 173°- 20 पर्यन्त है। हस्त नक्षत्र पाँच तारों से युक्त है इसकी आकृति हाथ की पाँचों उंगलियों के समान दिखाई देती है। हस्त शब्द का अर्थ भी हाथ ही माना गया है अर्थात जो हाथ की आकृति का दिखाई देने वाला है वह हस्त नक्षत्र है।[3] हस्त का सविता देवता तथा कुण्डिनी गोत्र है।[4] इस नक्षत्र में गृह निर्माण, गृह प्रवेश, शस्त्र पूजन, यज्ञोपवीत, विद्या दान, क्षिप्रकर्म, महातन्त्र, विवाह, वस्त्र,, वापी सम्बन्धी कार्य करने चाहिए।[5]

---

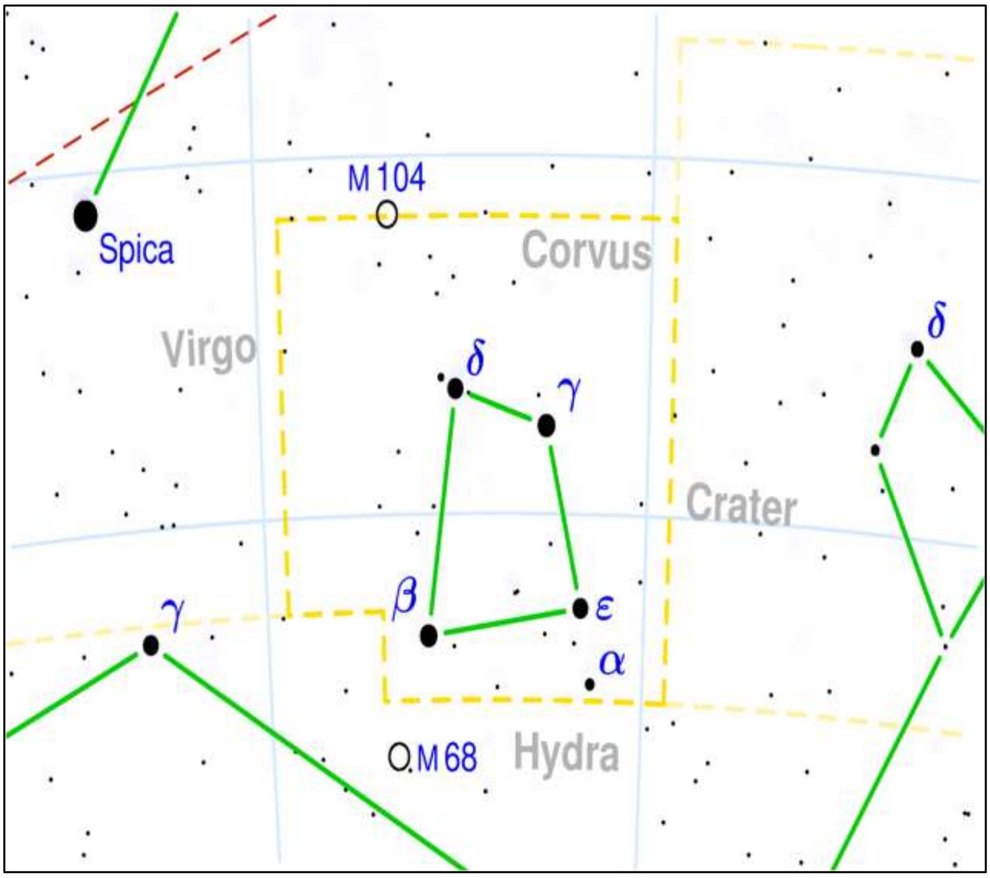
1 हस्तो नक्षत्रं सविता देवता। तै० सं० 4.4.10

2 आयातु देवः सविता हिरण्मयेन वहन्। हस्तं सुभगं प्रयच्छन्तं प्नपुरिं पुष्यम्।
हस्तः प्रयच्छत्वमृतं वसीय : दक्षिणेन प्रतिगृभ्णीम् एनत् दातारमद्य सुवृत्ता रथेन सविता विदेय।।
वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गिरिजाशंकर, पृ० 220

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ०

4 वे० ज्यो०, पद्य - 33
सावित्रं पञ्चतारा स्याद्धस्तं हस्ताङ्गसंस्थितम्।
कुण्डिनी चैव गोत्रेण क्षिप्रकर्मात्र कारयेत्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 40

5 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 41 - 44
भेषजयात्राविद्याविवाहशिल्पव्रताम्बरामरणम्।
सुर संस्थापनमखिलं वास्तुप्रारम्समकनक्षत्रे। व० सं०, प्र० 14, श्लो० 14
प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानं वस्त्रोपनायनम्।
क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे। ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40, श्लो० 15



हस्त मानचित्र[1]

2.11.12 चित्रा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

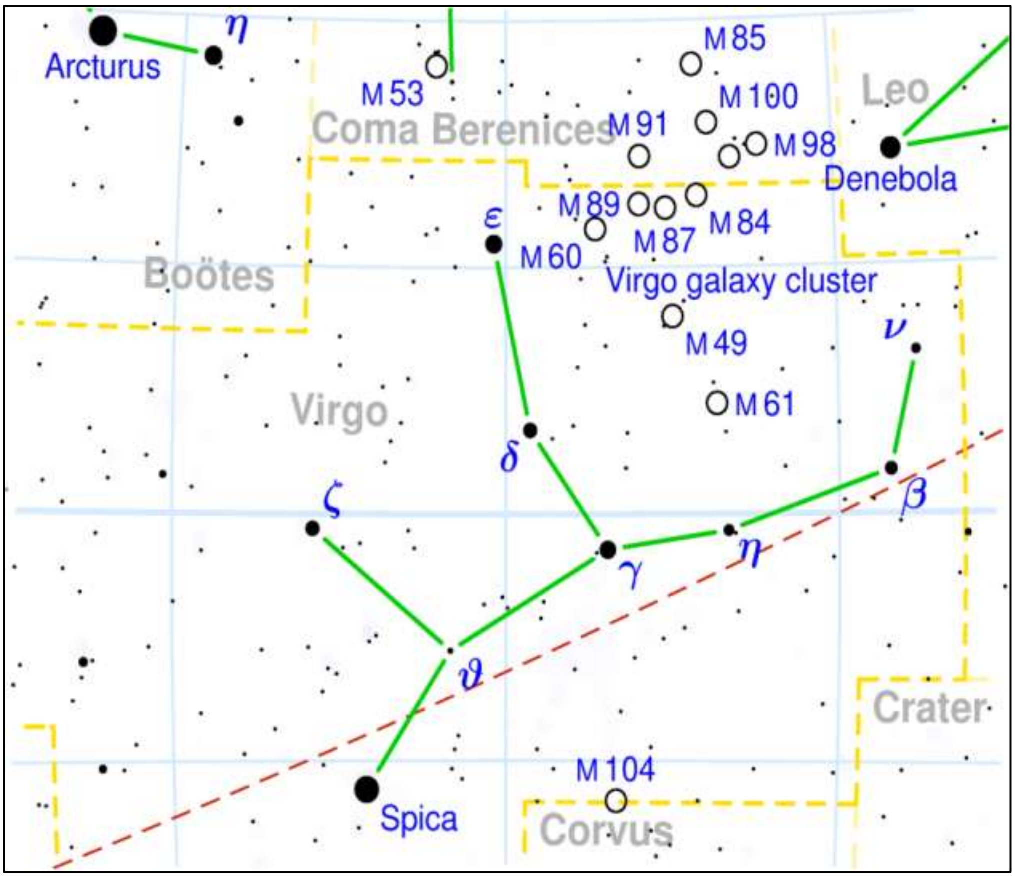
वैदिक संहिताओं में चित्रा नक्षत्र का स्वामी इन्द्र है[2]। चित्रा नक्षत्र २७ नक्षत्रों में मध्य का नक्षत्र है। खगोल में प्राचीन चित्रों में चित्रा नक्षत्र का आकार लम्बे कानोंवाले उलूक (उल्लू) पक्षी जैसा बनाया हुआ मिलता है। यही कारण है कि वेदों में इन्द्र के लिए वृद्धश्रवाः अर्थात् लम्बे कानोंवाला कहा गया है।[3]

भ-चक्र युक्त 27 नक्षत्रों में वैदिक चित्रा नक्षत्र का स्थान बारहवाँ माना गया है तथा वेदाङ्गोत्तर काल में चित्रा नक्षत्र का स्थान 14वाँ माना जाता है। इस प्रकार से 27 नक्षत्रों में चित्रा नक्षत्र का मान 173°-20 से प्रारम्भ होकर 186°- 40 तक माना गया है। चित्रा शब्द का अर्थ चमकना है। यह एक मुक्ता के समान

---

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/हस्त
2 चित्रानक्षत्रमिन्द्रो देवता। तै० सं० 4.4.10
3 वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गितिजाशंकर, पृ० 221

चमकने वाला माना गया है और इसकी आकृति लैंप के समान दिखाई देती है।[1] चित्रा त्वष्टा देवता तथा अत्रि गोत्र वाला कहा गया है।[2] इस नक्षत्र में पुल निर्माण, मण्डप निर्माण, नगर द्वार, वस्त्र, शस्त्र, व्यापार, भण्डार घर, औषधि, रक्षा सम्बन्धी आदि कार्य करने चाहिए।[3]



चित्रा मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 268

2 वे० ज्यो०, पद्य - 33
एकतारा भवेच्चित्रा त्वष्टा चैवात्र देवता।
पत्यन्नासंस्थितं चापि अत्रिगोत्रं च गोत्रतः। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 45

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 46 - 50
शान्तिक पौष्टिकमखिलं स्थिरकार्यवस्त्रभूषणं शिल्पम्।
उपनयनं वास्तुकृषिक्षितिपतिकार्य च चित्रायाम् '। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 15
प्रवेशवस्त्र सीमन्तप्रतिष्ठाव्रतबन्धनम्।
स्वाष्ट्रभे वास्तु विद्याश्च क्षौरभूषणकर्म यत् '। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 16

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/चित्रा

2.11.13 स्वाती नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

संहिताओं में स्वाती नक्षत्र का देवता वायुदेव को कहा हैं।[1] स्वाती नक्षत्र को ' निष्टया ' नक्षत्र भी कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] में कहा गया है कि स्वाती नक्षत्र में विवाहिता कन्या पति को इतनी प्रिय हो जाती है कि पुनः लौटकर पिता के घर नहीं आती। स्वाती नक्षत्र का वर्णन करता हुआ वैदिक ऋषि कहता है कि तेजस्वी, इष्टप्रद, शब्दायमान वायुदेवता सम्पूर्ण विश्व को प्रेरणा देता हुआ निष्ट्या नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। वे बहुप्रद हों और हमें शत्रुओं तथा कष्टों से पार कर दें।[3]

वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार स्वाती नक्षत्र का स्थान तेरहवां माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में स्वाती का पन्द्रहवाँ स्थान माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित स्वाती नक्षत्र का मान 186° - 40 से 200° - 00 तक है। स्वाति के विषय में कहा जाता है कि यह एक अकेला तारा है जो मूंगे की माला के समान मनके या मोती के समान लगता है इसकी आकृति के विषय में कहा गया है कि यह नीलमणि तथा लाल रंग युक्त तारा के समान है।[4] स्वाती का वायु देवता तथा माडव्य गोत्र है।[5] इस नक्षत्र में यात्रा का विचार नहीं करना चाहिए, इसमें नौका बनाने का कार्य, वाद्य, मृदंग, डमरु, कवच, विवाह सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।[6]

---

1 तै० सं० 4.4.10

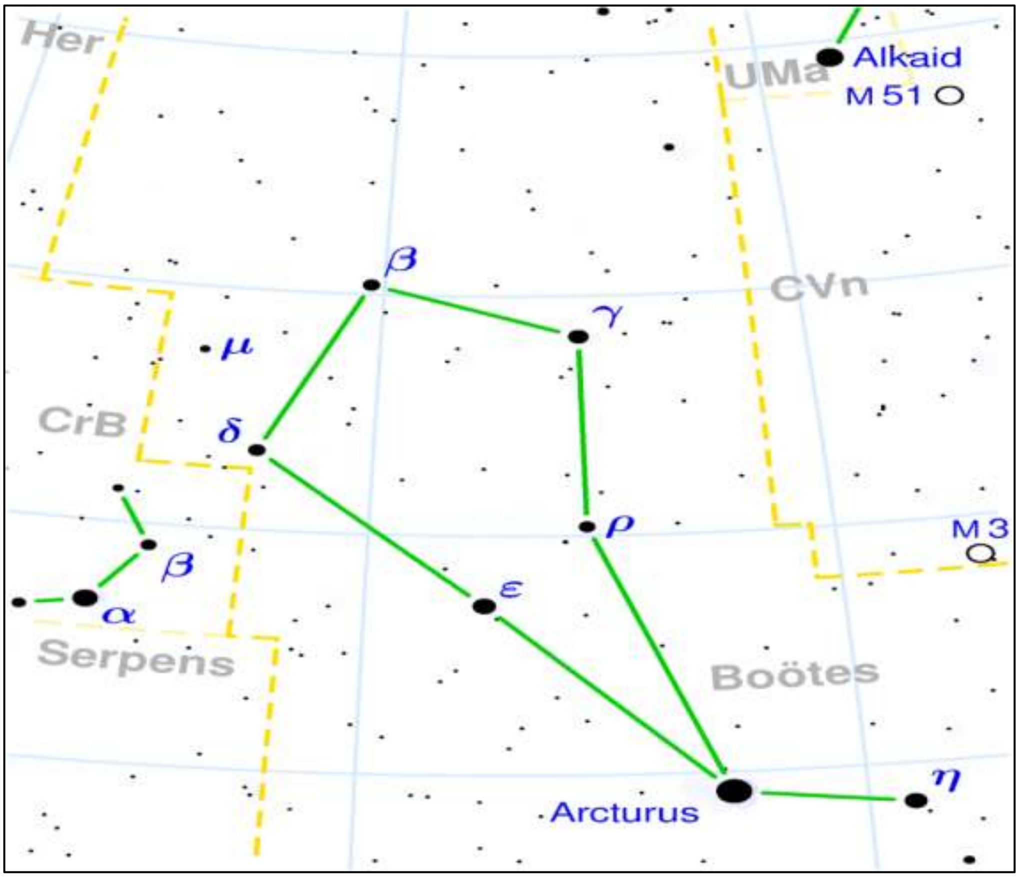
2 तै० ब्रा० 1.5.2

3 वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गितिजाशंकर, पृ० 221

4 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 268

5 वे० ज्यो०, पद्य - 33
प्रत्येक संस्थिता स्वाती वायव्यां चैकतारकी।
माण्डव्येति च गोत्रेण प्रस्थाने चापि ग्रहीता। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 51

6 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 52-53
सुरनरसद्माविधानम भूषणवैवाहम..।
बीजारोपण..विभूषणम स्वातो। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 16
प्रतिष्ठोपनयोद्वाह वस्त्रसीमन्तभूषणम। विवाहेश्वेभकृश्य..। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 17



स्वाती मानचित्र[1]

2.11.14 विशाखा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक साहित्य में विशाखा नक्षत्र के दो प्रधान देवता हैं इन्द्र और अग्नि। इसी कारण इसे द्वीश दो स्वामियों वाला कहा गया है[2]। विशाखा नक्षत्र में दो तारे हैं अत : इसे संहिताओं में द्विवचन में प्रयोग किया गया है। विशाखा नक्षत्र को राधा नक्षत्र भी कहा जाता है। राधा, राधस शब्द से निष्पन्न है जिसका अर्थ तेज अथवा धन है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि दो श्रेष्ठ देवता इन्द्र और अग्नि नक्षत्रों की अधिपत्नी राधा के साथ आ रहे हैं। ये सब भुवनों के संरक्षक है। ये तीनों हमारे शत्रुओं को भयभीत कर भगा दें, वे दूर चले जाये,

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/स्वाती

2 विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी। तै० सं० 4.4.10

और देवगण हमारे यज्ञ में आकर प्रसन्न हों। हम चारों ओर से अभय रहे। ये विभिन्न गतियों से आकर हमारे शत्रुओं और क्षुधा को दूर करें[1]। ऋग् संहिता[2] में भी राधा नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का वर्णन मिलता है।

वैदिक नक्षत्रों में विशाखा नक्षत्र का स्थान 14वाँ है। और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में विशाखा नक्षत्र का स्थान सोलहवाँ माना गया है। आकाशस्थ भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में विशाखा नक्षत्र का मान 200° - 00 से प्रारम्भ होकर 213° - 20 तक का माना गया है। शाकल्य तथा खण्ड कटक के मतानुसार विशाखा नक्षत्र दो तारों से युक्त माना गया है जबकि वहीं खगोलविदों ने विशाखा नक्षत्र को चार ताराओं से युक्त माना है। और इसकी आकृति के विषय में कहते हैं कि यह कुम्भकार के चाक के समान दिखाई देने वाला है।[3] विशाखा का कौशकी गोत्र तथा इन्द्राग्नि देवता है।[4] इस नक्षत्र में सभी बीजों की स्थापना, माङ्गलिक कार्य, पशुबन्ध, जनेऊ, मिश्रकर्म सम्बन्धी कार्य करने चाहिए।[5]

---

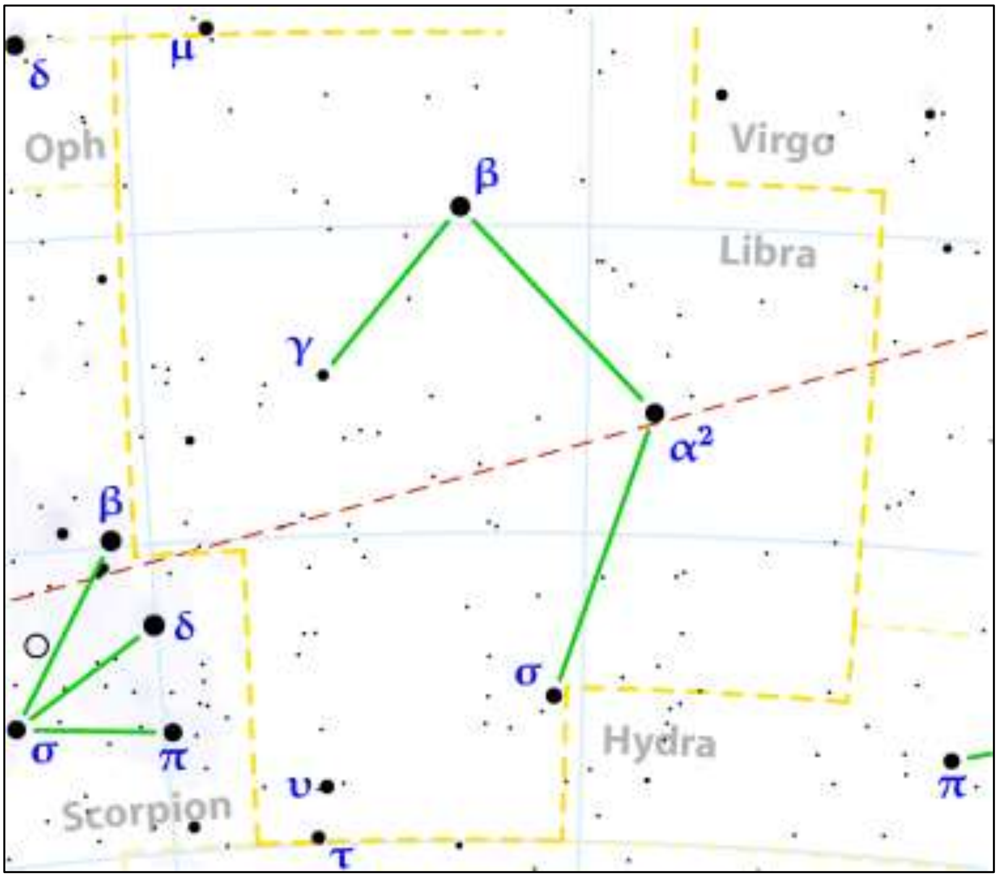
1 वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गितिजाशंकर, पृ० 221

2 पिवतं मध्वो अन्धसः चन्द्रेण राधसागतम्।। ऋ० 1.135.4

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 269

4 वे० ज्यो०, पद्य - 33
विशाखेन्द्राग्निदेवत्या मृदङ्गफणमेव च।
कौशिकी च चतुस्तारा संस्थानं तोरणोपमम्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 54

5 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 55 - 57
उपचयवस्तुग्रहणं भूषणनववस्त्रचित्रकार्यं च।
भेषजशकटप्रहरणशिल्पविचित्रं द्विदैवभे कार्यं। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 17
वस्त्रभूषण वाणिज्य..। इन्द्राग्निभे नृत्यगीत शिल्पलेखनकर्मं च। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो०



विशाखा मानचित्र[1]

2.11.15 अनुराधा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

अनुराधा नक्षत्र का स्थान वैदिक नक्षत्रों के क्रम में 15वाँ है। वर्तमान ज्योतिष ग्रन्थों में अनुराधा नक्षत्र का स्थान 17वाँ है अनुराधा नक्षत्र का मान 213° - 20 से प्रारम्भ 226° - 40 तक होता है। शाकल्य के मत में अनुराधा नक्षत्र 3 ताराओं के योग से बनता है। वहीं अन्य विद्वानों के अनुसार 3 ताराओं के साथ एक अन्य योगतारा जोड़कर 4 ताराओं का समूह अनुराधा नक्षत्र बन जाता है। जिसकी आकृति कभी कमल के समान तो कभी छाते के समान दिखाई देने वाली होती है।[2] अनुराधा के देवता मित्र तथा पावक गोत्र है।[3]

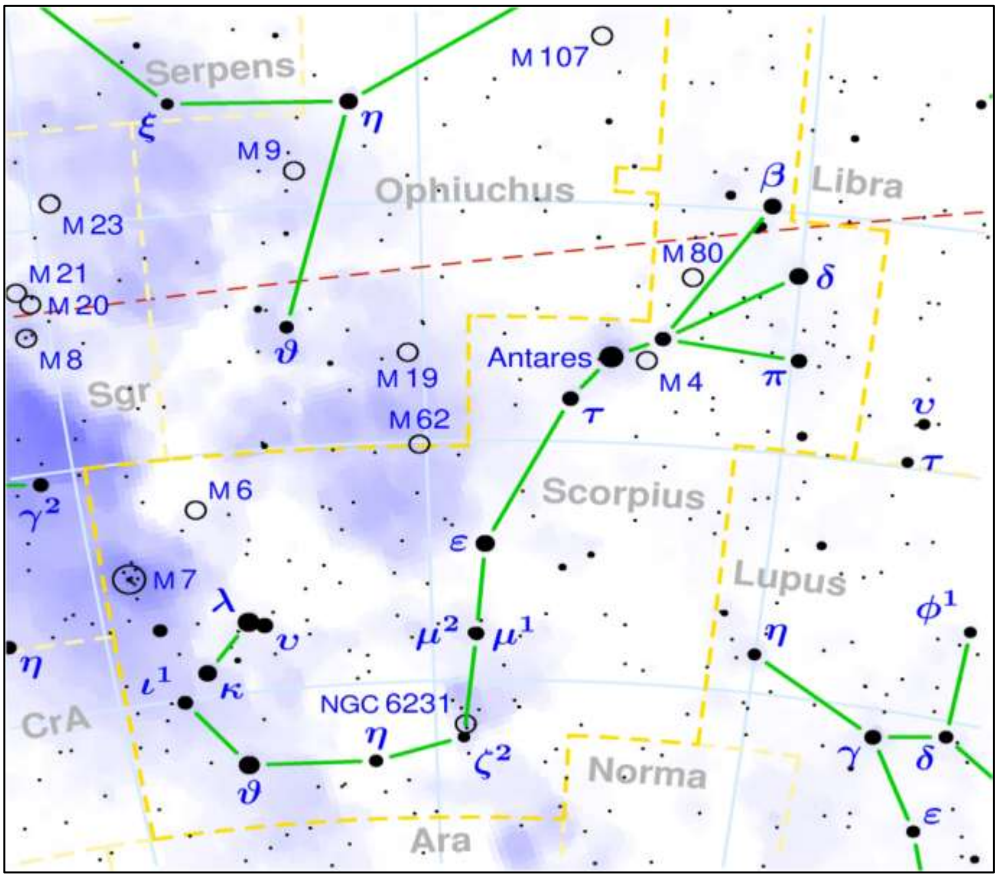
---

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/विशाखा

2 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 270

3 वे० ज्यो०, पद्य - 33
षट्तारा तु भवेन्मैत्रं रथानामिव संस्थितः।
अत्र पावकगोत्रेण जायते मनुजाधिपः। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 58, 62

वेदों में अनुराधा नक्षत्र को समृद्धि का कारक बताया है। राद का अर्थ समृद्धि कहा गया है। (राधा) विशाखा के बाद आने के कारण इसे अनुराधा कहा गया है।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण में अनुराधा के विषय में कहा गया है कि यह अनुराधा नाम का विचित्र नक्षत्र पूर्व दिशा में उदित होता है। इसमें मित्र देव अन्तरिक्ष में स्थित स्वर्ण से निर्मित देवयान पद से आ रहे हैं।[2] इस नक्षत्र में श्रेष्ठ मुहूर्त का विचार, घोड़ा, ऊंट, हाथी आदि पशु सम्बन्धित आवश्यक कार्य, हड्डी, त्वचा आदि विद्या सम्बन्धित कार्यों का आरम्भ करना चाहिए।[3]



अनुराधा मानचित्र[4]

[1] वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गितिजाशंकर, पृ० 222

[2] चित्रं नक्षत्रमुदगात् पुरस्तात् अनुराधा इति यद् वदन्ति।
तस्मिन् मित्र एति पथिभिर्देवयानैर्हिरण्ययैर्विततैरन्तरिक्षे। वहीं, वैदिक ज्यो० पृ० 222

[3] बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 58 - 62
करमर्दनमुपनयनम...स्थिरचरकार्यं त्वखिलं..कर्ममित्रर्क्षे। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 18
प्रवेशस्थापनोद्वाह व्रतबंधाष्टमंगलम वस्त्रभूषणमित्रेभे....। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 19

[4] https://hi.wikipedia.org/wiki/अनुराधा

2.11.16 ज्येष्ठा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

भ-चक्र युक्त 27 नक्षत्रों में वैदिक ज्येष्ठा नक्षत्र का स्थान सोलहवाँ माना जाता है। तथा वेदाङ्गोत्तर काल में ज्येष्ठा नक्षत्र का स्थान 18वाँ माना जाता है। इस प्रकार से 27 नक्षत्रों में ज्येष्ठा नक्षत्र का मान 226°- 40 से प्रारम्भ होकर 240°- 00 तक माना गया है। ज्येष्ठा नक्षत्र में तीन तारे होते हैं और इसकी आकृति सीधी रेखा के रूप में एक पेंडल या फिर कान के कुंडल के समान लगता है।[1] ज्येष्ठा का काश्यपी गोत्र इन्द्र देवता है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक प्रसङ्ग में कहा गया है कि जेष्ठा नक्षत्र इन्द्र की प्रिया है। देवासुर संग्राम के समय में इन्द्र ने इसी जेष्ठा नक्षत्र में वृत्र को मारा था। इन्द्र अपनी जेष्ठा के साथ आ रहा है। वह यजमान को अपना जेष्ठा लोक प्रदान करें।[3] अथर्ववेद में जेष्ठा नक्षत्र को अशुभ तथा कुल घाती माना गया है।[4] वहीं अथर्ववेद के अन्य मन्त्र में अग्नि से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि हे ! अग्नि जेष्ठा नक्षत्र का जातक अपने बड़े लोगों में से किसी की मृत्यु का कारण न बने इस दोष से रक्षा करो।[5] इस नक्षत्र में गांव में मुखिया नायक आदि का चुनाव, राजा का दर्शन, राजा आदि के अभिषेक, छोटे वाहन सम्बन्धित कार्य करना चाहिए।[6]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 271

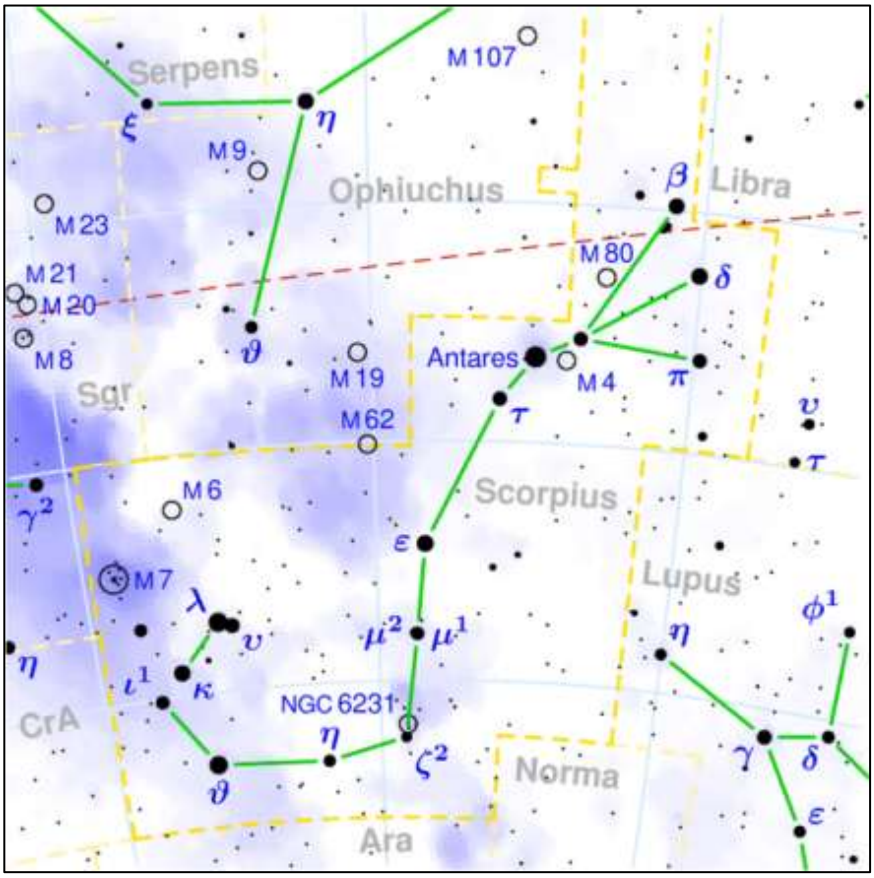
2 वे० ज्यो०, पद्य - 33
त्रितारम चेन्द्रदैवत्यं ज्येष्ठाकुंडल संस्थिता। 63
काश्यपी चैवगोत्रेण दारुणोचात्रजायते। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 66

3 इन्द्रो ज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति यस्मिन् वृत्रं वृत्रतूर्ये ततार।
तस्मिन् वयममृतं दुहाना क्षुधं दुरितिं दुरिष्टिं तरेम् ॥
पुरन्दराय वृषभाय धृष्णवे आषाढाय सहमानाय मीढुषे।
इन्द्राय ज्येष्ठा मधुमद्दुहानाः। उरुं कृणोतु यजमानाय लोकम् ॥ तै० ब्रा०

4 ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्। अथर्ववेद, 6.110.2-3

5 मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्।
स ग्राह्या : पाशानु विचूत प्रजानन् तुभ्यं देवा.......। वहीं, अथर्ववेद, 6.112.2-3

6 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 64 - 66
...स्तेय विधानम विविधंशिल्पं चित्रं सुरेशभे कार्यं। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 19
क्षौरास्त्रशस्त्रवाणिज्य...। इन्द्रभे नृत्यगीताशिल्पलोहास्मलेखनम। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 20



ज्येष्ठा मानचित्र[1]

2.11.17 मूल नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

इसी क्रम में मूल नक्षत्र वेदों में 17वें स्थान पर है। और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में मूल नक्षत्र का स्थान 19वाँ है। भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रो में मूल नक्षत्र का मान 240°- 00 से प्रारम्भ होकर 253°- 20 तक का है। अथर्ववेद में मूल नक्षत्र दो ताराओं वाला माना गया है। वहीं शाकल्य के अनुसार मूल नक्षत्र 9 ताराओं से युक्त है। अन्य विद्वानों के अनुसार यह 11 ताराओं के योग से निर्मित है और कुछ के मत में मूल नक्षत्र 6 ताराओं से युक्त हाथी के सूंड के समान है। इसकी आकृति के विषय में कहा गया है कि यह सिंह के पूछ के समान दिखाई देता है।[2] मूल के निऋर्ति देवता तथा कौशिकी गोत्र है।[3] वेदों में मूल नक्षत्र के विचृति,

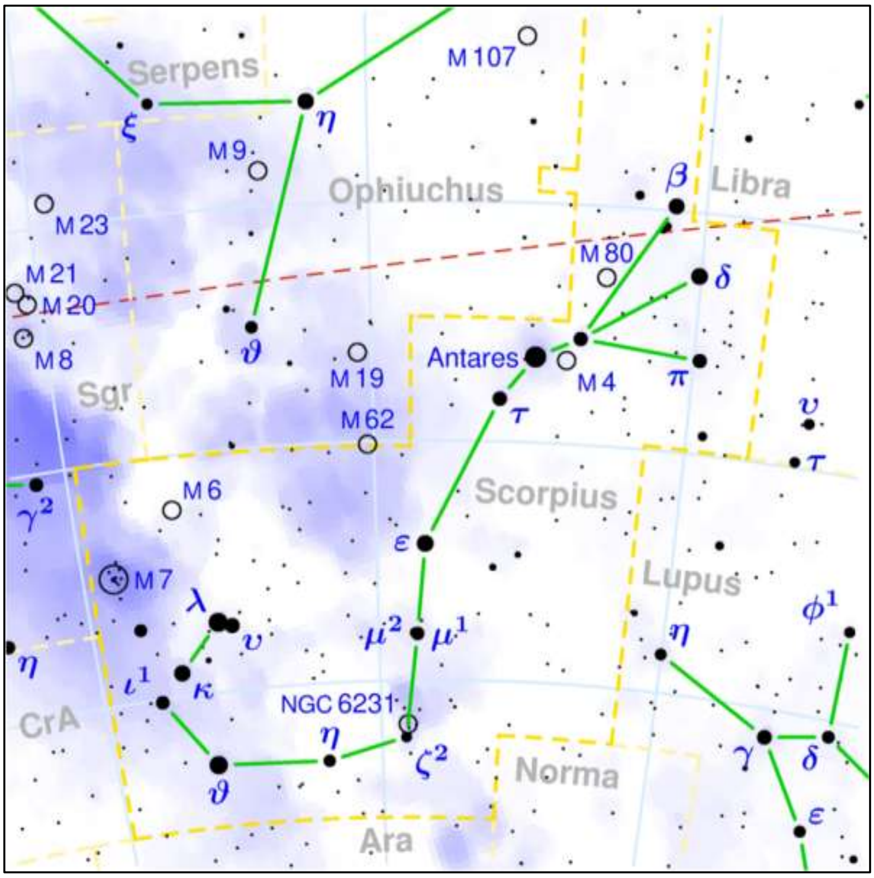
---

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/ज्येष्ठा

2 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 271

3 वे० ज्यो०, पद्य - 33
तारा द्वादश मूलोग्रा निऋतिस्तत्र देवता।
कौशिकी चेव गोत्रेण सङ्गविक्रयकमणि। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 67

मूल, बर्हण आदि नाम कहे गये हैं।[1] तैत्तिरीय संहिता में मूल का स्वामी पितर माने गये हैं।[2] वही तैत्तिरीय में मूल नक्षत्र के सन्दर्भ में कहा है कि जिस में देवों ने असुरों का समूल नाश किया है वही मूल नक्षत्र है।[3] अथर्ववेद में कहा गया है कि मूल नक्षत्र में जिस जातक का जन्म होता है वह कुटुम्ब का पालक होता है।[4] मूल नक्षत्र में विवाह, अभिषेक, उपनयन आदि माङ्गलिक कार्य, शास्त्र, वाहन, अन्य विद्या सम्बन्धित कार्य करने चाहिए।[5]



मूल मानचित्र[6]

---

1 विचृतोर्यमस्य मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्। अथर्व सं० 6.110.2-3

2 तै० सं० 4.4.10

3 वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गिरिजाशंकर, पृ० 224

4 ...मूलबर्हणात् परिपाह्येनम्।...स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम्॥ (अथर्ववेद ६-११०-२, ३)

5 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 68 - 71
कृषिभवनविपिनकार्यं वापीकूपादि बीजनिर्वापम...। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो०
विवाहकृषिवाणिज्यम....। निऋती नृत्यशिल्पास्त्र संधिविग्रहलेखनम। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 21

6 https://hi.wikipedia.org/wiki/मूल

2.11.18 पूर्वाषाढा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वेदों में पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का देवता आप: यानी जल को माना गया है।[1] वैदिक साहित्य में ब्रह्मचारी के पवित्र पलाश दण्ड को आषाढ़ कहा गया है। इस जल के नक्षत्र पूर्वाषाढ़ा के विषय में तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] का कथन है कि अषाढ़ा नक्षत्र का यह जल दिव्य आकाश से आ रहा है अत: ये पेय और पय है। यह पृथ्वी पर आने पर भी वैसा ही रहता है। इसमें आप: देव बैठे हैं, अषाढ़ा उनकी इच्छा का अनुगमन कर रही है और जल में स्थित मधु को पीती - पिलाती है। यह जल आकाश, कूप, समुद्र, सरोवर, नदी आदि किसी भी जलाशय के हों, मधु हैं। यह हम लोगो का कल्याण करे।

भ-चक्र युक्त 27 नक्षत्रों में वैदिक पूर्वाषाढा नक्षत्र का स्थान 18वाँ माना गया है। तथा वेदाङ्गोत्तर काल में पूर्वाषाढा नक्षत्र का स्थान 20वाँ माना जाता है। इस प्रकार से 27 नक्षत्रों में पूर्वाषाढा नक्षत्र का मान 253°- 20 से प्रारम्भ होकर 266°- 40 तक माना गया है। यह नक्षत्र 4 ताराओं के योग से निर्मित है। और यह हाथी के बाहर की ओर निकले हुए दांत की आकृति के समान वाला है।[3] इस नक्षत्र के जल देवता दाक्षायणी गोत्र है।[4] इसमें तालाब कुवां सम्बन्धित खुदाई का कार्य करना चाहिए।[5]

---

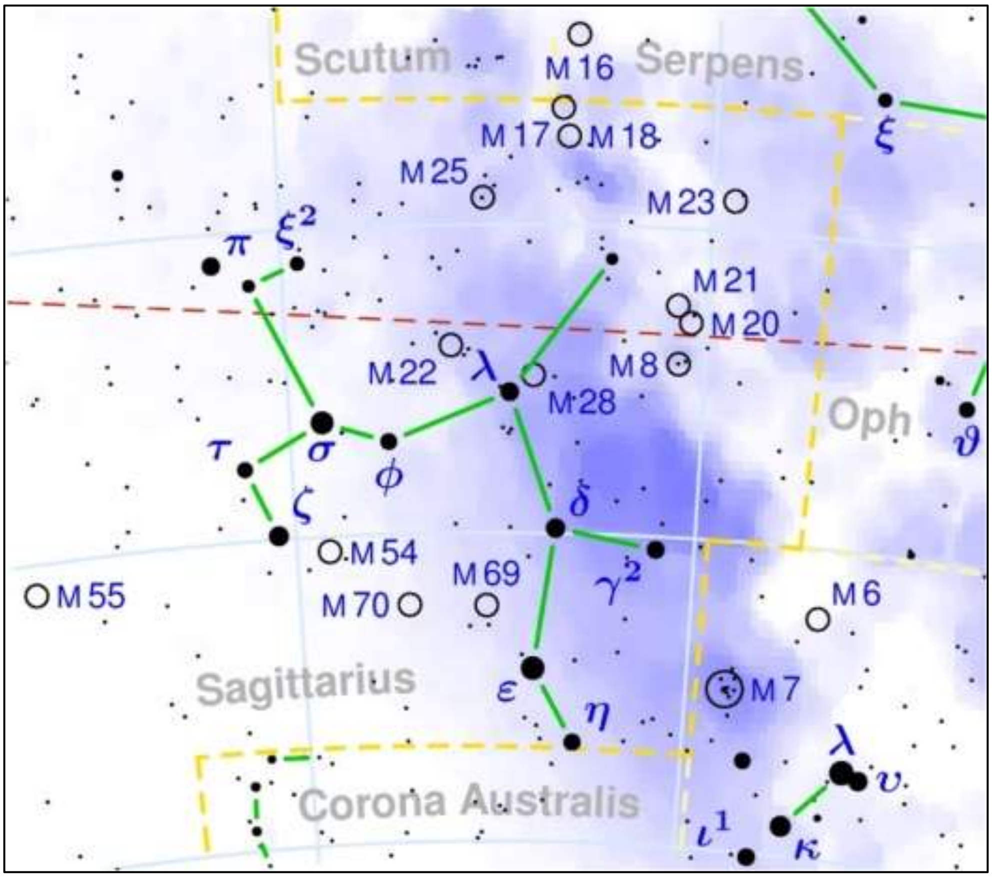
1 आषाढ नक्षत्रमापो देवता " तै० सं० 4.4.10

2 या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवु र्या अन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः।
या सामषाढ़ा अनुयन्ति कामं तान आप : शं स्योना भवन्तु।।
याश्च कूप्याः समुद्रिया याश्च नाद्याः वैशन्तीरुत प्रासचीर्याः।
या सामषाढ़ा मधु भक्षयन्ति ता न आपः शं स्योना भवन्तु।। तै० ब्रा 1.5.2

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 272

4 वे० ज्यो०, पद्य - 33
पूर्वाषाढं चतुस्तारामापश्चैवात्र देवता।
दाक्षायणं च गोत्रेण सिंहपुच्छसदृक् तनुः। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 72

5 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 73 - 75
...वापीकूपादिनिग्रहम।..वनचारिण पक्षीणाम..च कार्यं। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 21



पूर्वाषाढा मानचित्र[1]

2.11.19 उत्तराषाढा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वेदों में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के स्वामी विश्वेदेव कहे गये हैं।[2] ऋषियों ने समस्त देवों के समूह को विश्वेदेवा कहा है। अथर्ववेद संहिता में कहा गया है कि जलदेवता का पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हमें सुभक्ष्य अन्न प्रदान करें तथा विश्वेदेवताओं का उत्तराषाढ़ा हमें बलदायक, तेजदायक अन्नमय रस दे।[3]

वैदिक नक्षत्रों में उत्तराषाढा नक्षत्र का स्थान 19वाँ है। और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में उत्तराषाढा नक्षत्र का स्थान 21वाँ माना गया है। आकाशस्थ भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में उत्तराषाढा नक्षत्र का मान 266° - 40 से प्रारम्भ होकर 280° - 00 तक का माना गया है। इस नक्षत्र में भी चार तारे बताए गए हैं।

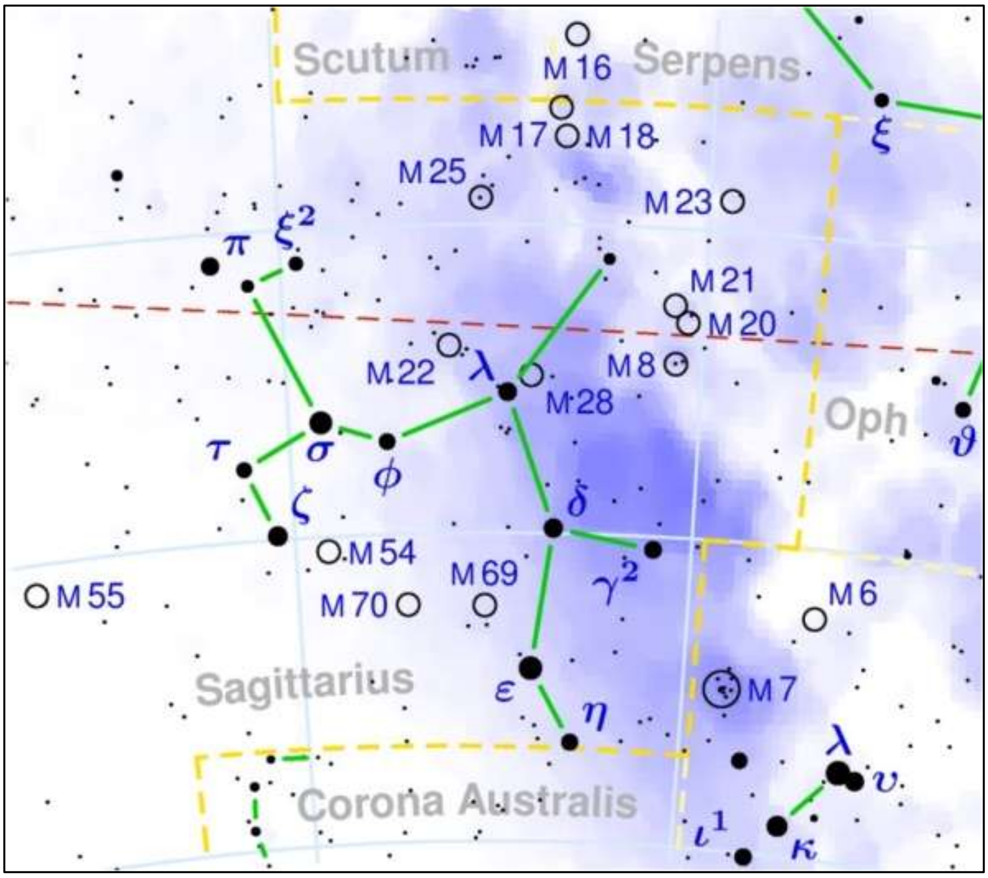
---

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/ पूर्वाषाढा

2 आषाढ़ा नक्षत्रं विश्वेदेवा देवता। तै० सं० 4.4.10

3 अन्नं पूर्वा रासतां भे आषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु। अथ० सं० 19.7.4

इसकी आकृति एक चारपाई के समान है। आकाश में तारे मस्तिष्क की कोशिकाओं के समान आकृति की संरचना करते हैं।[1] इस नक्षत्र के विश्वेदेवता तथा गार्गी गोत्र है।[2] इस नक्षत्र में मुंण्डन, स्थापन, बीजारोपण, वाहन, छत्र, पताका, भूमि सम्बन्धी कार्य करने चाहिए।[3]



उत्तराषाढा मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 273

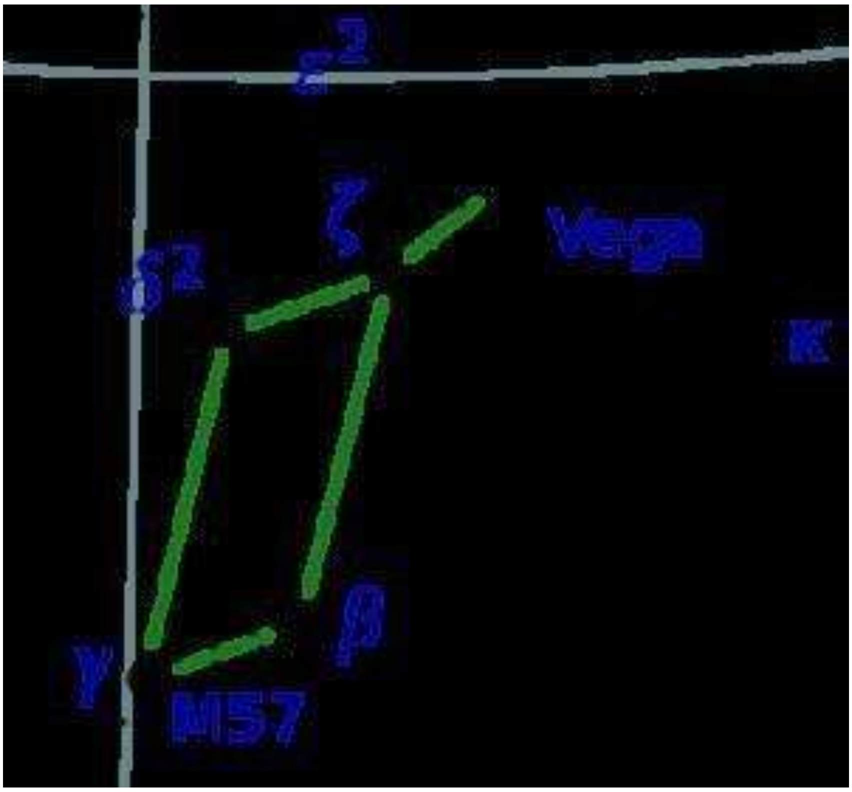
2 वे० ज्यो०, पद्य - 33
आषाढा ह्युत्तरा ज्ञेया विश्वेदेवा द्वितारका।
गजापीडसमास्थाना गार्गी गोत्रं च स्थावरम्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 76

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 77 - 80
स्थापनमुंडनमंडनवास्तुनिवेशं..। वीजारोपणवाहनभूषणवस्त्रं च वैश्यभे कार्यं। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 22

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/ उत्तराषाढा

अभिजित नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वस्तुतः अभिजित नक्षत्र - तीन ताराओं के द्वारा त्रिकोण की आकृतिवाला यह नक्षत्र नक्षत्रमण्डल नहीं है। यह उत्तराषाढ़ा का अन्तिम भाग तथा श्रवण नक्षत्र के आदि का 15 अंश का योग है। नक्षत्रों की कुल संख्या 27 ही है तथापि गणना की सुगमता के लिए वैदिक ऋषियों ने 28 नक्षत्रों को स्वीकार किया है और यह अभिजित् नक्षत्र वैदिक नक्षत्र है। इसके विषय में अथर्ववेद[1] में कहा है कि ब्रह्म देवता का अभिजित् नक्षत्र हमें पुण्य प्रदान करे। तैत्तिरीय ब्राह्मण[2] में कहते हैं अभिजित् नक्षत्र हमें ऊपर एवं नीचे सर्वत्र जय प्रदान करे। वहीं तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जिसमें सबको जीता वह अभिजित् नक्षत्र हमें विजय और लक्ष्मी प्रदान करे।



अभिजित मानचित्र[4]

1 अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव। अथ० सं० 19.7.4

2 अभिजयत्परस्तादभिजितमवस्तात्। तै० ब्रा० 1.5.1

3 यस्मिन् ब्रह्माऽभ्यजयत्सर्व तन्नोनक्षत्रमभिजिद्विजित्य श्रियंदधातु। तै० ब्रा० 3.1.1

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/अभिजित

2.11.20 श्रवण नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक समय में श्रवण नक्षत्र को श्रोणा नक्षत्र भी कहा जाता था। संहिताओं में श्रवण नक्षत्र का स्वामी देवता विष्णु को कहा गया हैं।[1] अथर्ववेद में श्रवण नक्षत्र को पुष्टि देनेवाला कहा गया है।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार श्रवण नक्षत्र अमृत का संरक्षण करनेवाला तथा विष्णु का भोग्य है। इस नक्षत्र में पुण्य वाणी सुनायी देती है और यह सन्ताप को हरती है। हम लोग इसका यजन करते हैं। बहु प्रशंसित विष्णु तीन पदार्थों में तीन ' भुवनों को नाप लेते हैं। ये श्रवण नक्षत्र में स्थित हैं। श्रवण नक्षत्र यजमान को पुण्यात्मा बनाकर उसके समस्त अभिलषित वस्तुओं को प्रदान करता है।

वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार श्रवण नक्षत्र का स्थान 20वाँ माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों में श्रवण 22वाँ माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित श्रवण नक्षत्र का मान 280° - 00 से 293° - 20 तक है। श्रवण नक्षत्र 3 ताराओं से युक्त है। श्रवण शब्द से ही इस नक्षत्र की आकृति का पता चलता है यह नक्षत्र मनुष्य के कान की आकृति का माना जाता है तीन तारा होने के कारण यह तीर की तरह भी दिखाई देता है।[3] इसका विष्णु देवता अगस्त्य गोत्र है।[4] इस नक्षत्र में कृषि, शिल्प, धाम विधान, उपनयन, सीमन्तोनयन, विश्रामादि का निर्माण करना चाहिए।[5]

---

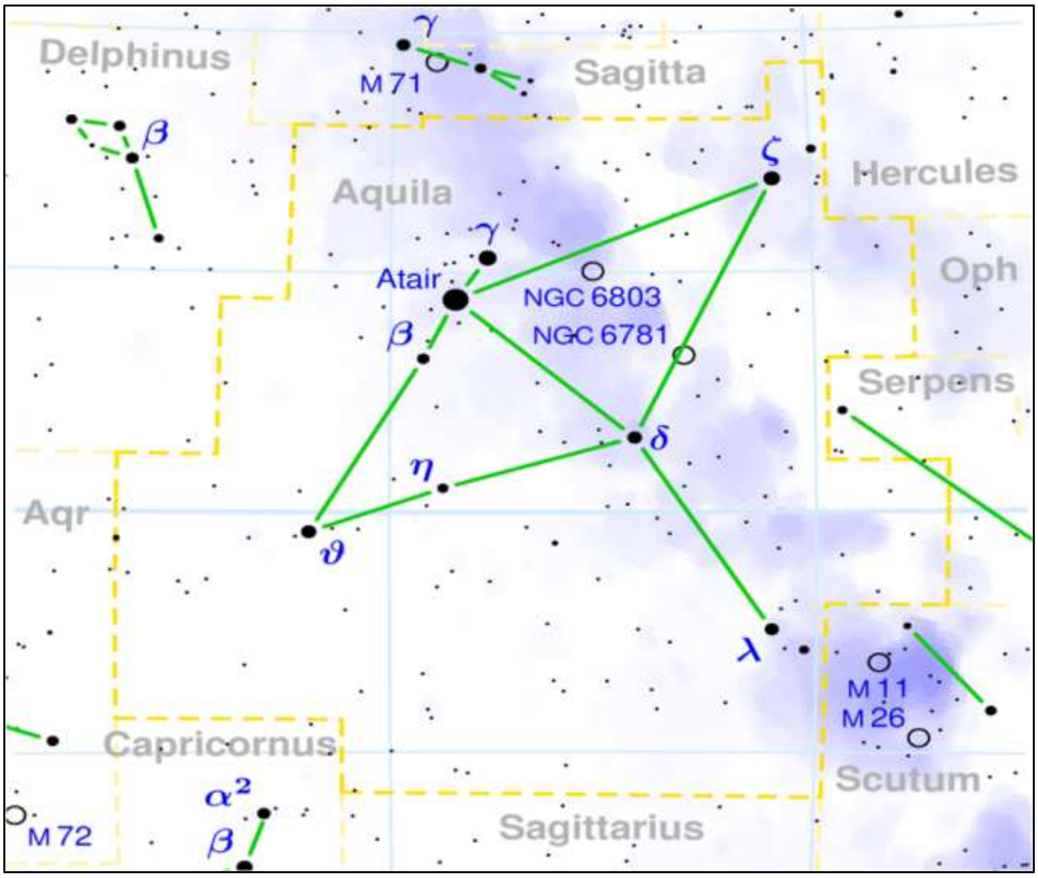
1 श्रोणा नक्षत्रं विष्णुदेवता। तै० सं० 4.4.10

2 श्रवण: श्रविष्ठः कुर्वतां सुपुष्टिम। अथ० सं० 19.7.4

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 273

4 वे० ज्यो०, पद्य - 34
वैष्णवं श्रवणं विद्याद्धर्तुलं त्रीणि तारकम्।
अगस्त्यं चैव गोत्रेण सर्वकर्माणि कारयेत्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 82

5 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 83 -84
शान्तिकपौष्टिकमंगलविचित्रकृषिशिल्प..।
धामविधानस्थापनमुपनयनं विष्णुभे कार्यं। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 23
प्रतिष्ठासीमंतयानोपायानौषधं। पूरारामगृहारम्भं विष्णुभे..। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 22



श्रवण मानचित्र[1]

2.11.21 धनिष्ठा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक संहिताओं में धनिष्ठा नक्षत्र को श्रविष्ठा नक्षत्र भी कहा जाता था[2]। धनिष्ठा नक्षत्र के स्वामी वसु देवता हैं[3]। धनिष्ठा की चार देवियाँ अर्थात् तारे अजरा हैं। हम इस पुण्य नक्षत्र को प्राप्त करें। इसकी कृपा से हमें सम्वत्सर का अमृत प्राप्त हो, यह नक्षत्र दक्षिण से आवे और हमारे शत्रुओं तथा पापों को समाप्त कर दे।[4]

इसी क्रम में धनिष्ठा नक्षत्र का वेदों में 21वाँ स्थान है। और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में धनिष्ठा नक्षत्र का स्थान 23वाँ स्थान पर है। भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रो में धनिष्ठा नक्षत्र का मान 293°-20 से प्रारम्भ होकर 306°- 40 तक का है। धनिष्ठा नक्षत्र चार ताराओं का योग है और यह एक वाद्य यन्त्र

---

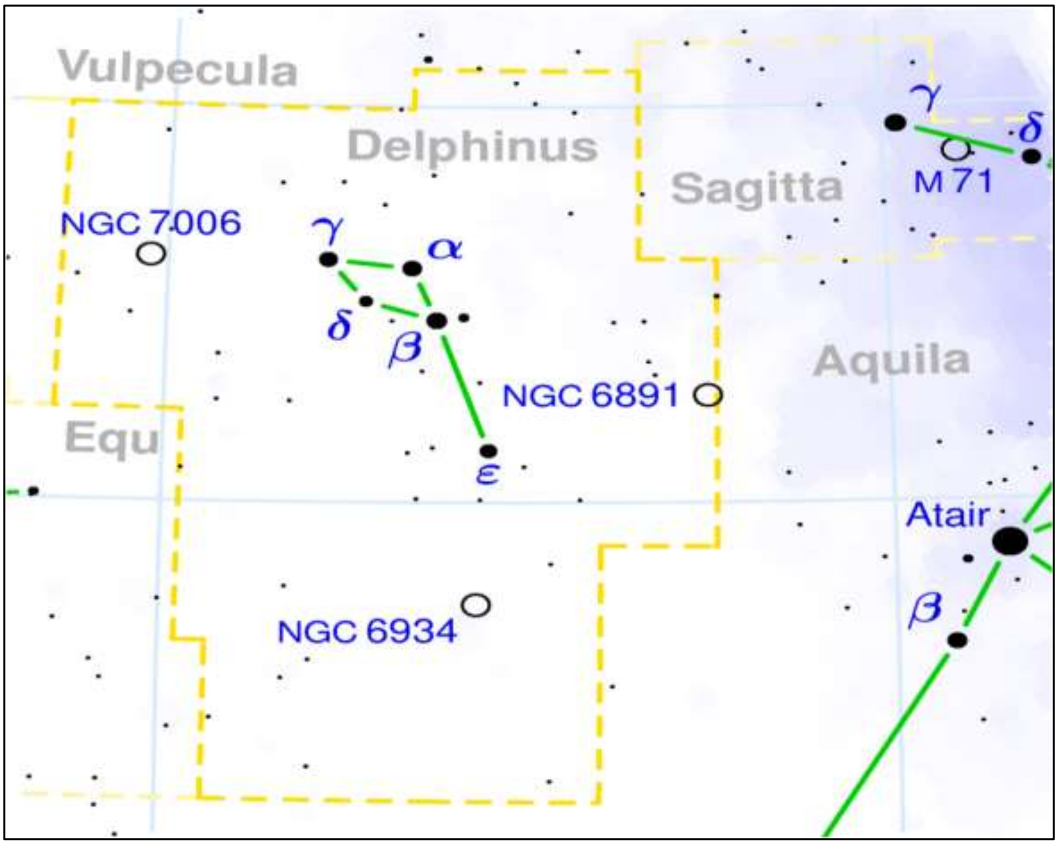
1 https://hi.wikipedia.org/wiki/श्रवण

2 श्रविष्ठा: कुर्वतां सुपुष्टिम्। अथ० सं० 19.7.4

3 श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता। तै० सं० 4.4.10

4 वैदिक ज्योतिष, शास्त्री गिरिजाशंकर, पृ० 228

ड्रम की आकृति वाला है।[1] धनिष्ठा का वसु देवता सांख्यायन गोत्र है।[2] इस नक्षत्र में यज्ञ आरम्भ, उपनयन, चौल विधान, अश्वशाला, भेषज, वास्तु कर्मा आदि करने चाहिए।[3]



धनिष्ठा मानचित्र[4]

2.11.22 शतभिषा नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

तैत्तिरीय संहिता में शतभिषा नक्षत्र का स्वामी देवता इन्द्र है, किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार शतभिषा नक्षत्र का स्वामी वरुण देवता कहे गये हैं [5]।

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 274

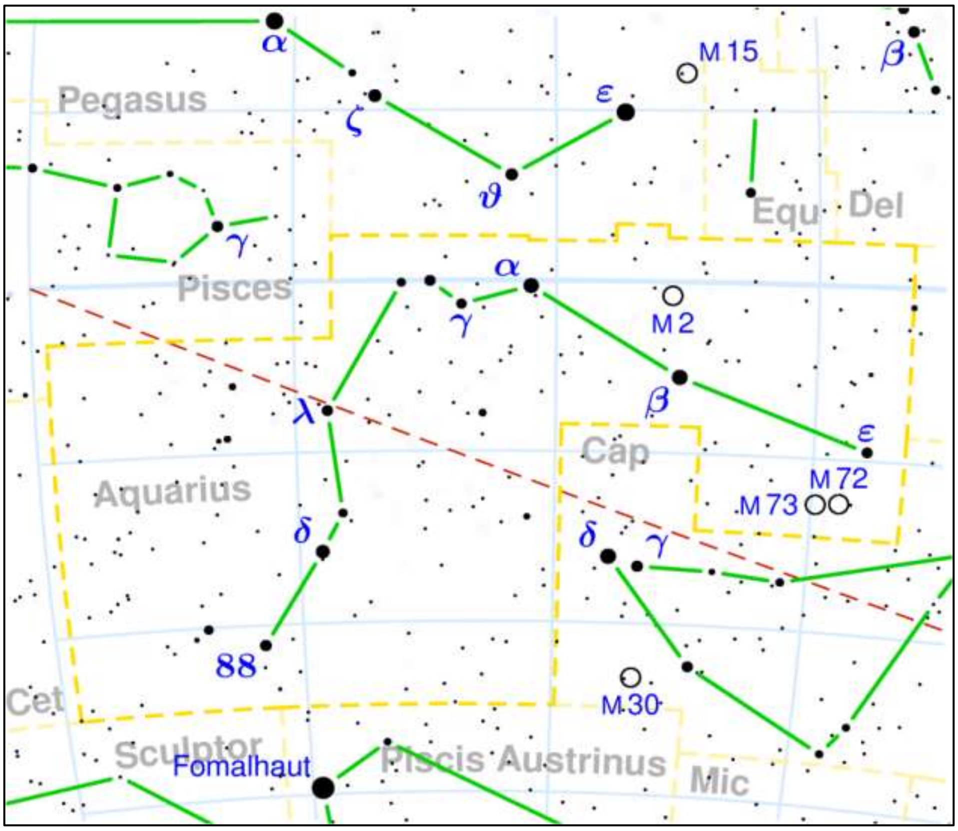
2 वे० ज्यो०, पद्य - 34
धनिष्ठा वसुदैवत्या चतुस्तारास्तु सा स्मृता।
मृदङ्गसंस्थिता चैव गोत्रं सङ्ख्यानकं स्मृतम्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 85

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 86 - 88
उपनयनं चौलविधिम जलतुरगोष्ट....।..विपिनोद्याना..वसुभे। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 24
....वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशाश्वेभभूषणम। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 23

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/धनिष्ठा

5 शतभिषङ् नक्षत्रमिन्द्रो देवताः। तै० सं० 4.4.10

भ-चक्र युक्त 27 नक्षत्रों में वैदिक शतभिषा नक्षत्र का स्थान 22वाँ माना जाता है। तथा वेदाङ्गोत्तर काल में शतभिषा नक्षत्र का स्थान 24वाँ माना गया है। इस प्रकार से 27 नक्षत्रों में शतभिषा नक्षत्र का मान 306°- 40 से प्रारम्भ होकर 320°- 00 तक माना गया है। शतभिषा नक्षत्र में सौ ताराओं का योग होने से यह नक्षत्र शतभिषा कहलाया। इस नक्षत्र का प्रतीक 100 पुष्पों वाली आकृति के समान है।[1] इसके वरुण देवता तथा कात्यायनी गोत्र।[2] इस नक्षत्र में मुक्ताफल, रजत, वास्तुकर्म, जलाशय, बीज बोना, खेती करना, गौशाला, गज गृह, वस्तुओं का आदान प्रदान अनेक प्रकार के कार्यों को करना चाहिए।[3]



शतभिषा मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 275

2 वे० ज्यो०, पद्य - 34
उदग्द्वारं शतभिषक् वारुणं चात्र देवतम्।
कात्यायनी च गोत्रेण ताराश्चैव शतं भवेत्। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 89

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 90 - 93
...मुक्ताफलरजतमयमवरुण..वास्तुकर्माद्यम। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 25
...मौंजीबन्धनभेषजं..अश्वाभरणसीमंतवास्तु कर्म जलेशभे। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40 श्लो० 24

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/शतभिषा

2.11.23 पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक साहित्य में भाद्रपदा नक्षत्र के लिए प्रोष्ठपदा शब्द प्रयुक्त होता था। पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तराभाद्रपदा दोनों को प्रोष्ठपदा कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता[1] में इन नक्षत्रों के स्वामियों का उल्लेख किया गया है जैसे - पूर्वा प्रोष्ठपदा का स्वामी अज एकपाद देवता तथा उत्तरा प्रोष्ठपदा का स्वामी अहिर्बुध्न्य देवता हैं। ऋग्वेद[2] में प्रोष्ठ का अर्थ शुभ कहा गया है।

वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र का स्थान 23वाँ माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों में पूर्वा-भाद्रपद 25वाँ माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र का मान 320° - 00 से 333° - 20 तक है। इस नक्षत्र में दो तारे हैं और इस नक्षत्र की आकृति एक बैठने वाले सिंहासन के समान है।[3] इसका अजैकपाद देवता हारित गोत्रोत्पन्न।[4] इस नक्षत्र में बीज बोना, खेती करना, गौशाला, गज गृह, वस्तुओं का आदान प्रदान अनेक प्रकार के कार्यों को करना चाहिए।[5]

---

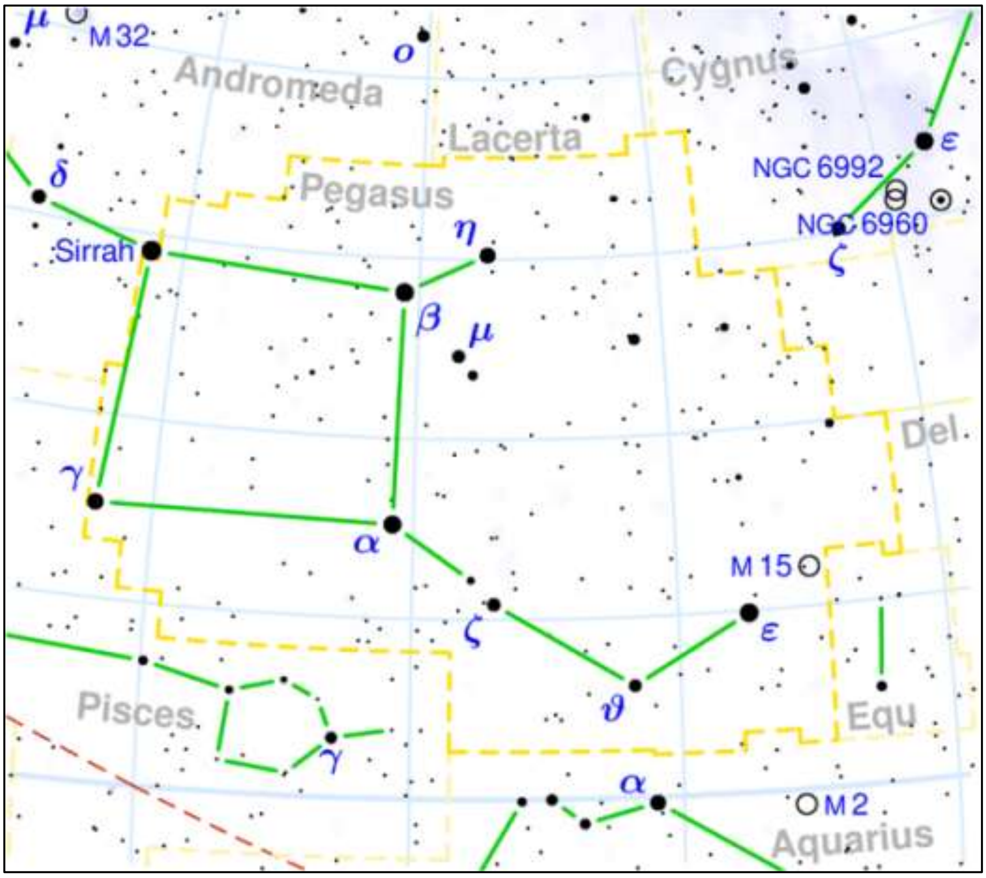
1 प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता। तै० सं० 4.4.10

2 प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरी :।
स्त्रियो: या पुष्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि। ऋ० सं० 7.55.8

3 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 275

4 वे० ज्यो०, पद्य - 34
अजैकपाद्वितारं च पूर्व प्रोष्ठपदं स्मृतम्।
गोत्रेण हारितश्चैव सर्व चैवात्र जायते। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 94

5 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 95
...कुर्याद्साहसजलयन्त्रशिल्पकर्माद्यम। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 26



पूर्वा-भाद्रपद मानचित्र[1]

2.11.24 उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक काल में भाद्रपदा नक्षत्र के लिए प्रोष्ठपदा शब्द का प्रयोग होता था। वहाँ पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तराभाद्रपदा दोनों को प्रोष्ठपदा कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता[2] में इन नक्षत्रों के स्वामियों के लिए कहा गया है कि जैसे - पूर्वा प्रोष्ठपदा का स्वामी अज एकपाद देवता तथा उत्तरा प्रोष्ठपदा का स्वामी अहिर्बुध्न्य देवता हैं। ऋग्वेद[3] में प्रोष्ठ का अर्थ शुभ कहा गया है।

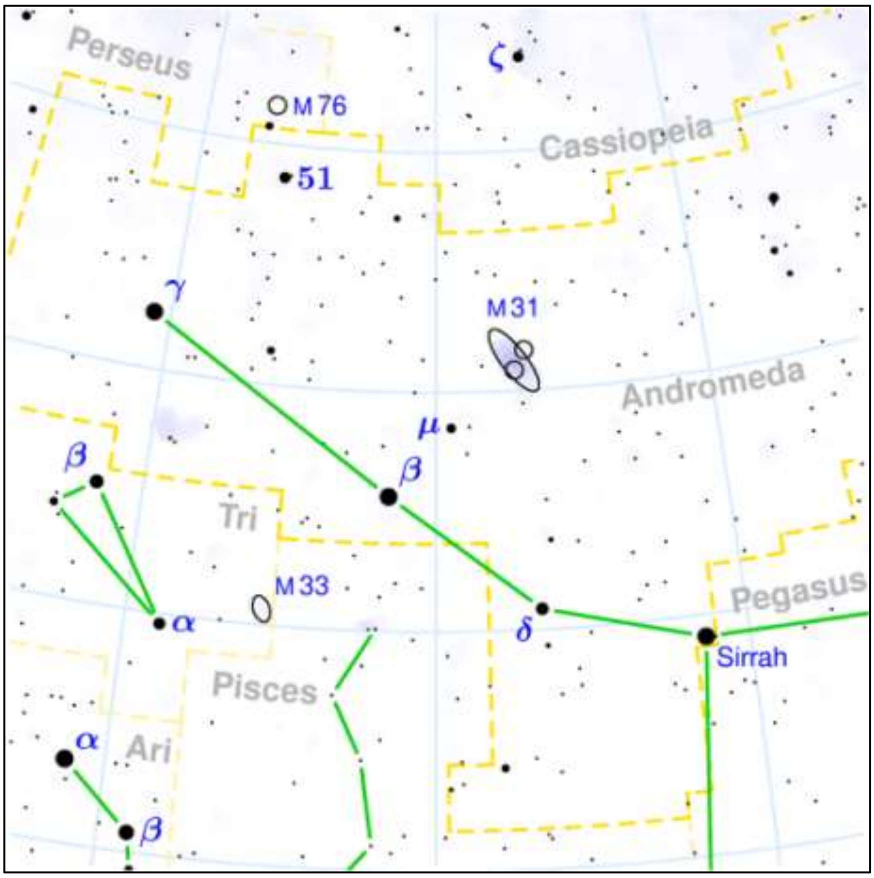
भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में से वैदिक संहिताओं में 24वाँ नक्षत्र उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र को माना गया है। वही वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र का 26वाँ स्थान माना गया है। 27 नक्षत्रों में से उत्तरा-

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/ पूर्वा-भाद्रपद

2 प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्नियो देवता। तै० सं० 4.4.10

3 प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरी :।
स्त्रियो: या पुष्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि। ऋ० सं० 7.55.8

भाद्रपद नक्षत्र का जो मान है वह 333°- 20 से लेकर 346°- 40 पर्यन्त है। इस नक्षत्र में भी दो तारे हैं और इसकी आकृति एक (युगल) जोड़े के समान है।[1] इसके अहिर्बुध्न्य देवता तथा काश्यपी गोत्र है।[2] इसमें मकान का निर्माण, यात्रा, लेपन, शुभ विवाह, गृह परित्याग, वानप्रस्थियों के मकान सम्बन्धित कार्यों को करना चाहिए।[3]



उत्तरा-भाद्रपद मानचित्र[4]

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 276

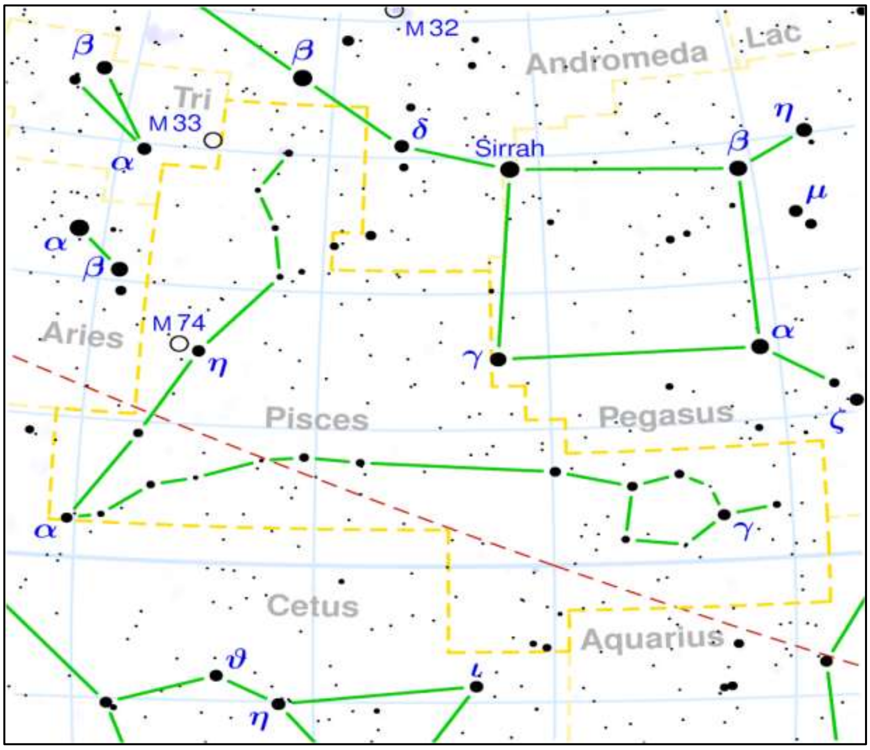
2 वे० ज्यो०, पद्य - 34
अहिर्बुध्न्यं द्वितारं च उत्तरप्रोष्ठपाद्विदुः।
आरम्भाणि च कुर्वीत गोत्रेण विषमाणि च। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो 96

3 बृहदैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 97 - 101
व्रत बन्धन सुरनरप्रतिष्ठाच..। अहिर्बुध्न्ये..वास्तुप्रवेशमभिषेकम। वहीं, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 27

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/उत्तरा-भाद्रपद

2.11.25 रेवती नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

वैदिक नक्षत्रों में रेवती नक्षत्र का स्थान 25वाँ है। और वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में रेवती नक्षत्र का स्थान 27वाँ माना गया है। आकाशस्थ भ-चक्र में स्थित 27 नक्षत्रों में रेवती नक्षत्र का मान 346° - 40 से प्रारम्भ होकर 360° - 00 तक का माना गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह नक्षत्र 32 ताराओं का समूह है और यह एक वाद्य यन्त्र ड्रम की आकृति वाला है। और कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार यह रेवती 3 ताराओं से युक्त है जो कि मछली की आकृति वाला दिखाई देता है।[1] इसका पूषा देवता तथा गर्ग गोत्र है।[2] इसमें स्थिर देवस्थान, गृहारम्भ, विवाह व्रत आदि कार्य करने चाहिए।[3]



रेवती मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 277

2 वे० ज्यो०, पद्य - 34
रेवती पौष्णदेवत्या द्वात्रिंशत्तारका विदुः।
मनीषिणं व्रज कुर्याद्विवाहकरणानि च। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 102

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 103-107
स्थलजलभूषणमखिलमधामविधानं....।...मगलमखिलमपौष्णभे कार्यं। वहीं०, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 28
विवाह्व्रतबंधाश्च प्रतिष्ठायान भूषणम..। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 41, श्लो० 25

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/रेवती

2.11.26 अश्विनी नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

संहिताओं में अश्वनी नक्षत्र की ओर संकेत करते हुए कहते हैं[1] अश्विनी कुमार सुनियन्त्रित अश्वों के साथ सुगति से अश्विनी नक्षत्र के साथ आ रहे हैं। ये शुभ हैं, अपने नक्षत्र का हवि से यजन कर रहे हैं, मधु से युक्त हैं, यजुः से प्रकाशित हैं, देवों के वैद्य हैं, हव्यवाह हैं, विश्वदूत हैं, अमृत के संरक्षक हैं और कर्मफल दाता हैं। उन्हें नमस्कार है। इनका अश्विनी में वास है। वैदिक नक्षत्र क्रमानुसार अश्विनी नक्षत्र का स्थान 26वाँ माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों में अश्विनी नक्षत्र प्रथम (पहला) माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित अश्विनी नक्षत्र का मान 0° - 00 से 13°- 20 तक है। इस नक्षत्र में तीन तारे इस प्रकार से इकट्ठे होते हैं जिनसे अश्वमुख की आकृति का निर्माण होता है।[2] इसलिए यह आकृति अश्व के सिर के समान दिखाई देने वाली होती है। इसके अश्विनौ देवता हैं।[3] इसमें यात्रा, आभूषण, विद्या, वस्त्र, अन्नप्राश तथा यज्ञोपवीत आदि शुभ कार्य होते है।[4]।

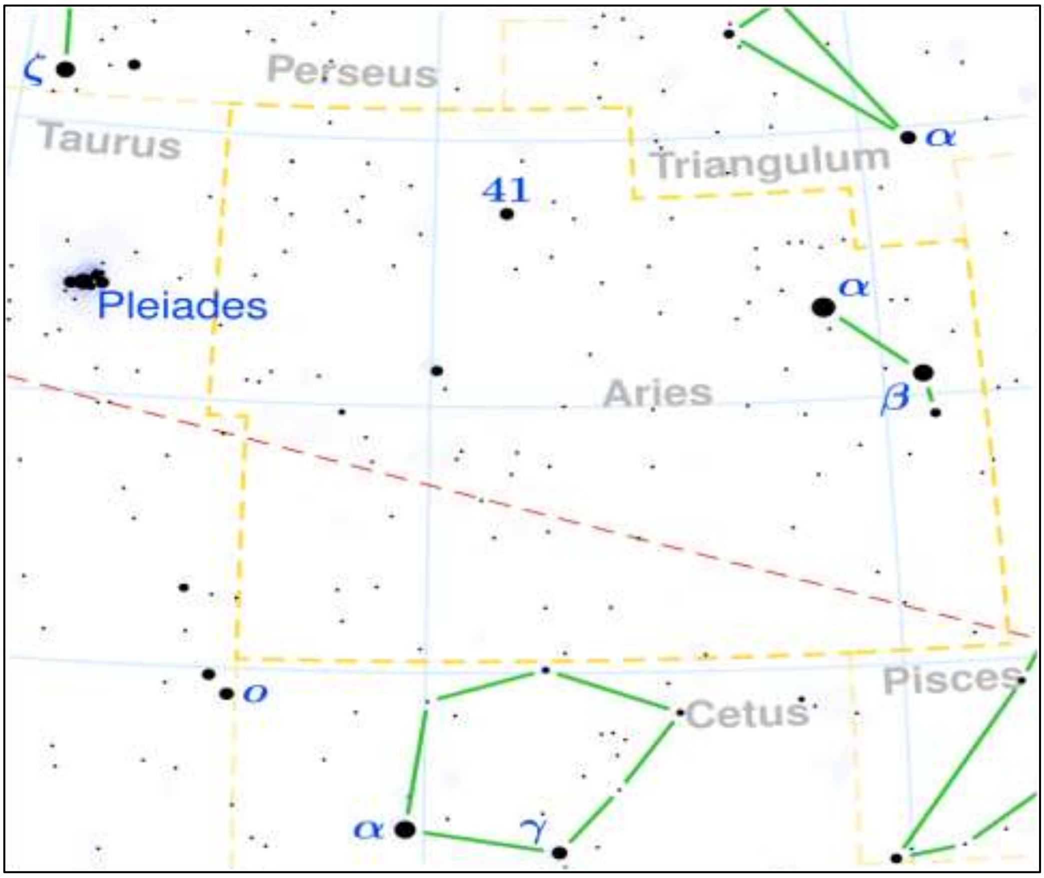
---

1 तदश्विनौ अश्वयुजोपयाताम्। शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः।
स्वं नक्षत्रं हविषा यजन्तौ मध्वा सम्पृक्तौ यजुषा समक्तौ।।
यो देवानां भिषजौ हव्यवाही विश्वस्य दूतौ अमृतस्य गोपौ।
तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयातां नमोऽश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुगभ्याम्। तै० ब्रा० 3.1.1

2 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 255

3 वे० ज्यो०, पद्य - 34
अश्विनीदैवतंक्षिप्रं आश्विनद्वित्रितारकं..। वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 108

4 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 109 - 110
...उत्सवमंगलकार्यं कर्तव्यं दस्त्रनक्षत्रे। वहीं०, व० सं०, पृ० 14, श्लो० 2
वस्त्रोपनयनक्षौरसीमंता भरणक्रिया।....कृषिविद्यादयोश्विभे। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40, श्लो० 3



अश्विनी मानचित्र[1]

2.11.27 भरणी नक्षत्र का स्वरूप एवं प्रभाव

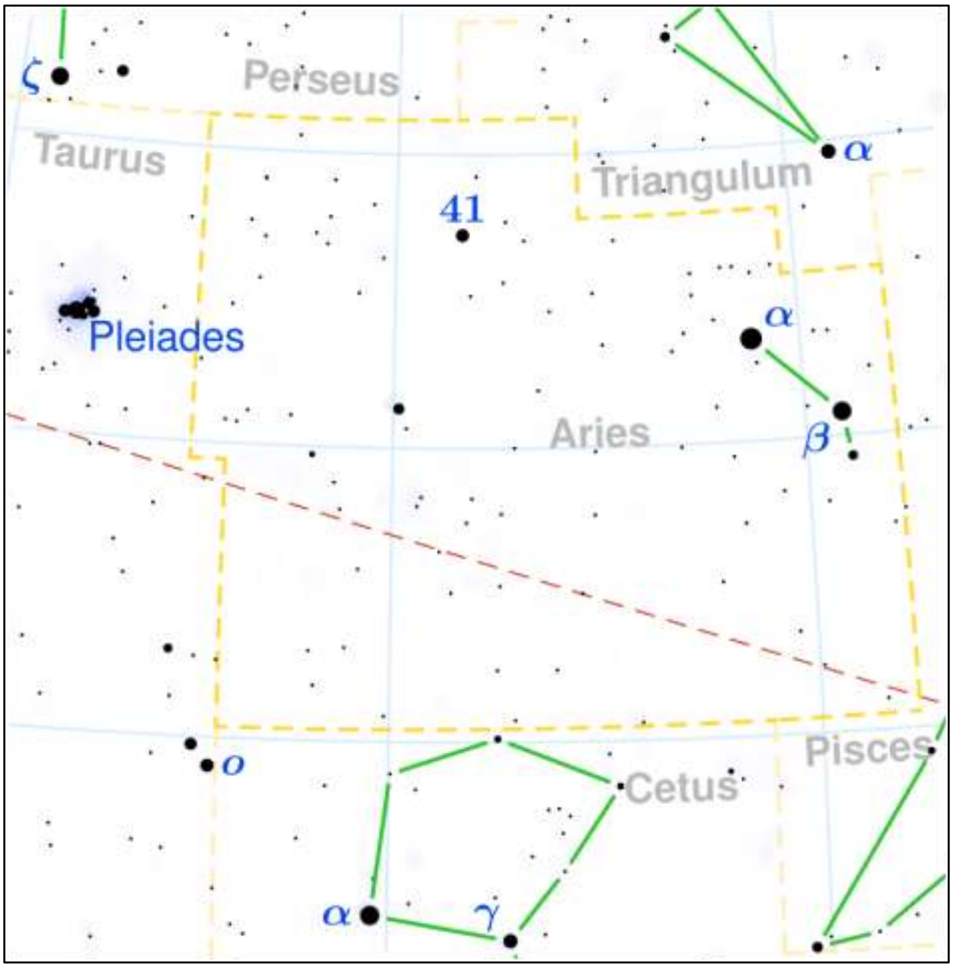
संहिताओं में भरणी नक्षत्र का स्वामी देवता यम हैं। यम के लिए वैदिक साहित्य में न्यायाधीश, नियन्ता, संयमी, परमात्मा, वायु तथा सूर्यपुत्र वैवस्वत कहा गया है। तैत्तिरीय में कहा है[2] कि यम महान् हैं, महानों में महान् हैं, राजा हैं, हमारे मार्ग को सुगम एवं अभय बनाते हैं और उनकी प्रिया भरणी विश्व का भरण करती है। इसी में देवताओं ने यमराज का राज्याभिषेक किया और वे इसी में पधारते हैं। हम भरणी का यजन करते हैं। वह हमारे पापों और कष्टों को समाप्त करें।

इसी नक्षत्र क्रम में वेदों में भरणी नक्षत्र का स्थान 27वाँ माना गया है। परन्तु वहीं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में नक्षत्रों में भरणी नक्षत्र द्वितीय माना गया है। इस प्रकार भ-चक्र में स्थित भरणी नक्षत्र का

1 https://hi.wikipedia.org/wiki/अश्विनी

2 लोकस्य राजा महतो महान् हि। सुगं नः पन्थानमभयं कृणोतु।
यस्मिन्नक्षत्रे यम एति राजा। यस्मिन्नेनमभ्यर्षिचन्त देवाः। तदस्य चित्रं हविषा यजाम।।। तै० ब्रा० 3.1.1

मान 13° - 20 से 26°- 40 तक है। यह नक्षत्र तीन ताराओं से युक्त होकर अश्वनी नक्षत्र से पूर्व दिशा की ओर त्रिभुजात्मक आकृति के रूप में स्थित है।[1] इसका मोद्गल्य गोत्र और यम देवता हैं।[2] इसमें साहस, दारुण, शत्रुप्रशमन, कृषि, कूप तड़ाग, आदि कार्य किये जाते हैं।[3]



भरणी मानचित्र[4]

---

1 लगध ज्योतिष, शर्मा पुनीता, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 256

2 वे० ज्यो०, पद्य - 34
याम्यमत्रितारम चोग्रम च भरणीयमदैवतम।
मौद्गाल्यायच गोत्रेण क्रूर कर्माणि कारयेत।   वहीं, बृह०, नक्षत्र प्रकरण श्लो० 111

3 बृहद्दैवज्ञरन्जनम, नक्षत्र प्रकरण, श्लो० 112-116
साहसदारुणशत्रुप्रशमननिक्षेपकूप...। वहीं०, व० सं०, प्र० 14, श्लो० 3
वापीकूपतडागादि विषशस्त्रोग्रदारूणम। वहीं, ज्योतिर्निबन्ध, पृ० 40, श्लो०4

4 https://hi.wikipedia.org/wiki/भरणी

2.12 तुलनात्मक विश्लेषण

28 नक्षत्रों के स्वरूप, प्रभाव, स्थिति, फल आदि का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदाङ्ग ज्योतिष एवं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर किया गया है वैदिक - काल में वसन्त सम्पात कृत्तिका नक्षत्र में होता था इसलिए कृत्तिका प्रथम नक्षत्र था। नक्षत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया था। प्रथम देव नक्षत्र तथा दूसरा भाग यम नक्षत्र कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा गया है कृत्तिका से विशाखा तक 14 नक्षत्र देव नक्षत्र कहे जाते थे तथा अनुराधा से भरणी तक 14 नक्षत्र यम नक्षत्र माने जाते थे।[1] जहाँ यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में सभी नक्षत्रों के देवताओं का उल्लेख मिलता है वहीं तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवताओं की संज्ञाओं में अन्तर देखने को मिलता है। अथर्ववेद संहिता की बात करें तो यहाँ सभी नक्षत्रों के नामों के साथ साथ उनसे प्रार्थनाऔर फल प्राप्ति की कामना की गयी है। इन सभी संहिताओं से नक्षत्रों के भिन्नरूप वेदाङ्ग ज्योतिष वेदाङ्ग ज्योतिष में देखने को मिलते हैं जहाँ नक्षत्रों के देवता तो एक जैसे हैं परन्तु यहाँ नक्षत्रों का सांकेतिक रूप प्राप्त होता है। परन्तु नक्षत्रों की आकृति के विषय में सभी नक्षत्रों में भिन्नता देखने को मिलती है क्योंकि सभी नक्षत्रों के ताराओं की संख्या अलग अलग अलग है। ऋग, यजु, अथर्व एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों की तुलना की जाये तो वहाँ समानता अधिक देखने को मिलती है कुछ कुछ स्थानों में अन्तर देखने को मिलता है।

[1] कृत्तिकाः प्रथमं विशाखे उत्तमं तानि देव नक्षत्राणि।
अनुराधाः प्रथमममपभरणीरुत्तमं तानि यम नक्षत्राणि। तै० ब्रा० 1.5.2

तृतीय अध्याय

वैदिक संहिताओं में वर्णित काल की स्थूल एवं सूक्ष्म इकाईयाँ

वैदिक संहिताओं एवं ज्योतिष ग्रन्थों में काल के विषय में विशद वर्णन प्राप्त होता है। जितना भी सम्पूर्ण दृश्य मान जगत और अगोचर ब्रह्माण्ड है उसमें स्थित समस्त पिण्ड उनकी उत्पत्ति स्थिति और संघार समस्त कार्य - कारण जगत कालद्रव्य के ही भीतर समाहित हैं - **"कलयति संख्यायति सर्वान् पदार्थान् स कालः"।**[1] वेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में काल सम्बन्धित काल परिणाम की अनेक भिन्न-भिन्न इकाइयों का वर्णन किया गया है। जैसे - युग, सम्वत्सर, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, मुहूर्त आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में जहाँ स्थूल से स्थूल काल परिमाण की इकाइयों का वर्णन किया गया है वहीं सूक्ष्म से सूक्ष्म त्रुटि, प्राण आदि कालरूपी इकाइयों का वर्णन भी किया गया है। काल के समस्त खण्ड -

कल्प, मन्वन्तर, युग (चतुर्युग), सम्वत्सर (वर्ष), अयन (उत्तर - दक्षिण), ऋतु, मास, पक्ष (कृष्ण - शुक्ल), अहोरात्र, दिनमान, रात्रिमान, मुहुर्तादि

3.1 काल शब्द की व्युत्पत्ति

अष्टाध्यायी के अनुसार "कल - गतौ संख्यायने च + घञ् प्रत्यय " युग्म से काल शब्द बना।[2] वहीं वैदिक निर्वचन में "काल" शब्द गत्यर्थक काल धातु से बना है। क्योंकि यह सभी प्राणियों को नष्ट करता है।[3] अथर्ववेद में काल को सर्वेश्वर, परमदेव, परमतेज आदि कहकर सम्बोधित किया गया है।[4] और काल की

---

1 सत्यार्थ प्रकाश, दयानन्द निरुक्ति व्युत्पत्ति कोष, शास्त्री रूप किशोर, पृ० 69

2 वृषादीनां च - अष्टाध्याय, 6.1.203

3 कालः कालयतेर्गतिकर्मणः। वैदिक निर्वचन कोश, पृ० 57
कालः कालयतेः इति कर्मणः। वहीं, निरुक्त, द्वितीय अध्याय, 3.33.5

4 कालो ह सर्वस्येश्वरो" स इयतेपरमो नु देवः" तस्माद वै नान्यत परमोस्तितेजः"।
अथर्व० 19.6.53 - 54

उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि - काल स्वयम्भू है वह स्वयं उत्पन्न हुआ। सबके द्रष्टा कश्यप काल से ही प्रादुर्भूत हुए और प्रथम तपः शक्ति भी काल से ही उत्पन्न हुयी।[1]

3.2 संहिताओं में 'काल' शब्द का अर्थ

जब हम काल शब्द का अर्थ करते है तो यह अपने आप में एक गम्भीर अर्थ को प्रकट करता है। तथा काल के अनेक पर्याय प्रकट हो जाते है। काल का एक प्रसिद्ध अर्थ "समय" भी है। वैदिक साहित्य में भूतकाल का प्रयोग ऋत के अर्थ में हुआ है। और यहाँ ऋत एक अखण्ड नियम तथा अपरिवर्तनीय शाश्वत सत्य है। जिसके आधार पर सम्पूर्ण सृष्टि गमनशील है।[2] इस सम्पूर्ण प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत में कुछ भी ऐसा नही है, जो नित्य व अनश्वर हो। यहाँ तक की सम्पूर्ण ग्रह, तारा, नक्षत्रादिगण और ऋतुएँ तक भी सभी परिवर्तनशील हैं और इन सभी का आवागमन भी उस अखण्ड शाश्वत "ऋत" पर ही आधारित हैं।[3] यह सृष्टि इसी ऋत व सत्य पर आधारित हैं जो कि एक नियमित व एक निर्धारित गति से चलती है।[4] जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात्रि का आगमन होता है।[5] निरन्तर इस गतिशीलता की प्रक्रिया में यह दिन रात अहोरात्र सृष्टि के कारण बनते हैं।[6] इस प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया में पूर्वापर सम्बन्ध के कारण एक आकार रहित पदार्थ व तत्त्व को माना गया है। .जिसकी संज्ञा काल बताई गई है।

3.2.1 ऋग्वेद संहिता में काल

ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल में काल शब्द का सिर्फ एक बार ही प्रयोग किया गया है जोकि क्रिया विशेषण के रूप में देखने को मिलता है।[7] जैसे द्युत खेलने वाला "कृत" (ऊँचे फेंके गये) को "उचित

---

1 कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्।
स्वयंभूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत।
अथर्व० सं० 19.53.10

2 शर्मा पुनीता, लगध ज्योतिष, सुयशा हिंदी टिका, पृ० 19

3 ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धातपसो ध्यजायत ततो रात्र्यजायत। ऋग्वेद, 10.190.1

4 यथा धाता पूर्व मकल्पयत्। ऋ० सं० 10.190.3

5 अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च विवर्तते रजसी। ऋ० सं० 6.9.1

6 अप अन्यदेति अभि अन्यदेति विशु रूपे अहनी सञ्चरेते। ऋ० सं० 1.123.7

7 उत प्रहामतिधीत्या ययाति कृतं यच्छवद्धमी विचिनोति काले।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित् तं राया सृजति स्वधावान्।। ऋ० सं० 10.42.9

काल" में एकत्र करता है।[1] ऋग्वेद में देखें तो यहाँ अनेक शब्द इस प्रकार से हैं, जो काल शब्द को द्योतित करते हैं। जैसे- वत्सर, अहन, भृत, भव्य, आदि।[2] कालमान का सबसे बड़ा जो परिमाण है वह इकाई वेदाङ्गोत्तर काल में "कल्प" मानी गई है। और इस कल्प का वर्णन वेदोंत्तरकालीन ज्योतिष ग्रन्थों में तो प्राप्त होता है परन्तु वेदों में कहीं भी कल्प शब्द कालमान के लिए प्राप्त नहीं होता है।[3]

3.2.2 अथर्व संहिता में काल

अगर अथर्वसंहिता की बात की जाए तो अथर्व में काल को देवत्त्व रूप प्राप्त हैं।[4] अथर्ववेद में काल के लिए पूरे दो सूक्त प्राप्त होते है। जिनमें प्रथम में 10 मन्त्र हैं और द्वितीय में 5 मन्त्र हैं।[5] इस सूक्त में काल कहीं - कहीं भाग्य के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। यहाँ काल को सर्वेश्वर सर्वशक्तिशाली माना गया है।[6] यहाँ कहा गया है कि काल अश्व के समान गतिशील है।[7] और यहाँ काल को सभी भुवनों का पोषण करने वाला कहा गया है भूतकाल में इन प्राणियों का पिता तथा अगले जन्म में वही इनका पुत्र हो जाता है।[8] और अन्य स्थान पर कहा गया है कि काल ने ही द्युलोक, पृथ्वीलोक आदि सभी लोकों की रचना की है।[9] वेदों की उत्पत्ति के विषय में भी कहा गया है कि काल से ही ऋग्वेद की ऋचाएँ तथा यजुर्वेद के मन्त्र प्रकट हुए।[10] इसमें पूर्णकुम्भ (ब्रह्माण्ड) रहता है वह सर्वत्र व्याप्त है सभी मनीषी जन उसे दिवा रात्रि के समान अलग अलग रूपों में देखते हैं।[11] वह परम व्योम है। वही बृहद्देवता ग्रन्थ में श्यावी (रात्रि) तथा उषा (रात्रि का भाग)

---

1 कृतंण श्वघ्नी विचिनोति देवने। ऋ० सं०, 10.43.5

2 ऋ० सं०। वहीं - 3.61.6

3 दीक्षित शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० 32

4 सर्वांल्लोकानविजित्य ब्राह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः। अथर्व० सं०। 19.54.5

5 अथर्व संहिता। वहीं 19.53.54

6 कालो ह सर्वस्येश्वरो यःपितासीत प्रजापतेः। अथर्व० सं० 19.53.8

7 कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः। अथर्व० सं०। वहीं 19.53.1

8 स एव सन भुवनान्य...। पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्मात्..। अथर्व० सं०। वहीं 19.53.4

9 कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही।
द्यौर्मही काल आहिता। अथर्व० सं० 19.54.2

10 कालादृचः सम्भवन् यजुः कालादजायत। अथर्व० सं० 19.54.3

11 पूर्ण कुम्भोधिकाल..पश्यामो बहुधानुः।
विश्वाभुवनानि..तमाहुः परमे व्योमन्। अथर्व० स०, वहीं 19.53.3

को काल की एक कला के रूप में वर्णित किया गया है।[1] आगे कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और नियमन उसी काल से हुई है उसी से सृष्टि उत्पन्न होती है और उसी में लीन हो जाती है। काल से ही दिव्य लोगों की उत्पत्ति हुई। काल में ही भूत वर्तमान भविष्य आश्रित हैं।[2] काल के ही सामर्थ्य से सूर्य उदित होता है है और तत्पश्चात सूर्य पुनः उसी काल में ही प्रविष्ट हो जाता है।[3] काल के द्वारा ही सूर्य सम्पूर्ण चराचर जगत को प्रकाशित कर पाता है काल के तेज से ही सूर्य चमकता है।[4] काल ही अपने ब्राह्मी चेतना को विस्तृत करके परमेश्वर प्रजापति को धारण करता है।[5] काल के अन्तस्थ में ही मन, प्राण तथा सभी नाम समाहित है।[6]

3.3 वैदिक साहित्य में 'युग' स्वरूप

3.3.1 ऋग्वेद संहिता में युग

युग शब्द "युजिर्" धातु तथा घञ् प्रत्यय के योग से बना है। "युजिर्" धातु का प्रयोग जोड़ने के अर्थ में होता है। इस प्रकार से युग शब्द का अर्थ जोड़ना हुआ "जो जुड़े वह युग होता है " जैसे दिवस रात्रि का जुड़ना, रात्रि दिवस का जुड़ना, इस प्रकार से हम ऋग्वेद में भी युग शब्द का प्रयोग दिन और रात के जोड़े के रूप में भी देखते हैं। जैसे "नहुषा युगा मन्हारजांसि दीयथः " उपयुक्त उदहारण है।[7] एक अन्य उदहारण के रूप रूप में जिसे वहाँ अहोरात्र भी कहते हैं "अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् "। इस प्रकार से वहाँ युग को अनेक भेद प्रभेदों में बांटा गया होगा जैसे - देवयुग, पितृयुग, मानुषयुग आदि। जिसमें कि हमें मानुष युग 5 वर्ष का होता

---

1 श्याव्याग्नेयी हि कालस्य तस्यैवोषाः कलेव तु। वृ० दे० 38

2 कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते। अथर्व० सं० 19.53.5

3 कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः। अथर्व० सं० 19.54.1

4 कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले हविश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति। अथर्व० सं० 19.53.6

5 तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम्।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम्। अथर्व० सं० 19.53.9

6 काले मनः काले प्राण : काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः। अथर्व० सं० 19.53.7

7 ऋ० सं० 5.73.3

है ऋग संहिता के दीर्घतमा तथा आश्विन ऋषि परक मन्त्र में यह उल्लेख प्राप्त होता है।[1] काल के परिमाण की दूसरी इकाई के रूप में युग की कल्पना की जाती है। युग शब्द वेदों में अनेक स्थानों पर आया है। जैसे ऋग्वेद के एक मन्त्र में "अति प्रबल इन्द्र ने हाथ में बज्र लेकर दस्यु को मारने के लिए जाते समय जो नाम धारण किया उस प्रख्यात नाम को इस मानव युग में इस स्तोता के लिए मघवा धारण करता है।[2] सायणाचार्य का यह मानना है कि यहाँ युग शब्द कृतत्रेतादि युगों का ग्रहण हो ऐसा समझना चाहिए।[3] वहीं एक अन्य मन्त्र में युग के विषय में कहा गया है कि - "ममता के पुत्र दीर्घतम नाम के महर्षि अश्विन के प्रभाव से अपने दुःखों से छूटकर स्त्री - पुत्रादि कुटुम्बियों के साथ 10 युग पर्यन्त सुख से जीवित रहे।[4] प्रस्तुत मन्त्र की व्याख्या करते हुए सायण ने कहा है कि दीर्घतम ने अश्विन के प्रभाव से दुख से छुटकारा पाकर जीवन के अवशेष 10 युग अर्थात 50 वर्ष सुख से बिताए थे।[5] इस प्रकार से सायणभाष्य देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में युग का मान 5 वर्ष लिया जाता होगा। और यही बात हमें कहीं ना कहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में पञ्चसंवत्सरात्मक रूप में देखने को मिलती है। वहाँ भी एक युग की कल्पना 5 वर्षों अथवा 5 सम्वत्सरों के योग होने से मानी गई है। अगर हम गणना करें तो और पाँच वर्षों का एक युग माने तो मन्त्र में प्रयुक्त "दशमे युगे " 5 x 10 = 50 अर्थात 50 वर्ष के पश्चात जो पचास वर्ष शेष रहे वे सुखपूर्वक बिताये। इस प्रकार प्रस्तुत मन्त्र के विश्लेषण से हमें यह ज्ञान हो जाता है कि वैदिक काल में भी युगमान पञ्चवर्षात्मक था। ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण में एक प्रसिद्ध हरिश्चन्द्रोपाख्यान जिसके एक मन्त्र में हमें चारों कृत त्रेतादि युगों का नाम तथा उनके गुणों को कहा गया है जैसे - सोने वाला कलि, बैठने वाला द्वापर, और उठने वाला त्रेता होता है।[6] और घुमने वाला (होने पर) कृत सम्पन्न होता है। इसीलिए वहाँ हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित को इन्द्र घूमता

---

[1] ऋ० सं०, वहीं, 1.158.6

[2] तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत।
उपप्रयंदस्युहत्याय वज्री यद्धसूनुः श्रवसे नाम दधे। ऋ० सं० 1.103.4

[3] विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः। वहीं, ऋ० सं० 5.52.4

[4] दीर्घतमा मामेतयो जुजुर्वान दशमेयुगे।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः। ऋ० सं०, 1.158.6
शास्त्री नेमिचन्द, भा० ज्यो०, पृ० 53

[5] दशयुगपर्यन्तं जीवन उक्तरूपेण पुरुषार्थसाधकोअभवत्
अथवा जीवन् उत्तररूपेण पुरुषार्थ साधको अभवत्। सा० भा०,
वहीं० - शास्त्री नेमीचन्द्र, भा० ज्यो०, पृ० 53

[6] कलिः शयानो भवति सज्जिहानस्तु द्वापरः।

ही रह घूमता ही रह यह उपदेश भी देता है **"चरैवेति चरैवेति "**।[1] वहीं एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि "जो औषधियाँ पहले तीन युगों में देवों से उत्पन्न हुई हैं।[2] इस मन्त्र में तीन युगों की बात की गई है जिसका अर्थ सायणाचार्य ने अपने भाष्य में त्रियुगं शब्द का अर्थ कृत, त्रेता तथा द्वापर इन तीन युगों के रूप में ग्रहण किया है साथ ही साथ वसन्त, वर्षा और शरद इन तीनों ऋतुओं के रूप में भी तीनों युगों का अर्थ ग्रहण किया है।[3] यही बात यजुर्वेद में भी कहते हैं।

3.3.2 यजुर्वेद संहिता में युग

तैत्तिरीय संहिता और वाजसनेयी संहिता में भी कही गई है।[4] वही महीधर ने भी अपने भाष्य में त्रियुगं शब्द का ग्रहण वसन्त, वर्षा और शरद से किया है। तैत्तिरीय के एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि पितरों के साथ साथ कृत, त्रेता तथा द्वापर हमारा रक्षण करें।[5] इस मन्त्र से कहीं ना कहीं यह भी स्पष्ट होता है कि कृत, त्रेता, द्वापर आदि युगों को देवत्त्व रूप प्रदान किया गया है। जिसके कारण उनसे मानव द्वारा अपने रक्षण की कामना व प्रार्थना की जाती है। वाजसनेयी संहिता में "पुरुषमेध" का वर्णन आता है जिसमें युगों के विषय में कहा गया है कि कृत को आदिनवदर्श, त्रेता को कल्पी और आसकंन्द को सभास्थाणु अर्पण करना चाहि।[6] वहीं तैत्तिरीय में भी कृत (देवता) के लिए सभावीका (पुरुष विशेष), त्रेता (देवता) को आदिनवदर्श (पुरुष विशेष), द्वापर (देव) को बर्हिसद (नामक पुरुष) और कलि देवता को सभास्थाणु (नामक पुरुष) देना चाहिए।[7] कहने का आशय यह है कि भिन्न-भिन्न देवताओं को उनके अनुसार अमुकामुक मेध्यपुरुष देने चाहिए। जो कि यहाँ कृतादि युगों के उस काल मान को देवत्त्वरूप में स्वीकार किया गया है।

उत्तिष्ठमस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरं। ऐ० ब्रा० 33.15

1 ऐ० ब्रा०। वहीं - 33.15

2 या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पूरा। ऋ० सं० 10.97.1

3 दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० 34

4 वाजसनेयी संहिता। 12.75

5 प्राचीदिशां वसन्त..कृतमयानां..त्रेतायानां..द्वापरोयोनां..अभिभूरयानां पितरः। तै० सं० 4.3.3

6 कृतयादिनवदर्श त्रेताये कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम्। वा० सं० 30.18

7 कृताय सभाविनं। त्रेताया आदिनवदर्शम्। द्वापराय बहि सदम्। कलये सभास्थाणुम्। तै० ब्रा० 3.4.1

3.3.3 ऋग्यजुर्वेदांग ज्योतिष में महायुग गणना

महायुग की गणना हमें प्राचीन सूर्य सिद्धान्त में देखने को मिलती है। जो कि कई विद्वानों द्वारा वेदाङ्ग ज्योतिष के अन्तराल ही इसकी रचना मानी गयी है। यहाँ महायुग की गणना का आधार दिव्य वर्षो को माना गया है। और दिव्य वर्ष का निर्धारण देवताओं और असुरों की दिन और रात्रि को आधार बना कर किया गया है। और यहाँ 360 सौरवर्षों का एक दिव्य वर्ष माना गया है।[1] देव और असुरों के वर्ष प्रमाण से 12 हजार दिव्य वर्षो का एक चतुर्युग (महायुद्ध) कहा जाता है। और वही सौरमान से 10 हजार से 432 गुणित कर 4320000 वर्षों का एक महायुग हो जाता है।[2]

432 x 10000 = 4320000, सौर वर्ष का = एक महायुग

महायुग की गणना के लिए चतुर्युगों में धर्मपाद की व्यवस्था की गई हैं। इस व्यवस्था के अनुरूप ही प्रत्येक युग के अलग-अलग धर्मपाद गिनाए गए हैं। यथा कृत (सत्य) युग में चार, त्रेता युग में तीन, द्वापर में दो तथा कलयुग में एक धर्मपाद का विधान किया गया है।[3] इन्हीं धर्म पादों के अनुसार चारों युगों के पादतुल्य भिन्न भिन्न दिव्य वर्ष होते हैं। जिनमें महायुग के (12000 दिव्य वर्ष) के दशमांश (1200) को क्रम से 4, 3, 2, 1 से गुणा करने पर कृत, त्रेता, द्वापर तथा कलयुग का मान ज्ञात होता है।[4] यथा -

3.3.3.1 ऋग्यजुर्वेदांग ज्योतिष में चतुर्युगों का मान

कृतादि युग, धर्मपाद, दशमांश दिव्यवर्ष	कुल दिव्यवर्ष
कृत युग 4 पाद = 1200 दिव्य वर्ष x 4 =	4800 दिव्य वर्ष
त्रेता युग 3 पाद = 1200 दिव्य वर्ष x 3 =	3600 दिव्य वर्ष
द्वापर युग 2 पाद = 1200 दिव्य वर्ष x 2 =	2400 दिव्य वर्ष
कलियुग 1 पाद = 1200 दिव्य वर्ष x 1 =	1200 दिव्य वर्ष
चारों युगों का कुल योग =	**12000 दिव्य वर्ष**

---

1 सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात्। सू० सि० 14

2 तद् द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहितम।
सुर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः। सू० सि०, मध्यमाधिकार, 15

3 कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया। सू० सि०, मध्यमाधिकार 16

4 कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया। सू० सि०, मध्यमाधिकार 16

अभी तक हमने यह देखा कि किस प्रकार से पञ्च संवत्सरात्मक युग का निर्माण होता है। और पाचों सम्वत्सरों में हर एक सम्वत्सर एक - एक वर्ष का होता है।

3.3.4 अथर्व ज्योतिष में युग

अथर्व ज्योतिष को कई विद्वानों ने वेदाङ्गरूप में ही ग्रहण किया है। इसमें जिस मास में, जिस पक्ष में तथा जिस तिथि को युगारम्भ होता है उसे चक्ररूप में दर्शाया गया है।[1] यथा -

युगारम्भतिथि चक्र

युगारम्भ	सतयुग	त्रेता युग	द्वापर युग	कलियुग
मास	कार्तिक	वैशाख	माघ	भाद्रपद
पक्ष	शुक्ल	शुक्ल	कृष्ण	कृष्ण
तिथि	नवमी	तृतीय	अमावस्या	त्रयोदशी

वहीं हम प्राचीन सूर्य सिद्धान्त में युग का विस्तृत रूप देख सकते हैं। हमें यहाँ महायुग की परिकल्पना देखने को मिलती हैं। इसे चार भागों में बांटा गया है। यह महायुग कृत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग इन चार भागों में विभक्त किया गया है। यही हम पूर्व में देख चुके हैं कि कृत्य, त्रेता, द्वापर और कलयुग ऋग्वेद में अथवा यजुर्वेद में वसन्त, वर्षा, शरद ऋतु के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। और कहीं - कहीं छोटी कालावधि के लिए ही युग का प्रयोग किया गया जैसे हरिश्चन्द्रोपाख्यान् में हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित के भ्रमण को ही इन्द्र कृत (सत्य युग) कह देता है।

3.4 वैदिक साहित्य में 'सम्वत्सर' युग पद्धति

जब हम वेदों में युग के विषय में देखते है तो वहाँ युग के विभाजन का एक और एक अन्य रूप में देखते हैं जिसका विभाजन पाँच सम्वत्सरों में देखने को मिलता है इन पाँचों सम्वत्सरों में प्रत्येक सम्वत्सर एक एक वर्ष का होता है। हम वर्ष को सम्वत्सर का पर्याय या फिर सम्वत्सर को वर्ष का पर्याय समझ सकते हैं।

---

[1] अथर्ववेदीय ज्योतिषम्। भ्रमभञ्जनी हिन्दी टीकोपेतम्, पृ० 35

3.4.1 ऋग्वेद संहिता में सम्वत्सर

जैसे ऋग्वेद के एक मन्त्र में सम्वत्सर का प्रयोग "शरद" शब्द के रूप में हुआ है। जिसका अर्थ "शरद ऋतु" न हो करके सम्वत्सर है। और यही शरद वर्ष के रूप में भी माना गया है।[1] इसका अर्थ यह हुआ कि जो वर्ष माना गया है उसी को सम्वत्सर कहा गया। सम्वत्सरों का वर्णन हमें मूलरूप में ऋग्वेद में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में हमें सम्वत्सर, परिवत्सर आदि नाम प्राप्त होते हैं।[2] परन्तु ये सभी नाम एक स्थान पर न होकर अलग अलग स्थानों में दखने को मिलते हैं

3.4.2 यजुर्वेदसंहिता में सम्वत्सर

जहाँ ऋग्वेद में हमें संवत्सरादि के केवल नामों का ही उल्लेख मिलता है वहीं इन सम्वसरों का विस्तृत वर्णन हमें ऋग्वेद के उपरान्त यजुर्वेद में प्राप्त होता है। यहाँ हमें पाँचों सम्वत्सरों का नाम प्राप्त होता है।[3]

तैत्तिरीय संहिता	**वाजसनेयी संहिता**	**काठक संहिता**	**मैत्रायणी संहिता**	**तैत्तिरीय अरण्यक**
			शतपथ ब्राह्मण	**तैत्तिरीय ब्राह्मण**
सम्वत्सर	सम्वत्सर	सम्वत्सर	सम्वत्सर	सम्वत्सर
परिवत्सर	परिवत्सर	परिवत्सर	परिवत्सर	परिवत्सर
इदावत्सर	इदावत्सर	इदावत्सर	इदावत्सर	इदावत्सर
इदुवत्सर	इद्ववत्सर	अनुवत्सर	उद्वत्सर	इदुवत्सर
वत्सर	वत्सर	उद्वत्सर	वत्सर	इद्ववत्सर
				वत्सर

1 किन् स ऋधकृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः। ऋ० सं० 4.18.4

2 परिवत्सरः। ऋग्वेद संहिता, 10.62.2

3 संवत्सराय पर्यायणी परिवत्सराया विजाता मिदावत्सराया...इद्वत्सराया..वत्सरायः। वाज० सं० 30.15.27-45

इन पाचों सम्वत्सरों में किसी - किसी नाम में पाठ भेद भी उपलब्ध होता है। जैसे इदावात्सर-इडावत्सर, इद्वत्सर-इदुवत्सर, वत्सर-उद्वत्सर इत्यादि। सम्वत्सरों का विभाजन और उनमें किए जाने वाले कर्मों का विस्तृत उल्लेख तैत्तिरीय संहिता, शतपथ ब्राह्मण, काठक, मैत्रायणी, वाजसनेयी आदि यजुर्वेदीय संहिताओं में प्राप्त होता है।[1] सर्वप्रथम हमें सम्वत्सरों का जो वर्गीकरण मिलता है वह देवताओं के आधार पर मिलता है। यह वर्गीकरण हमें यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है। और यहाँ पाँचों सम्वत्सरों के अधिष्ठात्री देवों के नामों का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[2]

सम्वत्सर	-	**देवता**
1. सम्वत्सर	-	अग्नि
2. परिवत्सर	-	आदित्य
3. इदावत्सर	-	चन्द्रमा
4. अनुवत्सर	-	वायु

3.4.3 सामवेद संहिता में सम्वत्सर

वहीं अगर हम सामवेद की बात करें तो वह भी ज्योतिषीय तत्त्वों से अछूता नहीं रहा है। यहाँ भी हम देखेंगे कि जो ज्योतिषीय कालगणना की सम्वत्सर रूपी इकाई है उसका वर्णन हमें सामवेद में अलग-अलग स्थानों पर प्राप्त होता है। सामवेद के पञ्चविंशब्राह्मण में और षड्विंशब्राह्मण में **"चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः"** इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[3]

---

1 तैत्तिरीय संहिता। 3.10.4.1
तैत्तिरीय ब्राह्मण। वहीं, 7.4.18
शतपथ ब्राह्मण। वहीं, 8.1.4.8
काठक संहिता। वहीं, 13.15.17
मैत्रायणी संहिता। वहीं, 4.9.18
वाजसनेयी संहिता। वहीं, 27.4.5

2 (1) अग्निर्वा संवत्सरः। (2) आदित्यः परिवत्सरः। (3) चन्द्रमा इदावत्सरः।
(4) वायुरनुवत्सरः। तै० ब्रा० 1.4.10.1

3 पञ्चविश ब्राह्मण, 6.3.4
षड्विंश ब्राम्हण, 3.4.20 - 21

सामवेद के प्रचलित ब्राह्मण ग्रन्थ जैमिनीयब्राह्मण में भी **"चतुर्विंशत्यर्धमासास संवत्सरः"** उल्लेख प्राप्त होता है।[1] वहीं परिवत्सर, इदावत्स मिलते है।[2]

3.4.4 अथर्ववेद संहिता में सम्वत्सर

अथर्ववेद के मन्त्र में योग के विषय में कहा गया है कि - "हम तुझे एक सौ, दस हजार वर्ष, दो तीन अथवा चार युग प्रदान करते हैं।[3] यहाँ मन्त्र में हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि युग की अवधि दस हजार वर्ष से अधिकतम है। अवश्य ही अथर्व काल में युग का आकलन हजारों वर्षों में भी किया जाता रहा होगा। क्योंकि यहाँ युगों की गणना आरोह क्रम में बताया गया है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि जो सम्वत्सर हमें वेदों में मूलरूप में तथा काल के अंगों के रूप में प्राप्त होते हैं,

3.4.5 वेदाङ्ग ज्योतिष में सम्वत्सर

वेदाङ्ग ज्योतिष में उन सभी सम्वत्सरों को एकत्र कर वेदाङ्गज्योतिष में पञ्चसंवत्सरात्मक युग की कल्पना कर तथा उनका विधान करके कालगणना का आधार बनाया गया है। और यहाँ संवत्सरात्मक युगों के अध्यक्ष रूप में प्रजापति को स्वीकार किया गया है।[4] वेदाङ्ग ज्योतिष में 5 सम्वत्सरों (पाँच वर्षों) का एक युग माना गया है और इस एक पञ्च संवत्सरात्मक युग में 1830 दिन होते हैं, 62 चान्द्रमास होते हैं। याजुष ज्योतिष के एक पद्य में युग के विषय में कहा कि एक युग में 61 सावन मास, 62 चन्द्रमा तथा 67 नक्षत्र मास होते हैं। इसलिए एक सावन मास में 30 दिन होते हैं तथा एक सौर मास में साढ़े 30 दिन होते हैं। इसके अलावा कई पद्य ऐसे हैं जिनमें कहा गया है कि ढाई वर्ष बाद एक अधिक मास आता है।[5] यही कथन हमें महाभारत के विराट पर्व में भी प्राप्त होता है वहाँ भी कहा गया है कि 5 सम्वत्सर के मध्य दो अधिमास

---

1 जैमिनीय ब्राह्मण, 24.3.1.76

2 अथर्ववेद। 6.55.2

3 शतं तेयुत हायनाब्द्धे युगे त्रीणि चत्वारि कूण्म। अथर्व० 8.2.21

4 पञ्चसम्वत्सरमयम युगाध्यक्षं प्रजापतिम्। वेदाङ्ग ज्योतिष, 1

5 सावानेंदुस्तृमासानां षष्टिःसैकद्विसप्तिका।
द्वित्रिंशत् सावनस्यार्धः सूर्यस्तृणां विपर्ययः। याजुष, वेदाङ्ग ज्योतिष, 31

आते हैं।[1] वही याजुष् ज्योतिष के एक अन्य पद्य में एक पूरे वर्ष अर्थात सम्वत्सर के विषय में कहा गया है कि एक सम्वत्सर में 366 दिन, पाँच ऋतुयें, दो अयन तथा 12 सौरमास होते हैं और इन्हीं का पञ्च गुणित करने पर एक युग का निर्माण होता है।[2] वहीं सोमाकर तथा सुधाकर पञ्च गुणित युग की मीमांसा करते हैं।[3] इसी वर्ष रूपी सम्वत्सर का वर्णन हमें पूर्व में ही ऋग्वेद के एक मन्त्र में प्राप्त होता है वहाँ कहा गया है कि 12 मास सम्वत्सर रूपी चक्र के 12 अरे हैं और 360 दिवस सम्वत्सर रूपी चक्र के 360 कांटे हैं। यहाँ सम्वत्सर रूपी चक्र के दिन और रात को एक मिथुन कहा गया है। इस प्रकार यहाँ 360 दिन और 360 रात्रि को मिलाकर सब 720 हो जाते हैं।[4] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि युग अथवा सम्वत्सर का जो मान वेदाङ्गादि ज्योतिष ग्रन्थों में वर्णित है वही हमें ऋग यजु तथा अथर्व संहिताओं में मूलरूप में प्राप्त होता है। पञ्चसम्वत्सरात्मक युग का आरम्भ माघ शुक्ल प्रतिपदा से और उसकी समाप्ति पौषकृष्ण अमावस्या में कही गयी है।[5] इस क्रम से जब पाँच बार 5 वर्ष पूर्ण हो जाते थे या 5 वर्षों की समाप्ति होती थी उसके उपरान्त पुनः नए युग और नए वर्ष की गणना का वही क्रम आरम्भ हो जाता था। हमेशा मनुष्य अपनी सहजता - सरलता के लिए कालमान की इकाइयों का आकलन करते हुए आया है जिससे कि मनुष्य अपने कार्यों को अपने कर्मों को कुछ समय के अन्तराल पूरा कर सके एक निश्चित कालावधि में अपना कार्य पूर्ण कर सके। इसलिए मनुष्य हमेशा प्रयत्न

---

1 तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषांच व्यतिक्रमात्।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः। महाभारत, विराट पर्व, अध्याय 52

2 त्रिशत्यहां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चतंवोऽयने।
नासा द्वादश सूर्याः स्युरेतत् पञ्चगुण युगम्। याजुष, वे० ज्यो० 28

3 सोमाकर - एवमेतत् पूर्णमासस्य दर्शस्य चन्द्रसूर्यसम्बन्धेन पर्वसञ्चोदनया यागकालं प्रतिपाद्यावयवानां संख्या तेन कालनिष्पत्तिप्रतिपत्त्यर्थमाह त्रिशत्यहां सषट्षष्टिरब्द : इति।....एतत् पञ्चगुणं युगम्।
यदिह युगाध्यक्षमित्यादौ युगमधिकृतं तस्यैषा प्रतीतिर्न कृतादीनाम्। एते तु द्वादश पूर्वमेवेह कृतास्तत्प्राधान्येन शास्त्रप्रवृत्तिः। तस्य दिनानि। याजुष, वे० ज्यो० 28
सुधाकर - इदानीं युगे सावनदिनाद्याह त्रिशतीति। सषट्षष्टिः षट्षष्टिसहिता अह्नां रविसावनदिनानां त्रिशती अब्द : सौराब्दो भवति। तस्मिन् सौराब्दे ऋतवः षट्। अयने द्वे अयने। सौरा मासाश्च द्वादश भवन्ति।
अत्रोपपत्तिः। अत्र वेधेन सौरवर्षे स्थूलाः ३६६ सावनदिवसा आनीताः। ते पञ्चगुणा युगे सावनदिवसाः = १८३०। शेषोपपत्ति स्फुटा। वहीं, याजुष, वे० ज्यो०, 28

4 "द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्र परिधामृतस्य।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।" ऋ० संहिता 1.164.11
"द्वादश प्रधयश्चक्रमेक त्रीणि नभ्यानि क 3 तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिंशता न शंकवोऽर्पिता : षष्टिर्न चलाचलासः।" वहीं, ऋ० संहिता 1.164.4

5 माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्ण समापिनः।
युगस्य पञ्चवर्षस्य कालज्ञानं प्रचक्षते। वेदाङ्ग ज्योतिष, या० ज्यो० 5, ऋ० ज्यो० 32

करता रहा। "युग" से हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि यह युग मानव कालमान की लम्बाई इकाई होती है। जिसे कि मनुष्य कुछ वर्षों के समूह को एकत्र करके युग की परिकल्पना करता है। अथवा उसे एक युग नाम दे देता है। शायद इसी वजह से वेदाङ्ग ज्योतिष का जो समय है उस काल में युग का परिमाण 5 वर्षों का हुआ होगा। धीरे-धीरे परवर्ती काल में युग का मान बहुत बड़ा हो गया।

3.4.6 तुलनात्मक विश्लेषण

युग कालमान की एक ऐसी इकाई है जो सूक्ष्म और दीर्घ दोनों के लिए कही जा सकती है वेदों में हमें युग के लिए देवयुग, पितृयुग, मानुषयुग आदि का उल्लेख मिलता है। वहीं दिवस रात्रि के योग के लिए भी युग कहा गया है, कहीं पाँच, दश तथा सौ वर्षों की अवधि के लिए भी युग कहा गया है वहीं ऋग्वेद में प्रयुक्त "त्रियुगम्" शब्द को सायणाचार्य ने अपने भाष्य में कृत, त्रेता तथा द्वापर इन तीन युगों के रूप में ग्रहण किया है साथ ही साथ वसन्त, वर्षा और शरद इन तीनों ऋतुओं के रूप में भी तीनों युगों का अर्थ ग्रहण किया है।[1] वहीं अगर हम यजुर्वेद में देखें तो वहाँ भी ऋग्वेद के समान ही "पितरों के साथ साथ कृत, त्रेता तथा द्वापर हमारा रक्षण करें।[2] कृतादि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है वहीं अथर्ववेद में युगारम्भ जिस मास में, जिस पक्ष में तथा जिस तिथि को होता है उनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।[3] वहीं दूसरी तरफ ऋग याजुष अथर्व ज्योतिष में पञ्चसंवत्सरात्मक युग पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है जो पहले से ही मूल ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्व में उल्लिखित हैं इन्ही को बाद में महर्षि लगध द्वारा कालगणना का आधार बनाया गया जहाँ मूल ऋग में केवल सम्वत्सरों का नामोल्लेख मिलता है वहीं मूल याजुष ज्योतिष में देवताओं के आधार पर उन्ही पञ्च सम्वत्सरों का उल्लेख मिलता है इस प्रकार से तीनो ऋग याजुष अथर्व ज्योतिष में युगादि सम्वत्सरों का समान रूप से उल्लेख मिलता है जो एकदूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं

1 दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० 34

2 प्राचीदिशां वसन्त..कृतमयानां..त्रेतायानां..द्वापरोयोनां..अभिभूरयानां पितरः। तै० सं० 4.3.3

3 अथर्ववेदीय ज्योतिषम्। भ्रमभञ्जनी हिन्दी टीकोपेतम्, पृ० 35

3.5 वैदिक साहित्य में अयन विचार

3.5.1 अयन शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

वर्ष के पश्चात काल परिमाण का अगला बिन्दु अयन आता है। "अयन" शब्द अय् - गतौ या अय् सञ्चचलने धातु से बना है। इसका अर्थ अयति, गच्छति आदि है "अयन" शब्द चलने के अर्थ में प्रयोग होता है इसीलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय पदार्थ नक्षत्रादि ताराग्रह एवं उल्का आदि पिण्ड ये सभी गमनशील हैं। ये सभी निरन्तर चलायमान हैं। इसीलिए इनके आवागमन के मार्ग को ज्योतिष ग्रन्थों में अयन शब्द का प्रयोग किया गया है। वेदाङ्ग लक्षण में ही ज्योतिषियों एवं विद्वानों ने अयन शब्द का प्रयोग किया है जैसे **"ज्योतिषां अयनं चक्षुः"** यहाँ भी अयन शब्द का प्रयोग सूर्यादि ग्रहों के भ्रमण मार्ग के लिए किया गया है।[1]

सूर्य के विषुवत रेखा से उत्तर तथा दक्षिण दिशा में गमन करने की क्रिया के लिए कोष ग्रन्थों में "अयन" शब्द का प्रयोग किया गया है।[2]

3.5.2 सूर्य उत्तरायण एवं दक्षिणायन

वेदाङ्ग में कहा गया है कि षड ऋतुओं के दो अयन होते हैं।[3] वहीं कौटिल्य ने दो अयनों का सम्वत्सर है[4], अयन के सन्दर्भ में हमें सुश्रुत संहिता[5], विष्णुपुराण[6], ब्रह्माण्ड[7], मत्स्य[8], वायु[9], स्कन्द[10], शिवादि[11] सभी पुराणों तथा महाभारत[12] में अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। शंकर बालकृष्ण दीक्षित भी "अयन" के प्रसङ्ग में तत्कालीन अवधारणा को समझते हुए कहते हैं कि - सूर्य जब तक विषुवत

---

1 पाणिनीय शिक्षा - 42

2 सूर्यस्य उत्तरदक्षिणादिगमनमं। राधाकान्तदेव, शब्दकल्पद्रुम, दिल्ली, 1961, प्रथम काण्ड पृ० 91
वहीं - ईश्वरचन्द्र, पारिजात कोश, दिल्ली, 2004, पृ० 89

3 अब्दः षट् चर्तवोयने। वे० ज्यो० 28

4 द्वयनः संवत्सरः। कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2, 20

5 अयने द्वे युगपत् संवत्सरः। सुश्रुत संहिता, 1.6.9

6 वर्षं द्वेयने दक्षिणोत्तरे। विष्णु पुराण, 1.3.10

7 दिव्ये रात्र्यहनी वर्षम्। ब्रह्मांड पुराण पूर्वभाग, 29.13

8 मत्स्य पुराण। वहीं, 142.10

9 वायुपुराण। 1.57.13

10 द्वेयने वर्षम्। स्कन्द पुराण, 1.8.6

11 वर्षं द्वे चायने मतम्। शिव पुराण, 7.1.8.7

12 संवत्सरं द्वे त्वयने वदन्ति। महाभारत, शान्तिपर्व, 131.14

रेखा के उत्तर में रहता है तब तक उत्तरायण होता है और जब तक दक्षिण में रहता है तब तक दक्षिणायन माना जाता है।[1] सूर्य पर आधारित सौर वर्ष 360 दिनों का होता है। इसके पश्चात हमें कालमान ज्ञात करने के लिए हमें हमें अयन के विषय में ज्ञात होना जरूरी है। क्योंकि "अयन" वर्ष को दो भागों में विभक्त करता है। एक उत्तरायण कहलाता है तथा दूसरा दक्षिणायन। अयन के दोनों ही भाग 6 - 6 महीने के होते है। सूर्य जब तीन ऋतु में दक्षिण की ओर होता है तो वह दक्षिणायन कहलाता है। और जब सूर्य 3 ऋतुओं में उत्तर की ओर होता है तो वह उत्तरायण कहा जाता है।[2] अयन शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में कई स्थानों पर हुआ है परन्तु वहाँ कहीं भी निश्चित रूप रूप से यह नहीं कहा गया है कि यह सूर्य के दक्षिणायन या उत्तरायण का द्योतक है परन्तु जब वही यजुर्वेद की बात करते हैं तो वहाँ वैदिक यज्ञों में होने वाले अनेक मन्त्रों के द्वारा यह प्रतीत होता है कि यह अवश्य ही सूर्य के भ्रमण मार्ग की दिशा व गति को बताता है। वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थों में उत्तरायण का आरम्भ वसन्त ऋतु से कहा जाता था परन्तु परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में शिशिर ऋतु से उत्तरायण का आरम्भ माना जाता है।[3] तैत्तिरीय तथा शांखायन के एक मन्त्र में सूर्य को 6 मास दक्षिण चलने वाला तथा 6 मास उत्तर चलने वाला बताया गया है।[4] वही शतपथ में कहा गया है कि शिशिर ऋतु से ग्रीष्म ऋतु पर्यन्त उत्तरायण और वर्षा ऋतु से हेमन्त ऋतु पर्यन्त दक्षिणायन होता है।[5] इसी कथन की पुष्टि महाभारत के शान्तिपर्व तथा स्कन्ध पुराण में भी देखा जा सकता है।[6]

---

1 दीक्षित शंकर बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, लखनऊ, पृ० 47

2 पन्थाः सुर्यदस्य उत्तरदक्षिणादिगमनं। शब्दकल्पद्रुम, देव राधाकान्त, प्रथम भाग पृ० 91

3 क्रमाच्छिशिरवासंतग्रीष्माः स्युश्चोत्तरायणे।
वर्षा शरच्च हेमन्त ऋतवो दक्षिणायने।। ना०.सं.3.80
शिशिरपूर्वमृतुत्रयमुत्तरं ह्ययनमाहुरहश्च .....मरुतां च सा।
वहीं - मानसागरी, प्रथम अध्याय, अयन - कथन - 2

4 तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण। तै० सं० - 6.5.3.4
अहोरात्राणि विदधदूर्णावा इव धीर्यः। षण् मासो दक्षिणा नित्यः षडुदङ्डेति सूर्य इति,
षड्ढ्येव उदङ् मासानेति षड् दक्षिणा। वहीं, शाङ्खायनीयब्राह्मण 19.3

5 वसन्तोग्रीष्मोवर्षाः ते देवा ऋतवः शरद हेमंतः शिशिरस्ते पितरो..स (सूर्य) यत्रोदगावर्तते।
देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणा वर्तते पितृषु तर्हि भवति।। श० ब्रा० - 2.1.3
यान् षण् मासानुदङ्ङादित्य एति। वहीं, 14.9.1.18
यान् षण् मासान् दक्षिणादित्य एति। वही, 14.9.1.19

6 अयनं तस्य षण्मासानुत्तरं दक्षिणं तथा।
येन संयाति लोकेषु शीतोष्णे विसृजन् रविः ॥ महाभारत शान्तिपर्व 225/36।
शीतातपौ तथा वृष्टिः सौरमानेन जायते।
वृक्षाणां फलनिष्पत्तिः सस्यानां च तथा परा ॥ वहीं, स्कन्दपुराण, नागरखण्ड 273/ 11-12

वही शतपथ के अन्य मन्त्र में कहा गया है कि जब सूर्य उत्तर की ओर अर्थात उत्तरायण में होता है तो सूर्य देवों की रक्षा करते हैं और जब सूर्य दक्षिण में होता है अर्थात दक्षिणायन होता है तब सूर्य पितरों की रक्षा करता है।[1] यही वर्णन हमें महाभारत पुराण सूत्रादि ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं।[2] यद्यपि अयन शब्द का अर्थ जाना अथवा चलना है तथापि शतपथ आदि ग्रन्थों में अयन शब्द के अन्य अर्थ भी प्रस्तुत किए गए हैं जैसे - पश्वयन, स्तोमायन[3], सत्रायण आदि (यहाँ सत्रायण में "सत्र का प्रयोग बैठने के लिए जाना " किया है।[4] इससे यह प्रतीत होता है कि मुख्य रूप से अयन का अर्थ जाना एवं है परन्तु शतपथ आदि यजुर्वेदीय ग्रन्थों की यज्ञ प्रधान शैली होने के कारण या यागिक क्रियाओं में अयन शब्दका प्रयोग किया जाता रहा है। ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थ वेदाङ्ग आर्चज्योतिष में भी अयन के विषय में स्पष्टरूप में वर्णन मिलता है। यहाँ कहा गया है कि श्रविष्ठा के आरम्भ में सूर्य और चन्द्रमा उत्तर की ओर मुड़ते हैं और आश्लेषा के आधे पर दक्षिण की ओर मुड़ते हैं।[5] इसी बात को मैत्रायणी[6] तथा बोधायनश्रौतसूत्र[7] में भी कहा गया है। सूर्य हमेशा माघ और श्रावण मास में क्रमशः उत्तर और दक्षिण की ओर मुड़ता है। इसी बात को आचार्य सोमाकर ने अपने भाष्य में स्पष्ट किया है और वह कहते हैं कि सभी युगों में सूर्य माघ और श्रावण मास में उत्तरायण और दक्षिणायन होता है इसी प्रकार से पाँचों सम्वत्सरों में भी यह समझना चाहिए।[8] यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ मास में सूर्य उत्तरायण होता है और श्रावण मास के आने पर सूर्य दक्षिणायन हो जाता है।

---

1 स (सूर्य) यत्रोदङ्ङावर्तते देवेषु तर्हि भवति देवाँस् तहभिगोपायत्यथ
यत्र दक्षिणा भवर्तते पितृषु तर्हि भवति पितृस् तमुभिगोपायति। श० ब्रा० 2.1.3.3

2 महाभारत, 12.231.17
यदुत्तरायणं तदहः देवानाम। विष्णुधर्मसूत्र, 20.1

3 श० ब्रा०, 4.6.3.1
श० ब्रा०, वहीं - 4.6.3.3

4 या ह दीक्षा सा निषत् तत्सत्रं तदयनं तत्सत्रायणम...। श० ब्रा० 4.6.8.2

5 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सुर्याचान्द्रमसावुदक।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावणयोः सदा। वेदाङ्ग ज्योतिष, ऋग, 6
वेदाङ्ग ज्योतिष, याजुष, वहीं - 7

6 मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयम। मैत्रायणी आरण्यक, 6, 14

7 माघमासे धनिष्ठा भिरुत्तरेणैति भानुमान्। बौधायणश्रौतसूत्र, 16.29

8 प्रपद्येते श्रविष्ठादाविति। सर्वेषु युगेषु सूर्याचन्द्रमसावुदक् प्रवृत्तिं प्रपद्येते।
श्रविष्ठादौ प्रथमेंऽशे। तथा सार्धे श्लेषामध्ये ग्रीष्मान्ते सूर्यः दक्षिणां प्रपद्यते।
एवं तस्यायने माघश्रावणयोः सर्वकालं पञ्चस्व सवत्सरेषु इति। या० ज्यो०, सोमाकरभाष्य, 7

सूर्य उत्तरायण को देवस्थान माना गया है तथा जब सूर्य दक्षिणायन होता है तब पितृ स्थान या असुर स्थान माना गया है। उत्तरायण को देवताओं का दिन माना जाता है और दक्षिणायन को पितरों का दिन माना गया है। वही दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि मानी गई है और उत्तरायण को पितरों की रात्रि मानी जाती है। ऋतु में भी वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा यह देवताओं की ऋतु मानी गई है इन छः माह उत्तर में और शरद, हेमन्त तथा शिशिर यह पितरों या फिर असुरों की ऋतु में मानी गई है इनमें छः माह सूर्य दक्षिण में होता है।[1] शतपथ में भी वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतुएँ देवतुल्य मानी गयी है तथा शरद हेमन्त शिशिर ऋतुएँ पितृ तुल्य कही गयी हैं।[2] वहीं शतपथ के अन्य मन्त्र में कहा गया है की जब सूर्य उत्तरायण होता है तब वह देवों की रक्षा करता है और जब सूर्य दक्षिण में होता है तब वह पित्रों की रक्षा करता है।[3] तैत्तिरीय की एक ऋचा में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि (सूर्य) आदित्य छः मास उत्तर की ओर जाता है और छः मास दक्षिण की ओर।[4] इन्ही कथनों को बालकृष्ण दीक्षित भी कहते हैं कि- सूर्य विषुवृत के चाहे जिस ओर हो, उत्तरायण में सूर्य प्रतिदिन क्रमशः उत्तर की ओर, और दक्षिणायण में दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। कुछ ग्रंथाकारों ने उत्तर गोलार्ध में शिशिर ऋतु के आरम्भ से ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक, और कुछ विद्वानों ने हेमन्त ऋतु के मध्य से ग्रीष्म ऋतु के मध्य पर्यन्त उदयन माना है। साथ ही दीक्षित यह भी कहते हैं कि सायन मकरारम्भ से सायन कर्कारम्भ पर्यन्त सूर्य उत्तरायण तथा सायन कर्कारम्भ से मकरारम्भ पर्यन्त सूर्य दक्षिणायन होता है।[5] वहीं वेदाङ्ग में अयन के विषय में सूर्य और चन्द्रमा से विचार किया गया है और कहते हैं कि - जब सूर्य और चन्द्रमा एक साथ श्रविष्ठा (धनिष्ठा) नक्षत्र के आदि में होते हैं उस समय वे उत्तर की और मुड़ते हैं। और जब दोनों आश्लेषा नक्षत्र के आधे में होते हैं तब दोनों दक्षिण की ओर मुड़ जाते हैं। और विशेष रूप से सूर्य को कहा गया है कि सूर्य माघ और श्रवण मासों में सदा क्रमिक रूप से उत्तर व दक्षिण की ओर मुड़ता है।[6] वहीं

---

1 माघादि षड्मासःउत्तरायणां श्रवणादिशादमासः दक्षिणायनं। वहीं, शब्दकल्पद्रुम, प्रथम, भाग पृ० 91

2 वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः | ते देवा ऋतवः शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरो | श० ब्रा० 2.1.3.1

3 स यत्रोदगावर्तते | देवेषु तर्हि भवति..दक्षिणा वर्तते पितृषुः | श० ब्रा० 2.1.3.3.

4 आदित्यः षड्मासो दक्षिणेनैति षडउत्तरेणो..| तै० सं० 6.5.3.4

5 दीक्षित बालकृष्ण, भारतीय ज्योतिष, उ० प्र० लखनऊ, पृ० 46

6 प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघ श्रावणयोः सदा। याजुष, वे० ज्यो०, 7
प्रपद्येते...मसावुदक। दक्षिणार्कस्य..माघश्रावणयोः सदा। वहीं, ऋ० ज्यो०, 6

अयन के विषय को सोमाकर तथा सुधाकर अपने भाष्य में अयन को स्पष्ट करते हैं।[1] वही अयन के आधार पर दिन और रात्रि का विचार करते हुए वेदाङ्ग में कहा गया है कि सूर्य के उत्तरायण में होने पर एक प्रस्थ जितनी दिन की वृद्धि होती है।[2] प्रस्थ काल परिमाण की एक इकाई का नाम है प्रस्थ का अर्थ सोमाकर ने अपने भाष्य में द्वात्रिंशस्त्पुलाकम किया है। उत्तरायण में जितने दिन की वृद्धि होती है रात्रि का उतना ही ह्रास होता है। इसी के ठीक विपरीत जब सूर्य दक्षिणायन में होता है तब रात्रि की वृद्धि होती है उस समय में दिवस का ह्रास होता है।[3] इस प्रकार से एक अयन से दूसरे अयन पर्यन्त छह मुहूर्त की वृद्धि होती है।[4] एक मुहूर्त दो घड़ी घड़ी का समय माना जाता है इस तरह छः मुहूर्त का समय 12 घड़ी का समय हो जाता है।[5] जब अयन का आरम्भ होता है उस समय जब चन्द्रमा तथा सूर्य जिन जिन नक्षत्रों में या जिस पक्ष तथा मास में रहते हैं उन सभी को हम यहाँ पर सारणी के माध्यम से जान सकते हैं।

---

1 सोमाकर - प्रपद्येते श्रविष्ठादाविति। सर्वेषु युगेषु सूर्याचन्द्रमसावुदक प्रवृत्ति प्रपद्यते।
श्रविष्ठादौ प्रथमेशे। तथा सार्पार्धे श्लेषामध्ये ग्रीष्मान्ते सूर्यो दक्षिणां प्रपद्यते।
एवं तस्यायने माघश्रावणयोः सर्वकालं पञ्चस्वपि संवत्सरेष्वित्यर्थः। एवं भूतस्य। वे० ज्यो०, सोमाकर भाष्य, 7
सुधाकर - इदानीमयने आह प्रपद्येते इति। सूर्याचन्द्रमसोः यदा अविष्ठादौ धनिष्ठादी सुधाकरः प्रपद्येते
तदोदक् उत्तरमयनम्। तथा तौ यदा सार्धे श्लेषार्धे तदा दक्षिणा दक्षिणमयनं भवति।
सदा सर्वदाऽर्कस्य सूर्यस्य माघश्रावणयोस्ते उदग्दक्षिणायने भवतः। वे० ज्यो०, सुधाकर भाष्य, 7

2 धर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
हत दक्षिणेतौ विपर्यासः ' षण्मुहूर्त्ययनेन तु। याजुष ज्यो० 8
धर्मवृद्धि...उद्गतौ।...विपर्यस्तौ षडमुहुर्त्ययनेन। ऋ० ज्यो० 7

3 सोमाकर: - धर्मवृद्धिरपा प्रस्थ इति। तस्य सूर्यस्य उदग्गतौ निमित्ते धर्मवृद्धिर्भवतीति वाक्यशेषः।...तदा प्रति दिनानि वर्धन्ते राविश्चापक्षीयते। एवमेष तस्य दक्षिणेतौ विपर्यासः। दक्षिणायने दिनह्रासो राविधिश्चेत्युक्त भवति..। वे० ज्यो०, सोमाकर भाष्य, पृ० 150-151

4 एवअयने बृद्धिह्रासौ।...प्रस्थो द्वात्रिंशत्पुलाकमित्यर्थः। वहीं, वेदाङ्ग ज्योतिष, सोमाकर भाष्य, पृ० 151

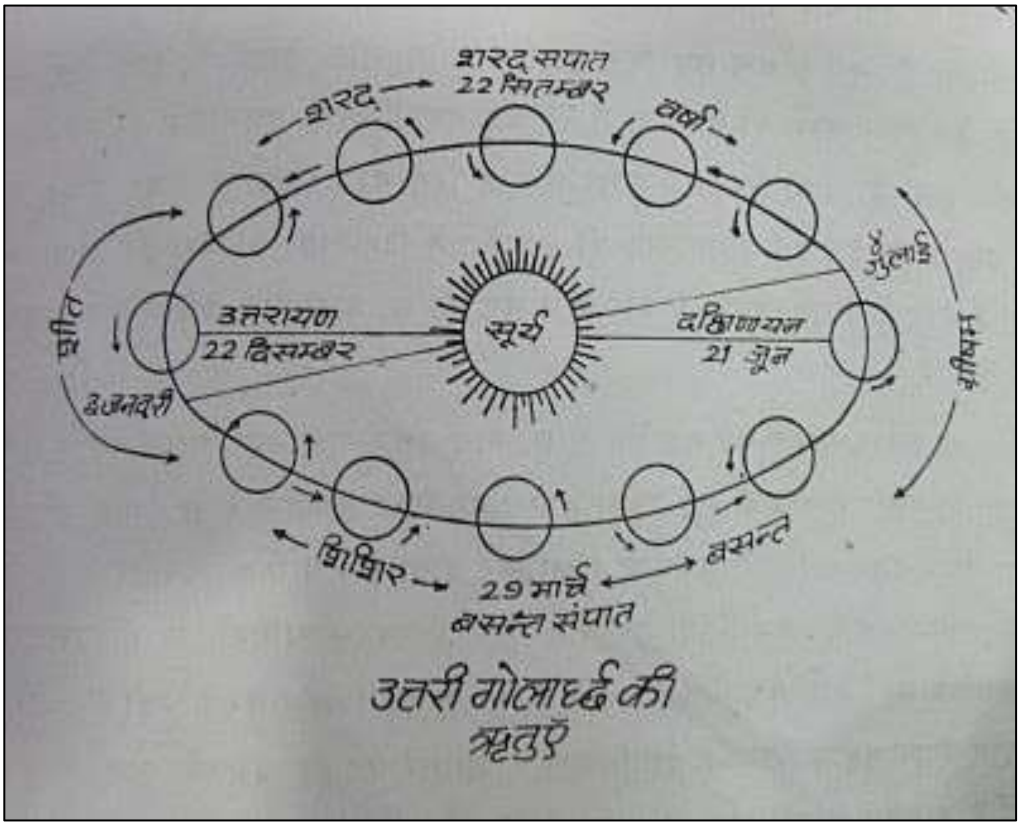
5 सुधाकरः इदानीमयनयोर्दिनरात्रिमाने आह धर्मवृद्धिरिति।..अयनेन तु एकस्मादयनाद् द्वितीयायनेन
दिनप्रचयः षण्मुहूर्ती। याजुष, वे० ज्यो०, सुधाकर भाष्य, पृ० 151

3.5.2.1 उत्तरायण का आरम्भ

सम्वत्सर	तिथि	सूर्य नक्षत्र	चन्द्र नक्षत्र
सम्वत्सर	माघ शुक्ल प्रतिपदा	धनिष्ठा	धनिष्ठा
परिवत्सर	माघ शुक्ल त्रयोदशी	धनिष्ठा	आर्द्रा
इदावत्सर	माघ कृष्ण दशमी	धनिष्ठा	अनुराधा
अनुवत्सर	माघ शुक्ल सप्तमी	धनिष्ठा	अश्विनी
इद्वत्सर	माघ कृष्ण चतुर्थी	धनिष्ठा	उत्तराफाल्गुनी

3.5.2.2 दक्षिणायन का आरम्भ

सम्वत्सर	तिथि	सूर्य नक्षत्र	चन्द्र नक्षत्र
सम्वत्सर	श्रावण शुक्ल सप्तमी	आश्लेषार्ध	चित्रा
परिवत्सर	श्रावण कृष्ण चतुर्थी	आश्लेषार्ध	पूर्वाभाद्रपद
इदावत्सर	श्रावण शुक्ल प्रतिपदा	आश्लेषार्ध	आश्लेषा
अनुवत्सर	श्रावण शुक्ल त्रयोदशी	आश्लेषार्ध	पूर्वाषाढा
इद्वत्सर	श्रावण कृष्ण दशमी	आश्लेषार्ध	रोहिणी



{ उत्तरायण – दक्षिणायन चक्र }

3.5.3 तुलनात्मक विश्लेषण

तीनों मूल संहिताओं तथा ऋग याजुष् अथर्व आदि ज्योतिष गन्थों में अयन का अर्थ गमनशील तथा चलना किया गया हैं सभी में यह कहा गया है की जब सूर्य उत्तर की और गमन करता है तब उत्तरायण होता हो तथा दक्षिण की और गमन करता है तब दक्षिणायन होता है वहीं उत्तरायण को देवताओं का दिन माना जाता है और दक्षिणायन को पितरों का दिन माना गया है। वही दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि मानी गई है और उत्तरायण को पितरों की रात्रि मानी जाती है। ऋतु में भी वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा यह देवताओं की ऋतु मानी गई है इन छः माह उत्तर में और शरद, हेमन्त तथा शिशिर यह पितरों या फिर असुरों की ऋतु में मानी गई है इनमें छः माह सूर्य दक्षिण में होता है। इस प्रकार तीनों वैदिक ज्योतिष ग्रन्थों का मत अयन के विषय में समान है।

3.6 वैदिक साहित्य में ऋतु

काल गणना के क्रम से देखें तो अयन के पश्चात् ऋतुओं का विभाजन किया जाता है क्योंकि अभी हमने देखा दो अयन होते हैं जो छः छः मास के होते हैं और जब हम एक अयन का विभाजन करते हैं तब वह तीन ऋतुओं में विभाजित हो जाता है इस प्रकार दोनों अयनों में छः ऋतुओं का विभाजन हो जाता है इसलिए अयन विभाजन से पूर्व की कालमान की इकाई ऋतुओं को जानना आवश्यक है। ऋतु शब्द में "ऋ" धातु गत्यर्थक है। इसलिए ऋतु का अर्थ "सदागमनशील" अर्थात निरन्तर गतिशील होने वाले काल के परिमाण को ऋतु कहते हैं।[1] वैदिक संहिताओं में ऋतु का प्रयोग काल के अर्थ में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।[2] वहीं ऋग्वेद में ऋतु कहीं एकवचन में तथा कहीं बहुवचन में वर्णित हैं। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ऋतु एक नहीं अनेक हैं।[3] वहीं शब्दकल्पद्रुम आदि ग्रन्थों में हम मासों के आधार पर भी ऋतुओं की व्युत्पत्ति देखते हैं।[4] वहीं अन्य कोश-ग्रन्थों में भी ऋतु शब्द "ऋ" धातु तु, कित, प्रत्यय जुड़ने से ऋतु शब्द निष्पन्न हुआ है।[5] ऋतु शब्द एक कालविशेष के अर्थ में ग्रहण किया गया है।[6] और इसे कालखण्ड के रूप में भी बताया गया है।[7] मैत्रेयी देशपांडे भी ऋतु शब्द का गमनशील तथा एक निश्चित काल स्थिति के अर्थ में ही ग्रहण करते हैं।[8]

---

1 'ऋ" गतावित्यस्माधातोः निष्पन्नः। कालमाधव, द्वि० प्रकरण, पृ० 285

2 यजुर्वेद, तै० ब्रा०, 2.4.8.3
तैत्तिरीय ब्रह्मण, वहीं 3.6.2.2

3 "ऋतुभिः" "ऋतुथाः" ऋतुना। वहीं, तै० ब्रा०, 2.4.8.3

4 " ऋतुः। पु० (ऋ + " अर्ते श्च तुः "। इति उणादिसूत्रेण 1 / 72 / तुः चकारात् कित् च।) कालविशेषः।
स तु षड्विधः यथा। 1.मार्गपौषौ हिमः। 2.माघ फाल्गुनौ शिशिरः। 3.चैत्रवैशाखो वसन्तः। 4.ज्येष्ठाषाढ़ौ ग्रीष्मः।
5.श्रावण भाद्रौ वर्षा :। 6.आश्विनकार्तिको शरत्। इत्यमरः।
शब्दकल्पद्रुमः, राजा राधाकान्त देव, प्रथम भाग, पृ० 285-286
स त्रिविधोऽपि। 1.कार्तिकाग्रहायणषौषमाघाः शीतः। 2.फाल्गुनचैत्रवैशाखज्येष्ठाः ग्रीष्मः।
3.आषाढ़ श्रावणभाद्राश्विनाः वर्षाः। वहीं - दयानन्द निरुक्ति - व्युत्पत्ति कोष, डॉ० रूप किशोर शास्त्री, पृ० 55

5 आप्टे शिवराम, संस्कृत - हिन्दी कोश, वाराणसी, पृ० 223

6 देव राधाकान्त, शब्दकल्पद्रुम, प्रथम काण्ड, पृ० 285

7 चन्द्र ईश्वर, पारिजात कोश, पृ० 188

8 "any settled point time, fixed time, time appointed for any action (esp.for scarifices and other regular worship), right or fit time..period (esp.a division or part of the year).", Monier Williams, A Sanskrit- English Dictionary, Delhi, 2004, p.224

3.6.1 ऋग्वेद संहिता में ऋतुएँ

ऋग्वेद में हमें ऋतुओं में वसन्त, ग्रीष्म, प्रावृष, शरद तथा हेमन्त के नामों का उल्लेख अनेक ऋचाओं में प्राप्त होता है।[1] वहीं अन्य मन्त्र में **"त्रिनाभि चक्रम अजरम"** यहाँ मन्त्र में वर्णित त्रिनाभि शब्द का अर्थ वैदिक व्याख्याताओं ने वसन्त ग्रीष्म तथा वर्षा इन तीन ऋतुओं के रूप में ग्रहण किया है।[2] ऋग्वेद में में सूर्य को सभी ऋतु का कारण माना गया है। वहाँ कहा गया है कि सूर्य ऋतु का नियमन करके क्रमशः पृथ्वी की पूर्वादि दिशाओं का निर्माण करता है।[3] वहीं एक अन्य मन्त्र में चन्द्रमा के द्वारा ऋतु का निर्धारण होता है। जिसमें कहा गया है कि "सूर्य और चन्द्रमा रूपी दोनों बालक अपनी शक्ति से (अन्तरिक्ष में) पूर्व से पश्चिम की ओर घूमते हैं और क्रीडा करते हुए इनमें से एक सूर्य सभी भुवनों को देखता है और दूसरा चन्द्रमा ऋतुओं को अपनी गति से बनाता हुआ शुक्ल पक्ष में नवीन प्रकट होता है।[4] यही कथन हमें यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है।[5] इससे यह स्पष्ट होता है कि जहाँ संहिताओं में ऋतु को सूर्य पर आधारित मानते थे वही ऋतुओं का आधार चन्द्रमा को भी मानते थे। वहीं ऋतुओं की रचना के विषय में ऋग्वेद के प्रसिद्ध दार्शनिक पुरुष सूक्त में कहा गया है, जब उस परमात्मा की इच्छा ज्ञानरूपी यज्ञ रचना करने की हुई तो इसके लिए विराट पुरुष के देह के अवयवों को ही हवि (यज्ञ सामग्री) बना दिया गया। जैसे वसन्त ऋतु की घृत रूप में, ग्रीष्म ऋतु की समिधा रूप में तथा शरद ऋतु की हवि के रुप में रचना की गई।[6] वही ऋग्वेदीय ऐतरेय में पञ्च ऋतुओं के विषय में कहा गया है।[7]

---

1 यत्पुरूषेण हविषा...वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धति ऋ० सं० 10.90.6
शतं जीव शरदो वर्धमानं शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्...। वहीं, ऋ० सं० 10.161.4

2 ...त्रिनाभि चक्रम् अजरम् अनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः। ऋ० सं० 1.164.2

3 पुर्वाम नुप्रदिषम पार्थिवानामृतून प्रशासद्विदधावनुष्ठु। ऋ० सं० 1.95.3

4 पूर्वा परं चरतो माययैतोऋतुः अन्यो विदध ज्जायसे नवः। ऋ० सं० 10.85.18

5 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2.7.12.2,
अथर्ववेद, वहीं - 7.81.1

6 यत्पुरुषेण हविषा देवा वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्मइध्मः शरद्धविः। ऋ० सं० 10.90.6

7 द्वादशमासाः पञ्चर्तवोहेमन्तशिशरयोर्समासेन। ऐ० ब्रा० 1.1

3.6.2 यजुर्वेद संहिता में ऋतुएँ

यजुर्वेद में ऋतु के विषय में ऋग्वेद से अधिक विशद वर्णन प्राप्त होता है। यजुर्वेदीय शतपथ में चन्द्रमा के लिए कहा गया है कि चन्द्रमा ऋतुओं के द्वारा सम्वत्सर को बांधता है अर्थात यहाँ चन्द्रमा को मिलाने वाला कहा गया है।[1] इसी प्रकार से तैत्तिरीय में भी चन्द्रमा को ऋतुओं का कारण माना गया है।[2] इस प्रकार से यहाँ चन्द्रमा को सभी ऋतु का आधार माना गया है चन्द्रमा के द्वारा सभी ऋतुएँ आपस में जुड़ी हुई हैं। कठ कपिष्ठल तथा काठक आदि संहिताओं के अनुसार ऋतुओं की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में यज्ञ आहूतियों से हुई थी। जिसमें पहली आहूति से वसन्त, दूसरी आहूति से ग्रीष्म, तीसरी से वर्षा, चौथी से वर्षा तथा पाँचवी आहूति से हेमन्त ऋतु उत्पन्न हुई।[3] यजुर्वेदीय शतपथ, वाजसनेयी, तैत्तिरीय, कठ, काठक एवं मैत्रायणी आदि संहिताओं में ऋतुओं की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "प्रजापति ने प्राण से वसन्त को बनाया[4] मन से ग्रीष्म को[5] चक्षु से वर्षा को[6] श्रोत से शरद को[1] तथा वाक् से हेमन्त को बनाया।[2]

---

1 चन्द्रमा आसंजनं चन्द्रमसि ह्ययं सम्वत्सर ऋतुभिरासक्तः...|| श० ब्रा० 6.7.1.19

2 चन्द्रमा वा अकामयत। अहोरात्रनर्धमासामासान्यासानृतुन्संवत्सरमाप्त्वा। तै० ब्रा० 3.1.6.1

3 तस्मिन्नजुहोत् तस्याआहुत्या वसन्तोऽजायत्। ग्रीष्मोऽजायत्। वर्षा अजायन्त शरदजायत हेमन्तोऽजायत.....तामाहुतिमप्सु प्रासिञ्चत् ततश्शिशिरमजायत। क० सं० 4.1.1, वहीं - का० सं० 6.2.3

4 वसन्तः प्राणायन। श० ब्रा० 8.1.1.5,
वहीं - वाज० सं० 13.54,
वहीं - तै० सं० 4.3.2,
वहीं - क० सं० 25.9,
वहीं - का० सं० 16.19,
वहीं - मै० सं० 2.7.19

5 ग्रीष्मो मनसः। श० ब्रा० 8.1.1.8,
वहीं - वाज० सं० 13.55,
वहीं - तै० सं० - 4.3.2,
वहीं - क० सं० - 25.9,
वहीं - का० सं० 16.19,
वहीं - मै० सं० 2.7.19

6 वर्षाश्चाक्षुष्य:। श० ब्रा० 8.1.2.2,
वहीं - वाज० सं० 13.56,
वहीं - तै० सं० - 4.3.2,
वहीं - क० सं० - 25.9,
वहीं - का० सं० 16.19,
वहीं - मै० सं० 2.7.19

बनाया।[2] यजुर्वेद के अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थों में तैत्तिरीय संहिता[3], मैत्रायणी संहिता[4], काठक संहिता[5], वाजसनेयी संहिता[6], शतपथ[7] आदि में कहीं पाँच कहीं छह ऋतु का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ सम्वत्सर के अंगों के रूप में वर्णन किया गया है। सम्वत्सर को एक पक्षी का रूप बताया गया है। और उसमें वसन्त ऋतु को सम्वत्सर का सिर कहा गया है। शरद ऋतु को उत्तर पक्ष कहा गया है। ग्रीष्म ऋतु को दक्षिण पक्ष का गया है। मध्य शरीर को हेमन्त ऋतु और वर्षा ऋतु को पुच्छ बताया है।[8]

---

1 शरच्छौत्री। श० ब्रा० 8.1.2.5,
वहीं - वाज० सं० 13.58,
वहीं - तै० सं० - 4.3.2,
वहीं - क० सं० - 25.9,
वहीं - का० सं० 16.19,
वहीं - मै० सं० 2.7.19

2 हेमन्तो वाच्यः। श० ब्रा० 8.1.2.8,
वहीं - वाज० सं० 13.58,
वहीं - तै० सं० - 4.3.2,
वहीं - क० सं० - 25.9,
वहीं - का० सं० 16.19,
वहीं - मै० सं० 2.7.19

3 तैत्तिरीय संहिता - 4.3.3
वहीं - 4.3.3

4 मैत्रायणी संहिता - 2.7.19
वहीं - 3.15.10
वहीं - 4.9.18

5 काठक संहिता - 16.19
वहीं - 22.4.8

6 वा० सं० 13.54 - 58

7 श० ब्रा० - 13.5.4.28
वहीं - 2.1.3.5
वहीं - 13.6.1.10
वहीं - 13.6.1.11

8 तस्य ते वसन्तः शिरः। ग्रीष्मो दक्षिणः पक्षः। वर्षा पुच्छं। शरदुत्तर पक्षः।
हेमन्तो मध्यम्। तै० ब्रा० 3.10.4.1



तैत्तिरीय में ऋतु के नाम के साथ साथ ऋतु का आरम्भ कौन सी ऋतु से होता है यह भी बताया गया है। और कहा गया है कि ऋतुओं में बसंत मुख्य है और यह सभी ऋतु का मुख है।[1] वहीं एक अन्य स्थान पर ऋतु के प्रारम्भ होने अथवा मुख के बारे में शंका जताई गई है, और कहा गया है। ऋतुपात्रों में दोनों ओर मुख होते हैं। कौन जानता है कि ऋतु का मुख कौन सा है।[2] अर्थ यह हुआ कि यह निश्चित नहीं किया जा सकता है कि ऋतु का आरम्भ एक विवक्षित ऋतु से ही हो। यह कथन भी उचित ही है, क्योंकि ऋतुएँ सूर्य की स्थिति पर अवलम्बित हैं। सौर मास की तिथियाँ अनिश्चित रहती हैं इसलिए भी निश्चित समय का बताना कठिन सा प्रतीत होता है। वहीं यजुर्वेदीय शतपथ में ऋतु के लिए कहा गया है कि ऋतुएँ सूर्य से ज्योति लेती हैं। सूर्य का तेज ही ऋतुओं का मुख्य कारण बताया गया है।[3] और वहीं दूसरे मन्त्र में यह कहा गया है कि सूर्य प्रत्येक ऋतु ऋतु में विद्यमान रहता है।[4] इस मन्त्र से जो ऋग्वेद में वर्णन प्राप्त होता है सूर्य ऋतु का आधार है सूर्य ऋतु का कारण कहा गया है इस मन्त्र यह बात और पुष्ट हो जाती है।

---

1 मुखंव वा एतद् ऋतुनां यद्वसंतः। तै० ब्रा० 1.1.2.6 - 7

2 उभयतो मुखमृतुपात्रं भवति को हि तद्वेद यद्रितूनां मुखम्। तै० सं० 6.5.3

3 एष ऋतुषु प्रतिष्ठितस्तपति। श० ब्रा० 4.2.5.9

4 आदित्येनामुत ऋतवः एषां ज्योतिर्य एष तपति। श० ब्रा० 12.2.2.1

3.6.3 अथर्वेद संहिता में ऋतुएँ

अथर्ववेद की बात की जाए तो अथर्ववेद में ऋतु के लिए एक पूरा सूक्त मिलता है।[1] और उसके अलावा अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर ऋतु का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर इन छह ऋतु के नाम तो मिलते हैं परन्तु इनके नाम क्रमिक रूप में नही मिलते हैं।[2] अथर्ववेद के भूमि सूक्त में प्रार्थना की गई है कि "हे विशाल मातृभूमि आप में जो ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुएँ वर्ष भर में प्रतिष्ठित की गई हैं उन उन ऋतुओं की दिन - रात सभी तरह से हमारे लिए सुखप्रद हों।[3] यहाँ दिशाओं के आधार पर भी ऋतु का विभाजन देखने को मिलता है। जैसे पूर्व दिशा से वसन्त ऋतु के 2 महीने संरक्षण कर्ता हों।[4] इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु[5], वर्षा ऋतु[6], शरद ऋतु[7], हेमन्त ऋतु[8] तथा शिशिर ऋतु[9] को सभी दिशाओं के संरक्षणकर्ता के रूप में माना गया है।

3.6.4 वेदाङ्ग ज्योतिष में ऋतुएँ

वेदाङ्ग ज्योतिष के एक पद्य में कहा गया है कि साढे 4 नक्षत्रों की एक ऋतु होती है। इसी प्रकार सूर्य 1 वर्ष में 27 नक्षत्रों को पूर्ण करता है। इस हिसाब से वर्ष में छह (सौर)ऋतुओं को सूर्य पूर्ण करता है। अर्थात 4:30 नक्षत्र की एक ऋतु होने से 27 नक्षत्रों में 4:30 का विभाजन करने से सूर्य छः ऋतुओं को पूर्ण करता है अर्थात जब सूर्य एक ऋतु को पूर्ण करता है तब सूर्य 4:30 नक्षत्रों को पूर्ण कर लेता है इसी प्रकार जब सूर्य 27 नक्षत्रों को पूर्ण कर लेता है तब वर्ष की शिशिरादि छः ऋतुएँ पूर्ण होती हैं। इसीलिए वहाँ कहा गया है कि जो एक सौर ऋतु होती है वह सौर ऋतु पुरे चार नक्षत्रों के और पञ्चम नक्षत्र के आधे भाग के भोग

---

1 अथर्ववेद, 14.4

2 ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः...व शरणे स्याम। अथर्व० सं० 6.55.2

3 ग्रीष्मस्ते भूमे ऋतवस्ते विहिता हायनीर होरात्रे पृथिवी नो दुहाताम। अथ० सं० 12.1.36

4 वासन्तावेनं मासौ प्राच्यादिशो गोपायतो...एवं वेद। अथ० सं० 15.4.3
अथ० सं०; वहीं - 15.4.1-2

5 वहीं - 15.4.5 - 6

6 वहीं - 15.4.7 - 9

7 वहीं - 15.4.10 - 12

8 वहीं - 15.4.13 - 15

9 वहीं - 15.4.16 - 18

के काल को कहा जाता है।[1] वही वेदाङ्ग ज्योतिष के अन्य पद्य में जोकि तैत्तिरीय आदि संहिता ग्रन्थों में युग का आरम्भ शिशिर ऋतु से माना जाता है।[2] उसी कथन का पुष्टि करते हुए वेदाङ्ग ज्योतिष में भी कहा गया है है कि पूर्व ऋतु का आरम्भ होने पर 1 मास व 1 दिन के अन्तर से अर्थात जो पूर्व वाली ऋतु और उत्तर वाली ऋतु है उनके मध्य एक मास एक तिथि का अन्तर होता है इसलिए एक मास व एक तिथि को छोड़कर उत्तर वाली ऋतु का आरम्भ होता है। इसमें प्रत्येक पहली ऋतु बाद वाली ऋतु से एक दिन और एक मास छोड़कर शुरू होती है।[3]

3.6.5 तुलनात्मक विश्लेषण

इस प्रकार से जब हम ज्योतिषीय तत्त्व ऋतु के विषय में देखते हैं तो ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद और यहाँ तक कि वेदाङ्ग ज्योतिष इन सभी में ऋतु विषयक कुछ बिन्दु एक ही लक्ष्य को इंगित करते हैं और कहीं ना कहीं ऋतुओं का ज्ञान ऋग्वेद से प्रारम्भ होकर वेदाङ्ग तथा वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में अपना विस्तृत रूप प्राप्त करता है। जहाँ ऋग्वेद में ऋतु के अर्थ को एक निश्चित कालावधि के रूप में लिया गया है।[4] वहीं यजुर्वेद में देखें तो वहाँ हमें "ऋतुवः" "ऋतुना" "ऋतुभिः" आदि शब्द कालवाची अर्थ में दिखाई देते हैं। और यही ऋतुवाची बहुवचनान्त शब्द हमें अथर्व में भी प्राप्त होते है। ऋतुओं आधार सूर्य तथा चन्द्र दोनों को माना गया है। जहाँ संहिताओं में सूर्य से ही सम्पूर्ण ऋतुचक्र परिभ्रमण करता है वहीं चन्द्रमा सभी ऋतुओं को एक साथ मिलाकर सम्वत्सर (वर्ष) को बांधे रखता है। सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित दोनों प्रकार की ऋतुओं के ज्ञान से हमारे वैदिक ऋषि भली-भांति परिचित थे और यही सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित वैदिक ऋतुएँ वेदाङ्ग काल में सौर ऋतु तथा चान्द्र ऋतुओं के नाम से प्रचलित हो जाती हैं। और यहाँ हमें ऋतुओं का विधान नक्षत्रों के आधार पर भी देखने को मिलता है। जहाँ वेदों में ऋतुओं का मूल सूर्य की गति को बताया गया है वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा गया है कि सूर्य के पूरे 4 नक्षत्रों और पञ्चम नक्षत्र के आधे भाग के

---

1 स्युरार्धपञ्चमभास्त्वतुः। याजु० ज्यो० 10

2 मधुश्च माधवश्च वासंतिकावृतू, शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हेमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। तैत्तिरीय संहिता; 4.4.11

3 एकान्तरेऽह्नि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरुत्तरः।
अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ। याजु० ज्यो० 11

4 ऋ० सं० 1.95.3

भोग काल को सौर ऋतु कहते हैं। अर्थात सूर्य प्रतिदिन 1 अंश चलता है और एक नक्षत्र का मान 13 अंश 20 कला होता है। एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण का मान 13.20 होता है। इस प्रकार – 13°20 + 13°20 + 13°20 + 13°20 + 6°40 = 60°00

60°00 नक्षत्र मान = 1 सौर ऋतु

सूर्य की दैनिक गति 1° अंश

इसी प्रकार, 60°00 अंश = 60 दिवस

इसी प्रकार 60 दिवसों का = 1 सौर ऋतु,

इस प्रकार से हम सौर ऋतुओं का मान ज्ञात कर सकते हैं।

वैदिक काल में30 दिनों का एक मास ग्रहण किया जाता था। अगर हम ऋतुओं के (मुख) प्रारम्भ की बात करें तो सभी ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वसन्त से ही ऋतुओं का आरम्भ माना जाता है परन्तु तैत्तिरीय का एक मन्त्र हैं ऋतु पात्र के दोनों ओर मुख हैं इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऋतु का मुख कौन सा है।[1] इससे यहाँ ऋतुओं का प्रारम्भ कौनसी ऋतु से होगा इस विषय में शंका की गयी है।

3.7 वैदिक साहित्य में मास

निरन्तरपरिवर्तनशील कालमान का एक मुख्य बिन्दु मास कहा गया है। जोकि ऋतुओं के पश्चात रखा गया है। क्योंकि ऋगादि संहिताओं तथा ज्योतिषीय ग्रन्थों में जब 30 दिवस पूर्ण हो जाते हैं तब एक मास का निर्माण होता है और जब वही 30 + 30 = 60 दिवस पूर्ण हो जाते है तब एक ऋतु का पूर्ण होना माना जाता है अर्थात एक ऋतु में 2 मास का विधान हमें वेदादि संहिताओं तथा वेदाङ्गादि ज्योतिष ग्रन्थों में प्राप्त होता है। सूर्य तथा चन्द्र दोनों पर आधारित सौरमास तथा चन्द्रमास का उल्लेख हमें मूल रूप में वैदिक संहिताओं में ही मिलता है। धीरे धीरे ब्राह्मण ग्रन्थ तथा उत्तर वेदाङ्ग ज्योतिष में हमें सूर्य तथा चन्द्र के साथ साथ नक्षत्रों पर आधारित नए चैत्र आदि नाम भी प्राप्त होते हैं। जो कि आज समाज में और व्यवहार में प्रचलित हैं।

---

[1] तै० सं०, 6.5.3

3.7.1 ऋग्वेद संहिता में मास

ऋग संहिता में "मास" शब्द कालवाचक है।[1] अर्थात यह काल की एक इकाई मानी गई है। और दूसरे मन्त्र में हमें मास शब्द का प्रयोग सूर्य के साथ "चन्द्र अर्थ में भी प्राप्त होता है।[2] जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कहीं ना कहीं वैदिक काल से ही चन्द्र को मासों का आधार माना जाता रहा है। एच.एच विल्सन ने भी मास का अर्थ चन्द्र एवं मास किया है।[3] ऋग्वेद में हमें द्वादश मास हैं यह तो मिलता है परन्तु वहाँ द्वादश मासों के नाम एवं उनके क्रम का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।[4] ऋग्वेद के एक मन्त्र में वरुण को 12 महीनों को जानने वाला तथा उत्पन्न करने वाला कहा गया है।[5] वही ऋग्वेद के अन्य मन्त्र में सूर्य को ही वरुण कहा गया है।[6] यजुर्वेद में भी सूर्य का अन्य नाम वरुण कहा गया है।[7] अर्थात सूर्य ही 12 महीनों का उत्पादक है। ऋग्वेद में सूर्य को चक्र के रूप में उद्धृत किया गया है और उस चक्र में 12 अरे स्थित हैं। जो कि 12 मासों के द्योतक माने गए हैं।[8]

---

1 किं स ऋधकृणवद्यं सहस्रं मासो जभार...। ऋ० सं० 4.18.4
अयं यो होता...मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम्। वहीं, ऋ० सं० 10.52.3

2 यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते। सूर्यामासा दूरी कम्। ऋ० सं० 8.94.2
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून्परि द्योतनि चरतो अजस्रा। वहीं ऋ० सं० 10.12.7

3 H.H.Wilson, A Sanskrit English Dictionary, Delhi, 1979, p.566

4 वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजवतः। वेदा या उपजायते। ऋ० सं० 1.25.8

5 वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजवतः। वेदाय उपजायते। ऋ० सं० 1.25.8

6 ऋ० सं० 9.114.3
ऋ० सं०, वहीं 10.72.8
मित्रश्च वरुणश्च धाता च अर्यमा च अंशुश्च भगश्च इन्द्रश्च विवश्वांश्च इत्येते। वहीं, ऋ० सं० सा० भा० 2.27.1
सूर्यकान्त, वैदिक देवशास्त्र, दिल्ली 1982, वहीं पृ० 338

7 विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रौ वरुणो यमा..। श० ब्रा० 3.2.3.18
श० ब्रा०.वहीं 3.4.2.1
श० ब्रा० वहीं 3.7.1.15
तै० ब्रा० वहीं 1.1.9.1 - 3

8 द्वादशारं न हि तज्जरायवर्तति चक्रं परिद्यामृतस्या आ पुत्राअग्ने मिथुनासो
अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः। ऋ० सं० 1.164.11
द्वादश प्रधय श्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानिक उतचिकेत। वहीं - 1.164.48

3.7.1.1 ऋग्वेद संहिता में अधिमास

ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि - वरुण को 12 महीनों के साथ बीच-बीच में पढ़ने वाले मलमास का भी उचित ज्ञान है यह मन्त्र अवश्य ही अधिक मास की और संकेत करता है।[1] ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण में तेरहवें मास उल्लेख है और वहाँ तेरहवें मास के लिए कहा गया है कि - उन बारहमासों में जो एक अधिकतम मास है वह तेरहवाँ मास निंदनीय है।[2] इसी तेरहवें मास को आज मलमास तथा अधिकमास के नाम से भी जाना जाता है।

3.7.2 यजुर्वेद संहिता में मास

वहीं यजुर्वेद की बात करें तो यजुर्वेद में यज्ञकर्मों के लिए मासों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विशेष रूप से यज्ञों के लिए यहाँ कृष्ण और शुक्ल पक्ष आधारित अमान्त और पूर्णिमान्त से युक्त चान्द्रमासों से यज्ञ मुहूर्तों का विचार किया जाता था। परन्तु वहीं शतपथ में सूर्य को भी द्वादशमासों निर्धारक माना है।

3.7.2.1 यजुर्वेद में चान्द्रमास

सूर्य और चन्द्रमा के अन्तर को तिथि कहते हैं। इस प्रकार से 30 तिथियों का एक चन्द्रमास होता है। चान्द्रमास में 2 पक्ष होते हैं शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष। चान्द्रमास के दो प्रकार, एक जो शुक्लपक्ष से लेकर अमावस्य पर्यन्त होता है वह अमान्त कहलाता है। दूसरा कृष्ण पक्ष से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त होने वाला पूर्णिमान्त कहलाता है। यह दोनों ही चान्द्रमास कहे गए हैं। इन्हें अमान्त चन्द्रमास और पूर्णमान्त चन्द्रमास भी कहा जाता है। तैत्तिरीय संहिता में अमान्त और पूर्णिमान्त चन्द्रमास के दोनों रूप प्राप्त होते हैं[3] इसके साथ साथ हमें यजुर्वेद में द्वादश तथा त्रयोदश मास पूर्ण रूप में प्राप्त होते हैं।[4] यहाँ तेरह मासों का क्रमिक रूप भी बताया गया है। तैत्तिरीय संहिता में मधु - मधवादि 12 मासों के नाम के साथ-साथ एक ''संसर्प'' नाम आया है

---

1 वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते। ऋ० सं० 1.25.8

2 त्रयोदशानमासाद क्रीणैस्तस्मात्रयोदशो मासोनानुविद्यते। ऐ० ब्रा० 3.1

3 मासाक्षचान्द्राह, त्रयोदशस्य चान्द्रत्वात्, पौर्णमासी निमित्तस्य। तै० सं० 1.6.7.2

4 मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू..तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू। तै० सं० 4.4.11
अयम्पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्स रथौजाश्च सेनानिग्रामणयौ..। वहीं - तै० सं० 4.4.3
उपया मग्रिहितोसि…माधवाय तपसे....तपस्याय त्वा। वहीं - का० सं० 4.7.29
मधवे त्वा, माधवाय त्वा, शुक्राय त्वा, शुचये त्वा, नभसे त्वा..। वहीं - मै० सं० 1.3.16

और यह अधिमास के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1] इन 12 मासों के अतिरिक्त कहीं - कहीं अधिमासों के रूप में (संसर्प, मलिम्लुच, अहंस्पति) आदि मासों के नाम प्राप्त होते हैं।[2]

3.7.2.2 यजुर्वेद में सौरमास

जहाँ तैत्तिरीय संहिता में चन्द्रमा को आधार मानकर चान्द्रमास को प्रमुखता दी गयी है, वही शतपथ ब्राह्मण में मास एवं अधिमास सूर्य पर आधारित होने वाले कहे गये हैं वहाँ कहा गया है कि - सूर्य मास एवं अर्धमासों से संसार को पकाता है।[3] सूर्य को द्वादश मासों की प्रतिष्ठा माना गया है। सूर्य के समान ही मास सम्पूर्ण संसार को ग्रहण करते हैं।[4] वेदाङ्ग ज्योतिष में सूर्य पर आधारित बारह सौरमासों होते हैं।[5] सौरमास की परिभाषा देते हुए सूर्यसिद्धान्त में - "सूर्य का एक राशि भोग पूर्ण करके दूसरी राशि में प्रवेश करना सक्रान्ति कहलाता है, और इसी सक्रान्ति से सौरमास होता है।[6] वहीं कालमाधव में कहते हैं "सूर्य जितने समय एक राशि में स्थित रहता है उसे सौरमास कहते हैं।[7] महाभारत में भी शुक्लदि मासों का वर्णन प्राप्त होता होता है "कृष्णशुक्लावुभौपक्षौ गयायां यो वसेन्नरः" और साथ ही साथ पूर्णिमान्त मासों का भी वर्णन प्राप्त होता है।[8] महाभारत में अधिमास के विषय में एक प्रसङ्ग आता है जिसमें पाँच - पाँच वत्सर में दो-दो अधिक मास होते हैं। ग्रहों के अति सार से और कालाधिक्य से भी यह अधिक मास होते हैं।[9] पुराणों में सूर्य की राशियों में सक्रान्ति को लेकर गिने जाने वाले मासों के नाम प्राप्त होते हैं।[10]

---

1 तैत्तिरीय संहिता 7.5.1

2 तै० सं०; वहीं 1.4.14

3 एष वा इदं सर्वंपचति। अहोरात्रैरर्धमासै...। श० ब्रा० 10.4.2.19

4 तदादित्यंमासेषु प्रतिष्ठापयति तस्मादेष मासेषु प्रतिष्ठतः। वहीं; श० ब्रा० 10.2.5.6

5 मासा द्वादश सौराः। याजुष ज्यो० 28

6 संक्रान्त्या सौर उच्यते। सू० सि० 1.13

7 सूर्यस्य राशि गतिर्यत्रपरिमीयतेस सौरः। का० द्वि० प्रक० पृष० - 45

8 तेषां पुण्यतमारात्रिः पर्वसन्धौस्म शारदी।
तत्रैत वसतामासीत कार्तिकी जनमेजय। महाभारत, वनपर्व, अध्याय 182, श्लोक 16

9 पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावधिमासकौ।
तेषां कालातिरेकेण ग्रहाणमतिचारतः। कालमाधव पृ० 58

10 नभोवलयस्यकालचक्रगतौद्वादशमासान् भुंक्तेराशिसंज्ञान। भागवत पुराण 2.22.5
वहीं - गोदावर्यां सिहमासे स्नायात् सिहबृहस्पतौ। शिव पुराण, 1.12.22
वहीं - स्कन्ध पुराण, 2.1.17.8

3.7.2.3 यजुर्वेद में मासों का क्रम एवं नाम

तैत्तिरीय संहिता, काठक - संहिता, मैत्रायणी संहिता	**वाजसनेयी संहिता**		**शतपथ ब्राह्मण**	
मधु	मधु	ताज	मधु	रथगृत्स
माधव	माधव	प्रसव	माधव	रथौजा
शुक्र	शुक्र	पिजाख	शुक्र	रथरचन
शुचि	शुचि	क्रतु	शुचि	रथेचित्र
नभ	नभ	तसु	स्व	रथप्रोत
नभस्य	नभस्य	अहर्पति	मूर्धने	असमरथ
इष	इष	मुग्ध	व्यश्नुविने	तार्क्ष्य
ऊर्ज	ऊर्ज	वैनंशिर्न	आन्त्याय	अरिष्ठनेमि
सह	सह	अल्यायन	आन्त्याय	सेनजित
सहस्य	सहस्य	भौवन	भौवनम	सुषेव
तप	तप	भुवनपति	”	”
तपस्य	तपस्य	अधिपति	”	”
संसर्प	अंहस्पत्य	प्रजापति	”	”
अंहस्पत्य	- - -		- - -	

मध्वाचार्य ने संसर्प को अधिमास, अहंस्पतय को क्षयमास और मलिम्लुच को अधिमास माना है।[1] अधिमास कब होता है, कैसे होता है, किस विधि से निकाला जाए, यह वेदों एवं ज्योतिष ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। जैसे सूर्यसिद्धान्त - चान्द्रमासों में सौरमासों को घटाने पर जो शेष हो वह

[1] अत एवैकमासग्रासित्वादंहसः पापस्यपतिरिति..अहंस्पतिसंज्ञया अपिव्यवह्रियते। कालमाधव, द्वितीय प्रकरण, पृ० 64

“**अधिमास**”।[1] मुहूर्त चिन्तामणि एवं सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार अधिमास उसे कहते हैं “जब चान्द्रमास के दो पक्षों में सक्रान्ति न हो।[2] तैत्तिरीय ब्राह्मण में मास एवं अर्धमासों को चन्द्रमा के आधार पर बताया गया है।[3] चन्द्रमा की कलाओं के आवागमन पर सभी मास आधारित हैं।

3.7.3 वेदाङ्ग ज्योतिष में नाक्षत्र मास पद्धति

वर्तमान में जो हमें चैत्रादि मासों के नाम मिलते हैं वह वैदिकसंहिताओं तथा ब्रह्मणादि काल में हमें कहीं भी प्राप्त नहीं होते हैं। चैत्र आदि मासों के नाम सर्वप्रथम नक्षत्रों के आधार पर हमें सूर्य सिद्धान्त में देखने को मिलते हैं यह वेदाङ्गोत्तर तथा ज्योतिष का एक प्राचीनतम सिद्धान्त ग्रन्थ है।[4] और यदि वैदिक मधु माधवादि मासों की बात की जाए तो सूर्य सिद्धान्त में भी चैत्र मास को मधु शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है[5] इसके अलावा कलमाधवं में स्पष्टतया मधु माधव आदि शब्दों के चैत्र वैशाखादि पर्यायवाची शब्द कहे गए हैं।[6] इनके अतरिक्त नारदसंहिता[7], मुहूर्तगणपति[8], अमरकोश[9] आदि ग्रन्थों में भी मधु माधवादि के लिए चैत्रादि चैत्रादि शब्द प्राप्त होते हैं।

---

1 रविमासो नितास्तेस्तु शेषाः स्युरधिमासकाः। सू० सि०, मध्यमाधिकार, 35

2 स्पष्टार्कसंक्रान्तिविहीनचन्द्रो मासो अधिमासः। मुहूर्त चिंतामणि, 3.20
वहीं - सिद्धान्त शिरोमणि, ग्रहगणित, मध्यमाधिकार, अधिमासदिनिर्णय, श्लोक - 6

3 तै० ब्रा०; वहीं 3.8.3

4 भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रदिनमुच्यते।
नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेया पर्वांतयोगतः।।
कार्तिक्यादिषु संयोगे क्रित्तिकादि द्वयंद्वयम्।
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्।।सूर्यसिद्धान्त, मानाध्याय 14, श्लोक 15 - 16

5 मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः। वहीं; सू० सि०, मध्यमाधिकार, श्लोक 48

6 मध्वादिशब्दानां चैत्रादिपर्यायत्वात्। का० मा०, द्वि० प्रकरण, पृ० 41

7 मधुश्च माधवः शुक्र शुचिश्चापि...क्रमश्चैत्रादीनाम तु संज्ञकाः। ना० सं० 3.82 - 83

8 मासचैत्रोथवैशाखो....तपश्चाथ तपस्यश्च माससंज्ञाः क्रमादमूः। मु० गणपति, 1.27-30

9 मार्गशीर्षे सहा मार्ग...स्यदाश्विन इषोप्याश्वयुजोपिस्यात्तुकार्तिके।
वामन, अमरकोष, प्रथम काण्ड (कालवर्ग) 14 - 17

3.7.3.1 वर्तमान में प्रचलित मास

नक्षत्र योग	**मास**
चित्रा + स्वाती	चैत्र मास
विशाखा + अनुराधा	वैशाख मास
ज्येष्ठा + मूल	ज्येष्ठ मास
पूर्वाषाढ + उत्तराषाढ	अषाढ़ मास
श्रवण + धनिष्ठा	श्रावण मास
शतभिषा + पूर्वाभाद्रपद + उत्तराभाद्रपद	भाद्रपद मास
रेवती + अश्विनी + भरणी	आश्विन मास
कृतिका + रोहिणी	कार्तिक मास
मृगशिरा + आद्रा	मृगशीर्ष मास
पुनर्वसु + पुष्य	पौष मास
आश्लेषा + मघा	माघ मास
पूर्वाफाल्गुनी + उत्तराफाल्गुनी	फाल्गुन मास

सावनमास

सावन मास के विषय में ३० सावनदिनों का एक सावन मास होता है।[1]

3.7.4 तुलनात्मक विश्लेषण

यदि मास विचार इन सभी वैदक संहिताओं और ज्योतिष ग्रन्थों में देखेंगे तो हम यही पायेंगे कि कहीं मल्मास है कही अर्धमास कही सौर मास कही चन्द्रमास और कही नक्षत्रमास तथा सावन मास ही है परन्तु ये सभी एक दूसरे के ही पूरक हैं और एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध युक्त हैं। ऋग्वेद में देखा जाए तो वहाँ मास सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित हैं। कहीं सूर्य को मासों का कर्ता बताया गया है कहीं चन्द्रमा के उन्नति अवनति के आधार पर तथा पूर्णिमान्त अमान्त के आधार पर मासों का निर्धारण किया गया है। परन्तु वहाँ मास काल के एक अवयव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में हमें मासों का ज्ञान केवल चन्द्र और सूर्य के द्वारा ही होता था। वहाँ मासों के नाम स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं थे परन्तु वेदों का कार्य यज्ञ विधानादि करना है। यज्ञ विधान आदि का विस्तृत कार्य हमें यजुर्वेद में प्राप्त होता है। इसलिए यागादि क्रियाओं को करने के लिए काल के अवयव रूपी मास की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पड़ी। जिसके कारण यजुर्वेद में मास केवल सूर्य और चन्द्र के नाम पर ही आधारित न हो करके उन सूर्य और चन्द्र के काल परिमाण को द्वादश भागों में विभक्त करके उनके मधु माधवादि नाम रखे गये जिनसे वे अलग-अलग मासों के नाम से प्रचलित हो गए। इन्ही द्वादश मासों के विषय में हमें पूर्व में ही ऋग्वेद में "द्वादश प्रधयश्च" और "द्वादशारं न हि तज्जराय" आदि मन्त्रों के द्वारा सूर्य द्वादश मासों का निर्माण सांकेतिक रूप में प्राप्त हो जाता है, जो धीरे-धीरे करके वेदाङ्ग काल में सौर मास चन्द्रमा मास नाम से प्रचलित हो जाते हैं। जिनके मूल बिन्दु वेदों में ही उल्लिखित हैं वेदाङ्ग काल में चान्द्र और सौर के अलावा सावन और नाक्षत्र मासों का भी वर्णन किया गया है जो कि नक्षत्रों पर तथा सावन तिथियों पर आधारित हैं।

---

[1] अहोरात्राणांत्रिंशतसंख्या परिमीयते यत्र स सावनः। वहीं, काल० द्वि० प्रक० पृ० 45

3.8 वैदिक संहिताओं में पक्ष

मास से छोटा कालमान पक्ष कहा जाता है और यह लगभग 15 दिनों का होता है। वेदों में पक्ष दो प्रकार से विभाजित हैं पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष। पक्षों की उत्पत्ति के विषय में यजुर्वेद में दो मत प्राप्त होते हैं। प्रथम मत में प्रजापति ने वत्सप्र-कृत्य (यज्ञों में जपना) द्वारा अपर पक्ष को बनाया और विष्णुक्रम (यज्ञों में विष्णु का चलना) द्वारा पूर्व पक्ष को बनाया।[1] वही तैत्तिरीय ब्राह्मण में पक्षों के लिए कहा गया है कि जब प्रजापति ने प्रजा की कामना से तप किया तब देवताओं ने पूर्व पक्ष और असुरों ने उत्तर पक्ष की रचना की।[2] पक्ष को वेदों में अर्धमास नाम से भी कहा जाता है।[3] हम इन दोनों पक्षों का आधार मूलरूप से पूर्णिमा और अमावस्या के आधार पर समझ सकते हैं। जैसे पूर्णिमा और अमावस्या में समाप्त होने वाले मासों को क्रमशः पूर्णिमान्त और अमान्त मास कहते हैं।[4] पूर्णिमा शब्द से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि जो मास पूर्णमासी में समाप्त हुआ हो अथवा जिस मास में पूर्णिमा अन्तिम हो वह पूर्णिमान्त कहा जाता है और जिस मास में अमावस्या अन्तिम हो या अमावस्या में जो मास समाप्त हो वह अमान्त कहलाता है।[5] अथर्व संहिता में सृष्टि प्रकरण में पक्ष का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।[6] वहाँ कृष्ण पक्ष का नाम पहले आया है जिससे कि स्वतः ही

---

1 विष्णुक्रमैर्वै प्रजपतिमसृजत वत्सप्रेण। श० ब्रा० 6.7.4.7

2 प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति।
सतपो अतप्यतः पूर्वपक्षं देवा अन्वस्तयन्ता। तै० ब्रा० 2.2.3.7

3 यो ह वा अर्धमासानां नामधेयानि वेद

4 वर्हिषा पूर्णमासे व्रतमुपैति वत्सैरमावास्यायाम्। तैत्तिरीय संहिता, 1.6.7

5 अमावास्यया मासान्सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति,
अमावास्यया हि मासान् सम्पश्यन्ति।
पौर्णमास्या मासान्सम्पाथाहरुत्सृजन्ति,
पौर्णमास्या हि मासान्सम्पश्यन्ति।। तै० सं० 7.5.6.1
यो वै पूर्ण आसिञ्चति परा स सिञ्चति यः पूर्णादुदचति
प्राणभस्मित्सदधाति यत्पौर्णमास्या मासांत्सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति
संवत्सरायैव तत्प्राणं दधाति तदनु सत्रिणः प्राणन्ति यदोंत्सृजेयुर्यथा
दृतिरुपनदो विपतत्येव, संवत्सरो विपतेदाति मायुयंत्पौर्णमास्या
मासान्सम्पाचाहरुत्सृजन्ति संवत्सरायेव तदुदानं दधति
तदनु सत्रिण उदनन्ति नातिषाछीति पूर्णमासे वं देवाना
सुतो यत्पौर्णमास्या मासान्त्सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति
देवानामेव तद्यशेन यज्ञ प्रत्यवरोहन्ति।। वहीं, तै० सं० 7.5.6

6 मासो वै प्रजापतिः। तस्य कृष्णपक्ष एव रविः शुक्लः प्राणः। अथ० सं० 5.6.4

पूर्णिमान्त मास ही सिद्ध होता है। परन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक मन्त्र में शुक्लपक्षान्तर्गत दिनों के पश्चात कृष्ण पक्ष के दिवस आए हैं इससे अमान्त का होना भी सिद्ध होता है।

वेदों में वर्णन है कि पूर्व पक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर उत्पन्न हुए जिसके कारण देवताओं की जय हुई और असुरों की पराजय हुई।[1] वहीं मुहूर्त पारिजात में शुक्ल पक्ष देव प्रदान होने से देवकर्मों में तथा कृष्णपक्ष पितरों के लिए मान्य होने के कारण कृष्णपक्ष में पितृकर्मों विधान किया गया है।[2] तात्पर्य यह हुआ कि शुक्लपक्ष में सभी प्रकार से शुभ कार्यों को किया जा सकता है और कृष्ण पक्ष में केवल पितृदेवों से सम्बन्धित पितृ कार्यों का विधान किया जा सकता है।

3.8.1 पूर्वपक्ष/परपक्ष (शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष)

शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में यदि यह निश्चित किया जाए कि शुक्ल पक्ष पूर्व में है या कृष्ण पक्ष पूर्व में है। इस बात को जानने के लिए यह ज्ञात होना आवश्यक है कि यदि मास में पूर्णिमा को अन्तिम मानेंगे तो कृष्ण पक्ष पहले आएगा और शुक्ल पक्ष उसके बाद आएगा जिससे कि कृष्ण पक्ष की ‘‘पूर्व’’ और शुक्ल पक्ष की ‘‘पर’’ संज्ञा हो जाएगी। यदि मास में अमावस्या को अन्तिम मानेंगे तो शुक्ल पक्ष पहले आएगा और कृष्ण पक्ष बाद में आएगा किस प्रकार से शुक्ल पक्ष की ‘‘पूर्व’’ संज्ञा हो जाएगी और कृष्ण पक्ष की ‘‘पर’’ संज्ञा, यही बात तैत्तिरीय ब्राह्मण में शुक्ल पक्ष को पूर्व और कृष्ण पक्ष को पर संज्ञा दी गयी है।[3]

वैदिक ग्रन्थों में हमें दोनों पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के दिवस और रात्रियों के नाम प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार ‘‘पूर्वपक्ष’’ के 15 दिवस और 15 यात्रियों के नाम वर्णित हैं उसी प्रकार वेदों में ‘‘परपक्ष’’ के 15 दिवस और 15 रात्रियों के नाम उल्लिखित हैं। जैसे प्रस्तुत तालिकाओं में -

---

1 पूर्वपक्षाश्चितयः। अपरपक्षाः पुरीषम्। तै० ब्रा० 3.10.4.1

2 मुहूर्त पारिजात। पृ० 7

3 तै० ब्रा० 2.2.3.1

पूर्व पक्ष[1] उत्तर पक्ष[2]

3.8.2 पूर्वपक्ष पन्द्रह दिवस / उत्तरपक्ष पन्द्रह दिवस

पूर्वपक्ष पन्द्रह दिवस	पूर्वपक्ष पन्द्रह रात्रि	क्रम	परपक्ष पन्द्रह दिवस	परपक्ष पन्द्रह रात्रि
संज्ञान	दर्शा	1	प्रस्तुतं	सुता
विज्ञानं	दृष्टा	2	विष्टुतं	सुन्वती
प्रज्ञानं	दर्शता	3	संस्तुतं	प्रसुता
जानद	विश्वरूपा	4	कल्याणं	सुयनामा
विजानत्	सुदर्शना	5	विश्वरूपं	अभिषूयामाणा
संकल्पमानं	अप्यायमाना	6	शुक्रम	पीति
प्रकल्पमानं	प्यायमाना	7	अमृतं	प्रपा
उपकल्पमानं	प्याया	8	तेजस्वि	सम्पा
उपक्लृपतम	सूनृ	9	तेजः	तृप्तिः
क्लृप्तं	तेरा	10	समृद्धम	तर्पयन्ती
श्रेयो	आपूर्यमाणा	11	अरुणं	कान्ता
वसीय	पूर्यमाणा	12	भानुमन	काम्या
आयत्	पूरयन्ति	13	मरीचि	कामजाता
संभूतं	पूर्णा	14	मदभितपत्	आयुष्मती
भूतम्	पौर्णमासी	15	तपस्वत्	कामदुघा

---

1 तै० ब्राह्मण 3.10.1.1

2 तै० ब्राह्मण, 3.10.1.2

तै० ब्राह्मण, 3.10.1.2-3

दोनों पक्षों में कृष्ण पक्ष की अन्तिम रात्रि को अमावस्या ना कह करके वहाँ कामदुघा का प्रयोग किया गया है परन्तु वही शुक्ल पक्ष की अन्तिम रात्रि के लिए पूर्णमासी संज्ञा का ही प्रयोग किया गया है।

3.8.3 तुलनात्मक विश्लेषण

वेदों में हमें पक्ष का उल्लेख शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष के रूप में कहीं भी नहीं मिलता परन्तु वहाँ मासान्त के आधार पर पूर्वपक्ष और परपक्ष (उत्तरपक्ष) का उल्लेख अवश्य मिलता है वहीं दोनों पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के दिवस और रात्रियों के नाम प्राप्त होते हैं। वेदों में उल्लेख है कि पूर्व पक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर उत्पन्न।[1] वहीं मुहूर्त पारिजात में शुक्ल पक्ष देव प्रदान होने से देवकर्मों में तथा कृष्णपक्ष पितरों के लिए मान्य होने के कारण कृष्णपक्ष में पितृकर्मों विधान किया गया है।[2] तात्पर्य यह हुआ कि शुक्लपक्ष में सभी प्रकार से शुभ कार्यों को किया जा सकता है और कृष्ण पक्ष में केवल पितृदेवों से सम्बन्धित पितृ कार्यों का विधान किया जा सकता है।

3.9 वैदिक संहिताओं में सूक्ष्म "मुहूर्त" कालमान

वेदों में "मुहूर्त" शब्द का प्रयोग काल के अर्थ में किया गया है ऋग्वेद में "मुहूर्त" शब्द का ग्रहण "क्षण" एवं अल्पकाल के अर्थ लिया गया है।[3] जहाँ संहिताओं में मुहूर्त शब्द का प्रयोग काल की एक सूक्ष्म इकाई के रूप में किया जाता है वहीं कोशादि ग्रन्थों में भी मुहूर्त को अल्प समय अथवा एक क्षण का द्योतक बताया गया है।[4] वैदिक कोश में मुहूर्त को गमनशील बताया गया है।[5] और मुहूर्त की इस गमनशीलता अर्थ को निरुक्त ने भी सिद्ध किया गया है।[6] वहीं मैकडोनल तथा कीथ का यह मानना है कि ब्रह्मणादि ग्रन्थों में

---

1 पूर्वपक्षाश्चितयः। अपरपक्षाः पुरीषम्। तै० ब्रा० 3.10.4.1

2 मुहूर्त पारिजात। पृ० 7

3 रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीर् उध् मुहूर्तम् एवैः...। ऋ० सं० 3.33.5
रूपंरूपं मघवा बोभवीति...परि मुहूर्तम् आगात् स्वैर् मन्त्रैर् अनृतुपा ऋतावा। ऋ० सं० 3.53.8

4 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत - हिन्दी कोश, वाराणसी, 2007 पृ० 810

" द्वादशक्षणमिते काले, पञ्चदशविभक्तस्य दिनस्य पञ्चदशभागे, किञ्चिनन्यूनाधिकघटिकाद्वयरूपे...", वाचस्पत्यम्, वाराणसी, 1990, षष्ठ भाग, पृ० 4758

5 चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार उपाध्याय, वैदिक कोश, दिल्ली, 1995, भाग -3, पृ० 1078

6 मुहूर्तमेवैरयनैरवनैर्वा।। मुहूर्तो मुहुर्ऋतुः।। ऋतुरर्तेगतिकर्मणः।। मुहुर्मूहळ् इव कालः। निरु० 2.7.25

वर्णित मुहूर्त शब्द दिन के तीसवें भाग, अथवा अड़तालीस मिनट के एक घंटे जैसी समय की अवधि का द्योतक है।[1]

1 मुहूर्त = 1440 मिनट ÷ 30 = 48 मिनट

1 अहोरात्र = 24 घंटे = 1440 मिनट ÷ 48 मिनट = 30 मुहूर्त

1 अहोरात्र = 30 मुहूर्त

1 अहोरात्र = 15 दिन के तथा 15 रात्रि के मुहूर्त

वहीं मोनियर विलियम्स ने भी इसी कथन का अनुगमन किया है।[2]

3.9.1 ऋग्वेद संहिता में मुहूर्त

वैदिक ऋषियों द्वारा वर्णित विश्वामित्र- नदी संवाद में विश्वामित्र ऋषि मुहूर्त शब्द का प्रयोग करते हैं वे नदि से प्रार्थना करते हैं कि ‘‘हे अत्यधिक जल वाली नदियों तुम मेरे रक्षण एवं गमन के लिए अपनी गतियों को ‘‘मुहूर्त’’ (क्षणभर) के लिए शिथिल कर दो।[3]

3.9.2 यजुर्वेद संहिता में मुहूर्त

इसी प्रकार तैत्तिरीय शतपथ आदि यजुर्वेदीय ब्रह्मण ग्रन्थों में भी ‘‘मुहूर्त’’ शब्द का प्रयोग समय की लघु इकाई के रूप में प्रतिपादित किया गया है।[4] वैदिक ऋषियों ने एक अहोरात्र तीस मुहूर्तों वाला कहा गया है जिसमें पन्द्रह दिन के मुहूर्त तथा पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त माने गये हैं। तीस मुहूर्तों का अनेक स्थलों में वर्णन किया है जैसे तैतिरीय ब्राह्मण आदि में। जिन्हें हम तालिका के माध्यम से देख सकते हैं -

---

1 वैदिक इंडेक्स, रामकुमार राय, वाराणसी, 1962, भाग -2, पृ० 188

2 "A moment, instant, any short space of time, a partic.Division of time, the 30th part of a day, a period of 48 minutes.", Monier Williams, A Sanskrit - English Dictionary, Delhi, 2004, p.825

3 रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥ ऋ० 3.33.5

4 मुहूर्ताः प्रेष्या अभवन्। तै० ब्रा० 3.12.9.6
अथ प्रातः। अनशित्वा मुहूर्त सभायामा - सित्वापि कामं पल्ययेत...। वहीं, श० ब्रा० 2.3.2.5

वैदिक मुहूर्त

	पूर्वपक्ष दिवस मुहूर्त	पूर्वपक्ष रात्रि मुहूर्त		उत्तरपक्ष दिवस मुहूर्त	उत्तरपक्ष रात्रि मुहूर्त
1	चित्रः	दाता	1	सविता	अभिशास्ता
2	केतु	प्रदाता	2	प्रसविता	अनुमन्ता
3	प्रभान्	आनन्दः	3	दीप्तः	आनन्दः
4	आभान्	मोदः	4	दीपयान्	मोदः
5	संभान्	प्रमोदः	5	दीप्यमानः	प्रमोदः
6	ज्योतिष्मान्	आवेशयन्	6	ज्वलन्	आसादयन्
7	तेज्स्वान्	निवेशयन्	7	जवलिता	निषादयन्
8	आतपन्	संवेशनः	8	तपन्	संसादन्
9	तपन्	संशान्तः	9	वितपन्	संसन्नः
10	अभितपन्	शान्तः	10	संतपन्	सन्नः
11	रोचनः	आभवन्	11	रोचन्	आभूः
12	रोचमानः	प्रभवन्	12	रोचमान्	विभूः
13	शोभनः	सम्भवन्	13	शुम्भू	प्रभुः
14	शोभमानः	संभूतः	14	शुम्भमान्	शम्भूः
15	कल्याणः	भूतः	15	वाम्	भुवः

जहाँ हमें यजुर्वेद में अहोरात्र के 30 मुहूर्तों का वर्णन प्राप्त होता है वहीं हमें उल्लिखित 30 मुहूर्तों के अवयव रूप में **15 प्रतिमुहूर्तों (क्षुद्रमुहूर्त)** के नामों का उल्लेख प्राप्त होता है यथा – इदानीम्, तदानीम्, एतर्हि, क्षिप्रं, अजिरम्, आशुः, निमेषः, फणः, द्रवन्, अतिद्रवन्, त्वरन्, त्वरमाणः, आशुः, आशीयान्, जवः आदि प्रतिमुहुर्तों (क्षुद्र मुहूर्तो) का वर्णन किया गया है।[1] वहीं यजुर्वेदीय शतपथ में वर्ष में 10800 मुहूर्त होते है

[1] इदानी तदानीमेतहि...त्वरंस्त्वरमाण आशुराशीयाञ्जवः। तै० ब्रा० 3.10.1.4,
इदानी तदानीमिति। एष एव तत्। एष ह्येष ते मुहूर्तानां मुहूर्ताः। तै० ब्रा० 3.10.9.9

यह उल्लेख किया गया है।[1] वहीं मुहुर्तादि का सूक्ष्माति-सूक्ष्म कालगणना करते हुए शतपथ में कुछ मुहूर्तों के नाम तथा उनसे गणना की विधि बताई गयी हैं[2] यथा –

जितने (10800) मुहूर्त होते हैं उनमें क्षिप्रादि मुहूर्तों में उत्तरोत्तर 15 गुणन करने पर जो शेष संख्या आती है वहीं उस मुहूर्त की सूक्ष्म काल गणना होती है। जैसे – 10800 x 15 करने पर = 162000 क्षिप्र मुहूर्त हुआ

क्षिप्र मुहूर्त	-	10800 x 15 = 162000,
एतर्हि मुहूर्त	-	162000 x 15 = 2430000,
इद मुहूर्त	-	2430000 x 15 = 36450000,
प्राण मुहूर्त	-	36450000 x 15 = 546750000,
अक्तन मुहूर्त	-	546750000 x 15 = 8201250000,
निमेष मुहूर्त	-	8201250000 x 15 = 123018750000,
लोमगर्त	-	123018750000 x 15 = 1845281250000,
स्वेदायन मुहूर्त	-	1845281250000 x 15 = 27679218750000,
स्तोक मुहूर्त	-	27679218750000 x 15 = 415188281250000, आदि लघु गणना

3.9.3 अथर्व ज्योतिष में मुहूर्त

अथर्व ज्योतिष में भी 15 दिवस तथा 15 रात्रि मुहूर्तों का उल्लेख किया गया है। यहाँ मुहूर्त के परिमाण का मापन लव-कला - त्रुटि[3], तथा शङ्कुछाया[4] आदि सूक्ष्म से सूक्ष्म काल की इकाइयों के प्रमाणों से प्रतिपादित किया गया है।

---

1 तानि संवत्सरे। दश च सहस्राण्यष्यै च शतानि समपद्यन्त सोऽत्रातिष्ठत
दश सु च सहस्रप्वष्टासु च शतेषु। श० ब्रा० 10.4.2.20, श० ब्रा०
दश च वै सहस्राण्यष्टौ च शतानि। सम्वत्सरस्य मुहूर्ता...। वहीं, श० ब्रा० 12.3.2.5

2 यावन्तो लोमगर्तास्तावन्ति स्वेदायनानि यावन्ति स्वेदायनानि तावन्त एते स्तोका वर्षन्ति। श० ब्रा० 12.3.2.5

3 द्वादशाक्षिनिमेषस्तु लवो नामाभिधीयते।
लवस्त्रिंशत् कला ज्ञेया कलात्रिंशत् त्रुटिर्भवेत् ॥ अथर्व ज्यो० 4

4 त्रुटीनान्तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशाङ्गुलमुच्छेषं तस्य छायाप्रमाणतः ॥ वहीं, अथर्व ज्यो० 5

12 निमेष = 1 लव (स्वाभाविक रूपसे 12 बार पलकों के अनवरत झपकने के काल को 1 लव कहा है)

30 लव = 1 कला

30 कला = 1 त्रुटि

30 त्रुटि = 1 मुहूर्त

30 मुहूर्त = 1 अहोरात्र

ब्रह्माण्ड पुराण[1] तथा वायु पुराण[2] में भी सूर्य प्रकाश के द्वारा शङ्कु प्रमाण से मुहूर्त के विषय में कहा कहा गया है। शङ्कु का अर्थ हम दण्ड समझ सकते हैं जब प्रातः सूर्योदय होता है तब समतल भूमि पर एक बारह अंगुल लम्बाई वाला शङ्कु को सीधा स्थापित करना चाहिए जिसके परिणाम स्वरूप अथर्व ज्योतिष में वर्णित रौद्रादि दिवस के पन्द्रह मुहूर्तों को जाना जाता है।[3]

क्रम	रौद्रादि मुहूर्त	शङ्कु छाया परिमाण
1	रौद्र[4] (सूर्योदय)	96 अंगुल से प्रारम्भ 60 अंगुल पर्यन्त
2	श्वेत[5]	60 अंगुल से प्रारम्भ 13 अंगुल पर्यन्त
3	मैत्र[6]	12 अंगुल से प्रारम्भ 7 अंगुल पर्यन्त
4	सारभट[7]	6 अंगुल से प्रारम्भ 5 अंगुल पर्यन्त
5	सावित्र[8]	5 अंगुल से प्रारम्भ 4 अंगुल पर्यन्त
6	वैराज[9]	4 अंगुल से प्रारम्भ 3 अंगुल पर्यन्त

1 एते दिनमुहुर्ताश च दिवाकरविनिर्मिताः
शङ्कुछायाविषेण वेदितव्याः प्रमाणतः। ब्रह्मांड पुराण 2.3.41

2 वायु पुराण। वहीं 2.5.42

3 अथर्व ज्यो०, 5 – 6

4 नवति षडङ्गुलांश्चैव प्रतीचीन्ताम्प्रकाशयेत्।
पुरस्तात्सन्धिवेलायां मुहूर्तो रौद्र उच्यते। अथर्व ज्योतिष श्लो० 6

5 श्वेतः षष्टिः समाख्यातो मैत्रो वै द्वादशाङ्गुलः। वहीं, स्लो० 7

6 वहीं, 7

7 षट्सु सारभटो ज्ञेयः सावित्रः पञ्चसु स्मृतः ॥ वहीं, स्लो० 7

8 वहीं, 7

9 चतुर्यु चैव वैराजस्त्रिषु विश्वावसुस्तथा। वहीं, श्लो० 8

7	विश्वावसु[1]	3 अंगुल से प्रारम्भ 2 अंगुल पर्यन्त
8	अभिजित[2] (सुर्यमध्याहन)	शङ्कु छाया शङ्कुमूल में होने पर मध्याहन काल होता है जिसमें अभिजित मुहूर्त होता होता है
9	रोहिण[3]	0 अंगुल से प्रारम्भ 3 अंगुल पर्यन्त
10	बल[4]	3 अंगुल से प्रारम्भ 4 अंगुल पर्यन्त
11	विजय[5]	4 अंगुल से प्रारम्भ 5 अंगुल पर्यन्त
12	नैऋत[6]	5 अंगुल से प्रारम्भ 6 अंगुल पर्यन्त
13	वारुण[7]	6 अंगुल से प्रारम्भ 12 अंगुल पर्यन्त
14	सौम्य[8]	12 अंगुल से प्रारम्भ 60 अंगुल पर्यन्त
15	भग[9] (सूर्यास्त)	60 अंगुल से प्रारम्भ 96 अंगुल पर्यन्त

प्रस्तुत तालिका में अथर्व ज्योतिष में वर्णित दिवस के पन्द्रह रौद्रादि मुहूर्तों का उल्लेख किया गया है। इस्सी प्रकार से रात्रि के (15) पन्द्रह मुहूर्तों को भी जानना चाहिए।[10] वहीं इन सभी मुहूर्तों के साथ साथ इन सभी के शुभ-अशुभ फलों का वर्णन किया गया है।[11] यथा – युद्ध, संग्राम, आक्रमण, सौर्यादि कार्यों को यदि रौद्र मुहूर्त में किये जाये तो इनमें अवश्य सफलता मिलती है, वहीं गृहप्रवेश, गृहनिर्माण, कृषि आदि कार्यों को यदि श्वेत मुहूर्त में किया जाय तो उनमें अवश्य सफलता मिलती है, वहीं मैत्र मुहूर्त में विवाह परिणय, मित्रकार्य करना शुभ होता है, इसी प्रकार से अन्य मुहूर्तों के बारे में भी समझना चाहिए।

1 वहीं, 8
2 मध्याह्ने चाभिजिन्नाम यस्मिञ्छाया प्रतिष्ठति ॥ वहीं, श्लो० 8
3 प्राची वै गामिनीञ्छायां रोहणिस्त्रिषु वर्तते। वहीं, श्लो० 9
4 बलश्चतुर्पु विख्यातो विजयः पञ्चसु स्मृतः ॥ वहीं, श्लो० 9
5 वहीं, 9
6 नैऋतस्तु षडङ्गुल्यो वारुणो द्वादशाङ्गुलः। वहीं, श्लो० 10
7 वहीं, 10
8 सौम्यः षष्टिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा ॥ वहीं, श्लो० 10
9 वहीं, 10
10 एते मुहूर्त्ता व्याख्याता दश द्वौ च तथा त्रयः।
अहन्येव तु विज्ञेया रात्रावपि न संशयः। वहीं, श्लो० 11
11 अत ऊर्ध्वं तु सर्वेषामानुपूर्व्याच्छुभाशुभम। वहीं, अथर्व ज्यो० 12

3.9.4 वेदाङ्ग ज्योतिष में मुहूर्त

ऋग याजुष ज्योतिष में आचार्य लगध ने मुहूर्त के परिमाण को कला, नाड़ी तथा घटी के द्वारा वर्णित किया है मुहूर्त को जानने से पूर्व मुहूर्त की परिभाषा के साथ-साथ आचार्य लगध ने नाडी, आढक, कुडव, द्रोण आदि की परिभाषा प्रस्तुत की है, जिसमें कहा गया है कि "पानी के पचास पल वजन (परिमाण) जितने को आढक कहते हैं, और उस आढक के द्वारा एक द्रोण को मापना चाहिए फिर उस द्रोण में से तीन कुड्व निकाल देने चाहिए फिर जो शेष बचे उसे नाडिका कहेंगे।[1] वहीं फिर नाड़िका, मुहूर्त की परिभाषा देते

10 + 1/20 कला की एक नाडी, तथा दो नाडियों का एक मुहूर्त, 30 मुहूर्तों का एक अहोरात्र कहा गया है।[2]

1 नाड़ी = 10 + 1/20 कला

1 नाड़ी = 201 ÷ 20 कला

1 नाड़ी = 10.05 कला

2 नाड़ी = 1 मुहूर्त

30 मुहूर्त = 1 अहोरात्र

1 अहोरात्र = 30 मुहूर्त x 20.1 कला = 603 कला

3.9.4.1 तुलनात्मक विश्लेषण

वेद वेदाङ्ग ज्योतिष में मुहूर्त का बहुलता से प्रयोग किया गया है ऋग्वेद में हमें "मुहूर्त" शब्द क्षणभर के अर्थ में मिलता है अहोरात्र तीस मुहूर्तों वाला कहा गया है जिसमें पन्द्रह दिन के मुहूर्त तथा पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त माने गये हैं। जहाँ हमें यजुर्वेद में अहोरात्र के तीस मुहूर्तों का वर्णन प्राप्त होता है वहीं हमें उल्लिखित तीस मुहूर्तों के अवयव रूप में पन्द्रह प्रतिमुहुर्तों (क्षुद्रमुहूर्त) के नामों का उल्लेख भी प्राप्त होता है वहीं ऋग याजुष ज्योतिष में आचार्य लगध ने मुहूर्त के परिमाण को कला, नाड़ी तथा घटी के द्वारा वर्णित किया है अथर्व ज्योतिष में भी 15 दिवस तथा 15 रात्रि मुहूर्तों का उल्लेख किया गया है। यहाँ मुहुर्त के

---

1 पलानि पञ्चाशदपां धृतानि तदाढकं द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिर्विहीनं कुडवैस्तु कार्यं तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्। याजुष ज्यो० 24

2 कला दश सविंशाःस्यां नाडिका ते मुहूर्तकः। ऋ० ज्यो० 38

परिमाण का मापन सूर्य प्रकाश के द्वारा शङ्कु प्रमाण कहा गया है। शङ्कु अर्थात दण्ड जब प्रातः सूर्योदय होता है तब समतल भूमि पर एक बारह अंगुल लम्बाई वाला शङ्कु को सीधा स्थापित करना चाहिए। जिसके परिणाम स्वरूप अथर्व ज्योतिष में वर्णित रौद्रादि दिवस के पन्द्रह मुहूर्तों को जाना जाता है।[1] इस प्रकार से अथर्व ज्योतिष में मुहूर्तों की विधि बताई गयी है तीनों ऋग, याजुष अथर्व ज्योतिष में मुहूर्त काल की सूक्ष्म इकाई के रूप में बताया गया है। जिसमें शुभ अशुभ मुहूर्तों का वर्णन किया गया है और माङ्गलिक कार्यों का विधान किया गया है। वेद वेदाङ्ग ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन यागादि कर्म करना जिसके लिए महर्षियों ने ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में समान रूप से मुहूर्तों का विधान बताया है।

1 अथर्व ज्यो०, 5 – 6

चतुर्थ अध्याय

वैदिक संहिताओं में (अंक) संख्यात्मक पद्धति

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद हैं, इस ब्रह्माण्ड में जितनी भी सत्य विद्यायें हैं, उनका मूल-रूप वेदों में विद्यमान हैं। दूसरे अन्य शास्त्रों के समान ही ज्योतिष गणित शास्त्र भी मूल रूप में पहले से ही वेदों में विद्यमान था। तत्कालीन वैदिक समाज में संख्याओं[1] तथा ज्यामितीय[2] रचनाओं का होना ही उस काल में गणित शास्त्र की उपस्थिति को सिद्ध करता है। यह भी निश्चय ही सत्य है की आज जो गणित शास्त्र का विकसित रूप प्राप्त होता है अवश्य ही इसमें हजारों वर्ष लगे हैं यह अचानक ही इतना विकसित नहीं हुआ। जिस प्रकार उपनिषद अन्य शास्त्रों का स्वतन्त्र रूप बताते हैं उसी प्रकार अंक विज्ञान अर्थात गणित शास्त्र को भी उपनिषदों में एक स्वतन्त्र विद्या कहा गया है।[3]

4.1 गणित पद की व्युत्पत्ति

गणित शब्द गण् धातु क्त प्रत्यय के योग से बना है। यहाँ गण् धातु का अर्थ गिनना है क्त प्रत्यय का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया जाता है परन्तु यहाँ गण् शब्द के साथ जितने अर्थों में प्रयोग हुआ है जैसे कौटिल्य के अनुसार "भूतकालिक अर्थ अर्थात गिना हुआ।[4] वहीं कोष-ग्रन्थों में गणित का अर्थ संख्या किया है।[5] वहीं पाणिनीय ने गण् धातु का अर्थ संख्या अर्थ में प्रयोग प्रयोग किया है।[6] महावीराचार्य ने भी गणित को

---

1 एकाचमेतिस्रश्च्चमे तिस्रश्च्चमेपञ्चचमे पञ्चचमेसप्तमें सप्तचमेनवचमे नवचमऽएकादशचम एकादशचमेऽत्रयोदशचमे त्रयोदशचमेपञ्चदशचमे पञ्चदशचमेसप्तदशचमे सप्तदशचमेनवदशचमे नवदशचमऽएकविंश्शतिश्च्चम एकविंशतिश्च्चमेत्रयोविंशतिश्च्चमे त्रयौविंशतिश्च्चमेपञ्चविंशतिश्च्चमे पञ्चविंशतिश्च्चमेसप्प्तविंशतिश्च्चमे सप्प्तविंशतिश्च्चमेनवविंशतिश्च्चमे नवविंशतिश्च्चमऽएकत्रिंशच्चम एकत्रिंशच्चमे त्रयस्त्रिंशच्चमेयुञ्जेनकल्प्प न्ताम्। यजु०, 18/24

2 कासीरप्रभा प्रतिभा किं निदानम्। आज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत। ऋ० सं० 10.103.3
द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।। वहीं, ऋ० सं० 1.164.11

3 स होवाचर्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं तित्र्य राशि दैवं निधि वाकोवाक्यमेकायन देवविद्या ब्रह्मविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्यार्थसर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि। छा० उ० 7, 1, 2

4 तस्माद्विक्रयः पाण्यानां धृतो मितो गणितो वा कार्यः। कौटिल्य अर्थ० पृ० 110

5 संख्यातम् गणितम्। अमरकोष

6 गण संख्याने। पाणि अ० धातु पाठ – 1853

"लौकिक वैदिक तथा अन्य सब प्रकार के सामायिक कृत्यों में संख्यान (गणना) का प्रयोग किया जाता है।[1] वहीं वाजसनेयी संहिता में कहा गया कि "विशेष ज्ञान के लिए नक्षत्रदर्श गणक के पास जाओ" यहाँ नक्षत्र दर्श का अर्थ नक्षत्र देखने वाला तथा गणक का अर्थ गणना करने वाला ज्योतिषी किया गया है।[2]

4.2 वैदिक साहित्य में गणित

अंकात्मक (गणनात्मक) पद्धति का ज्ञान हमारे ऋषियों को वैदिक काल से ही था, क्युकि वेदों में बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ संख्याओं का स्पष्ट रूप से वर्णन प्राप्त होता। काल की गणना कैसे की जाए इन सबके लिए भी सर्वप्रथम ऐसा कौन सा पैमाना है जिससे कि यह निर्धारित किया जाए कि काल की पौर्वापर्य की स्थिति का मापन क्या हो, इन सभी आकाशीय घटनाओं का एक क्रम में किस प्रकार से विभाजन किया जाए इसके लिए वेदों में महर्षियों ने मुख्य रूप से इनका आधार सूर्य तथा चन्द्रमा को माना है। जिनके आधार पर ऋतु की संख्याओं का ज्ञान[3], द्वादश मासों का ज्ञान[4], दिशाओं की संख्याओं का ज्ञान, द्वादश राशियों का ज्ञान, भ-चक्र स्थित 27 भागों में विभक्त नक्षत्रों का ज्ञान[5], चन्द्र मंगल आदि पञ्चदेव (ग्रहों) का ज्ञान[6], पंद्र दिवसों का ज्ञान[7] ज्ञान[7] तथा दिवस-रात्रि अहोरात्र के 15 - 15 मुहूर्त[1] तथा 15 प्रतिमुहूर्त[2] आदि सभी का हमें संख्याओं में

---

1 लौकिके वैदिके वापि तथा सामयिकेपि यः।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानामुपयुज्यते। गणित सार संग्रह – 19.11

2 प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्श यादसे गणकं। प्राचीन भारतीय गणित, ब० ल० उपाध्याय, पृ० 109

3 तैत्तिरीय संहिता, 4.3.2, वहीं, 5.6.23, ऐतरेय० ब्रा०, 1.1

4 तै० ब्रा०, 3.10.1,
शतपथ ब्रा०, 6.2.2.18

5 ऋग्वेद, 4.51.2, वहीं, 5.54.13, अथर्ववेद, 19.7.2 - 5
तैत्तिरीय सं०, वहीं, 4.4.10.1-3, का० संहिता, 39-13, मै० संहिता, 2.13.20
तै० ब्रा०, 3.1.1, तै० ब्रा०, वहीं, 1.5.1

6 अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये॑ तस्थुर्महो दिवः।
देवत्रा नु प्वाच्यं॑ सध्रीचीना नि वा॑वृतुर्वित्तं मे॑ अस्य रो॑दसी ऋग्वेद। 1.105.10
बृहस्पतिः॑ प्रथमं जाय॑मानो महो ज्योति॑षः परमे व्यो॑मन्।
सप्तास्य॑स्तुविजातो रवे॑ण वि सप्तर॑श्मिरधमत्तमां॑सि। ऋ०, वहीं, 4.50.4
अयं वेनश्चो॑दयत्पृश्नि॑गर्भा ज्योति॑र्जरायू रज॑सो विमाने॑।
इममपां सं॑गमे सूर्य॑स्य शिशुं न विप्रा॑ मतिभी॑ रिहन्ति। ऋ०, वहीं, 10.123.1
शतपथ ब्रा०, वहीं, 4.2.1

7 उता या॑तं संगवे प्रातरह्नो॑ मध्यंदि॑न उदि॑ता सूर्य॑स्य।
दिवा नक्तमव॑सा शंत॑मेन नेदानीं॑ पीतिरश्विना त॑तान। ऋ० सं०, 5.76.3, वहीं, 8.48.7

उल्लेख प्राप्त होता है। जो कि ज्योतिषीय परिभाषा में ये सभी ज्योतिष के तत्त्व है यही ज्योतिष के (स्थूल तथा सूक्ष्म) कलनात्मक काल के आधार हैं। ये सभी पदार्थ वेदों में विद्यमान है।

यद्यपि वेदों में हमें गणित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है परन्तु वहाँ "गण" गण्या और गणक शब्द का प्रयोग मिलता है। जो कि समूह व कबीले के अर्थ में प्रयोग हुआ है। वहीं इस बात को बलदेव उपाध्याय ने कहा कि "गण" शब्द कबीले का वाचक होने से गणना से पहले के भाव का द्योतक हैं अतः सम्भव है कि बाद में गणों को गिनने की आवश्यकता पड़ी हो अतः गण धातु की कल्पना की गई हो।[3] वाजसनेयी संहिता में प्रयुक्त गणक शब्द यह सूचित करता है कि यह उस काल तक गण धातु की कल्पना अवश्य हो चुकी होगी। गणित शब्द का उल्लेख वेदाङ्ग ज्योतिष में ही सर्वप्रथम देखने को मिलता है। यहाँ गणित शब्द का अर्थ सिद्धान्त ज्योतिष है जो कि आदि रूप में नक्षत्र विद्या रही होगी।[4] हम यह भी मान सकते हैं कि वैदिक काल में जो आर्यजाति थी धार्मिक क्रियाकलापों यागादि अनुष्ठान करने वाली धर्मपरायण जाति थी। जो शुभ समयानुसार धार्मिक कर्म करते थे वह यज्ञों के लिए यह बहुत आवश्यक था कि उन्हें शुभ समय में यथाकाल किया जाये। और शुभ समय जानने के लिए ज्योतिष की आवश्यकता होती है जिससे उसका सम्यक ज्ञान ग्रहगणित तथा नक्षत्र वेध से ही सम्भव होता है। इसलिए सम्भव है कि गणित ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत ही था। इसीलिए वेदाङ्ग ज्योतिष में ज्योतिष और गणित को एक ही मानते हुए महर्षि लगध ने गणित की विशेषता को दर्शाते हुए कहा है कि गणित ज्योतिष सभी शास्त्रों में श्रेष्ठ है। ज्योतिष की तुलना अन्य शस्त्रों से उसी प्रकार की गयी है जिस प्रकार नागों की मणि और मयूरों की कलगी उनमें श्रेष्ठ है उसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र भी अन्य शास्त्रों में श्रेष्ठ है।[5]

---

1 तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3.10.1, वहीं, 3.10.9

2 तै० ब्रा०, 3.10.9.9, वहीं, 3.10.1.4

3 उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित, पृ० 103-05

4 उपाध्य बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित, पृ० 105

5 यथा शिखा मयूराणाम नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणाम गणितं मूर्धनि स्थितम्। याजु० ज्यो०, 4

4.3 संहिताओं में त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष का स्वरूप

ज्योतिष शास्त्र त्रिस्कन्धात्मक है जिनमें से प्रथम स्कन्ध सिद्धान्त ज्योतिष है और इसी सिद्धान्त ज्योतिष को गणित ज्योतिष भी कहा गया है। और गणित शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भी वेदाङ्ग ज्योतिष में ही देखने को मिलता है। वहीं प्राचीनतम "सूर्यसिद्धान्त" जो की गणित-ज्योतिष (Astronomy) का ग्रन्थ है, इसके रचनाकाल के विषय में भी विद्वानों का मतैक्य नही है वह लाखों वर्ष पुराना है[1]। वर्तमान सृष्टि में वेदों में जो गणित विद्या है उसके आधार पर ही गणित के अन्य ग्रन्थों की रचना प्राचीन ऋषियों ने की. जिनमें से एक आचार्य लगध हुए जिन्होंने वेदाङ्ग ज्योतिष नामक (गणित) सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की।[2] जिसमें काल गणना के लिए अनेक संख्याओं का प्रयोग काष्ठा, आढक, पल, युगादि अवयव, अयन, ऋतुआदि कालमानों के आधार पर गणनाएँ की गयी है, जिनमें जोड़ घटाव गुणा भाग आदि गणितीय प्रक्रियाओं का भी प्रयोग किया गया है।

ग्रह नक्षत्रों की गति व स्थिति का अध्ययन करना ही गणित ज्योतिष है। इनके जैव व अजैव सृष्टि पर प्रभाव का अध्ययन फलित ज्योतिष है।[3] जहाँ सम्पूर्ण वेदाङ्ग ज्योतिष सिद्धान्त अर्थात गणित पर आधारित है वहीं वेदाङ्गोत्तर काल में जो प्रसिद्ध संहिता (फलित) ग्रन्थ हैं उन सभी फलित ग्रन्थों का मूल उद्भव वेदाङ्ग ज्योतिष के ही एक अन्तिम पद्य से प्रारम्भ हो जाता है। जिसमें स्वयं आचार्य लगध कहते हैं कि - वह विद्वान जो चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्रों की गतियों को जानता है (वह) इस लोक में सन्तति (पाकर सुखी होगा और मृत्यु के पश्चात) चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्रों के लोक में जाएगा।[4] तात्पर्य यह है कि जब किसी भी कार्य को करते हैं तब उस कार्य की सिद्धि हो जाने पर उसके फल परिणाम की प्राप्ति अवश्य होती है। इसी प्रसङ्ग में कुपन्ना

---

1 सूर्य सि०, श्रीरंगनाथकृत गूढार्थप्रकाशिका, भूमिका, पृ० 11

2 प्रणम्य शिरसा काल मभिवाद्य सरस्वतीम।
कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लागधस्य महात्मनः। ऋ० ज्यो० 2

3 अथर्ववेदीय ज्योतिष, पृष्ट 3

4 सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान वेद विदश्नुते।
सोमसूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्ततिम्। याजुष, वेदाङ्ग ज्योतिष, 43

शास्त्री का मत है कि - भिन्न-भिन्न देवताओं के अपने-अपने लोक होते हैं, जहाँ पर व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त जाकर प्रसन्नता व सुख का अनुभव करता है।[1] तीन स्कन्ध 1. सिद्धान्त, 2. संहिता, 3. होरा।

4.3.1 ज्योतिष का "सिद्धान्त" भाग

सिद्धान्त अर्थात **"अन्ते सिद्धः इति सिद्धान्तः"** ज्योतिष की परिभाषा के अनुसार - भू तथा खगोल विषयक पद्धति को, किस ग्रह का किस नक्षत्र से अथवा किन नक्षत्रों का किस ग्रह से कब और किस प्रकार योग बनेगा इन सभी पद्धतियों को जानने की विधि को सिद्धान्त कहा जाता है। वहीं दूसरी परिभाषा में जिसमें सृष्टि के प्रारम्भ से "इष्टदिन" तक की गणना करके ग्रह सिद्ध किया जाये तो वह सिद्धान्त कहलाता है तीनों स्कन्धों में (गणित) सिद्धान्त स्कन्ध के दो भेद और हो जाते हैं तन्त्र और करण।

4.3.1.1 तन्त्र सिद्धान्त

इनमें से तन्त्र सिद्धान्त के दो भेद हैं एक ग्रहादिकों का गणित करना और दूसरा प्रधान रूप से सृष्टि रचना वर्णन, यन्त्र रचना, गोल विचार तथा कालगणना मान इत्यादि विषय होते हैं।

4.3.1.2 करण सिद्धान्त

करण सिद्धान्त में केवल ग्रहगणित का विचार किया जाता है। आचार्य भाष्कर भी इसी प्रकार से सिद्धान्त का लक्षण देते हैं।[2] अन्य परिभाषा के अनुसार जिसमें कल्पित इष्ट वर्ष को युग मानकर उस युग के भीतर ही किसी अभीष्ट दिन की गणना करके ग्रह सिद्ध किये जायें तो उसे करण कहा जाता है। इस प्रकार सिद्धान्त (गणित) ज्योतिष भचक्र स्थित नक्षत्रों, ग्रहों एवं पिण्डों की स्थिति तथा गति आदि का वर्णन करता है।

---

1 Different deities or group of deities have their own worlds,
where their devotees go and enjoy happiness after death.
- Sastri, T.S. Kuppanna - Vedanga jyotisa, of Lagadha; p-36

2 त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदः क्रमा,
च्चारश्च घुसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यंत्रादि यत्रोचयते,
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।
सू० सि०, गणपति लाल शर्मा, भूमिका, पृ० v

4.3.2 ज्योतिष का "संहिता" भाग

ज्योतिष शास्त्र की जिस शाखा में ग्रहों तथा नक्षत्रों की तत्कालिक स्थिति के अनुसार शुभ-अशुभ, लाभ-हानि जय-पराजय आदि का निर्देश किया जाता है उसे ही संहिता कहा जाता है। संहिता भाग में - भूशोधन, दिक्शोधन, धूमकेतु - उल्कापात, वृष्टि, आदि। द्वितीय माङ्गलिक कार्यों के लिए शुभाशुभ फल प्रदान करे वाले मुहूर्तों का विचार करना आदि। संहिता शास्त्र का जन्म आदिकाल में ही हो गया था और इस की परिभाषा का क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। मध्ययुग में संहिता की परिभाषा होरा गणित और शकुन के मिश्रित रूप में मानी गयी। कुछ जैनाचार्यों नें जीवनोपयोगी आयुर्वेद की चर्चाएँ भी संहिता के अन्तर्गत रखी हैं।[1] संहिता ज्योतिष के प्रणेता आचार्यों में काश्यप, गर्ग, देवल, पाराशर, वृद्धगर्ग, वशिष्ठ आदि सम्मिलित हैं। इन्हीं में आचार्य वराहमिहिर कृत "वृहत्संहिता" अत्यन्त प्रचलित और प्रसिद्ध है।

4.3.3 ज्योतिष का "होरा" भाग

होरा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के "अहोरात्र" शब्द से मानी गई है। जिसका अर्थ होता है दिन और रात्रि जिसके आदि वर्ण "अ" तथा अन्तिम वर्ण "त्र" का लोक कर देने से "होरा" शब्द शेष रह जाता है। अहोरात्र शब्द का प्रयोग वेदों में पहले से ही वर्णित है इससे स्पष्ट हो जाता है कि होरा शब्द वैदिक संहिताओं तथा वैदिक ज्योतिष की ही देन है। त्रिस्कन्धात्मक के होरा भाग को जातक शास्त्र भी कहा जाता है।[2] इसमें जातक के जन्मकालिक ग्रहों तथा नक्षत्रों के प्रभाव से जातक के स्वरुप, स्वाभाव, व्यवहार, गुण अवगुण, भाग्य, आयु, सुख - दुखादि व्यक्ति के पुरे जीवन का ग्रहादि नक्षत्रों के प्रभाव को मनना ही होरा शास्त्र कहा जाता है। आचार्य वराहमिहिर, महेन्द्र सूरी, केशव, गणेश, ढूण्डीराज, नीलकण्ठ, रामदैवज्ञ आदि होरा शास्त्र के अनेक अनेक दैवज्ञ हुए।[3] जिनमें से महर्षि पाराशर द्वारा रचित "बृहत्पाराशर होराशास्त्र" सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार से हम यदि सिद्धान्त (गणित) ज्योतिष को देखें तो यह वैदिक काल में ही मूलरूप से संख्यात्मक रूप में प्रारम्भ हो चुका था और वेदाङ्ग काल आते आते इसका गणनात्मक रूप

---

1 शास्त्री नेमीचन्द्र, भारतीय ज्योतिष, पृ० 20

2 शास्त्री नेमीचन्द्र, भारतीय ज्योतिष, वहीं, पृ० 19

3 शास्त्री नेमीचन्द्र, भारतीय ज्योतिष, पृ० 109-11

हमें प्रथम बार वेदाङ्ग ज्योतिष में ही देखने को मिलता है।[1] वेदों में अनेक स्थलों पर हमें गणना अर्थात संख्यात्मक पद्धति का ज्ञान होता है। और अनेक स्थलों पर संख्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

4.4 वैदिक संहिताओं में गणितीय शब्द

जो वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों तथा वर्तमान में गणितीय शब्दों का प्रयोग किया जाता है उनमें से कई शब्दों को वेदों से यथावत ग्रहण किया है जो कि हमें मूल रूप में वेदों में प्राप्त होते है जैसे –

4.4.1 ऋग्वेद में गणितीय शब्द- अंक[2], अनन्त[3], अक्ष[4], परिवृत[5], पर्व[6], पाद[7], पूर्ण[8], घन[9], योग[10], वृत्त[11], वृद्धि[12], शेष[13], परिधि[14], ज्या[15], भाग[16],

4.4.2 यजुर्वेद में गणितीय शब्द- त्रिभुज[17], आवर्तक[18], न्यून[19], आयतन[20], खर्व[21], अणु[22]

---

1 गणितं मुर्धनस्थितम्। या० ज्यो० - 4
2 ऋ० सं० 1.162.13
3 ऋ० सं० 7.3.1
4 ऋ० सं० 5.53.19
5 ऋ० सं० 2.17.1
6 ऋ० सं० 1.61.12
7 ऋ० सं० 7.32.2
8 ऋ० सं० 1.82.4
9 ऋ० सं० 1.3 6
10 ऋ० सं० 1.5.3
11 ऋ० सं० 1.155.6
12 ऋ० सं० 1.10.2
13 ऋ० सं० 1.93.4
14 ऋ० सं० 1.115.7, वहीं – 3.33.6
15 ऋ० सं० 10.166.3
16 ऋ० सं० 1.20.8
17 मै० सं० 16.18
18 तै० सं० 2.4 7
19 तै० सं० 5.1
20 का० सं० 9.11
21 तै० सं० 2.4 - 9
22 का० सं० 12.13

4.4.3 ब्राहमण आरण्यको में गणितीय शब्द

नवस्त्रक्ति[1], भाजन[2], वर्ग[3], अव्यक्त[4], गुणित[5], आयत[6], क्षय – वृद्धि[7], परिमण्डल[8], प्रमेय[9], क्रय[10], क्रय[10], फलक[11], विकर्ण[12], विमित[13], व्यास[14], शून्य[15], संख्या[16],पृष्ट[17], भाजन[18], समष्टि[19], आदि शब्दों का प्रयोग वेद वेदाङ्गादि सिद्धान्त ज्योतिष ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं

इन सभी गणितीय शब्दों में अव्यक्त, आयत, परिमण्डल, प्रमेय, फलक, व्यास, शून्य, संख्या, पृष्ठ, भाजन, तथा समष्टि इन सभी शब्दों का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि आयत, व्यास, फलक तथा शून्य संख्या आज भी गणितीय शास्त्रों में प्रसिद्ध है। वहीं परिमण्डल शब्द को बौद्ध तथा जैन काल में दीर्घवृत्त के अर्थ में ग्रहण किया गया है। अर्थात परिमण्डल शब्द को दीर्घवृत्त के रूप में प्रयोग किया जाता है। वहीं अव्यक्त वाद को अव्यक गणित तथा अव्यक्त राशि के साथ बहुत प्रयोग देखा जाता है। वहीं समष्टि शब्द को देखेंगे तो समष्टि का प्रयोग सार्वभौम यूनिवर्स तथा पॉपुलेशन सम्बन्धी सांख्यिकीय भावों में प्रयोग किया जाता है।

---

1 ऐ० आ० 2.3
2 श० ब्रा० 1.8
3 शां० आ० 4.7, वहीं.सा० 1.4
4 तै० आ० 4
5 गो० ब्रा० 2.3.7
6 ऐ० 5.5 वहीं, शां० 2.28
7 श० ब्रा० 4.6
8 श० ब्रा० 6.7
9 जै० 1.15
10 शां० 4.6
11 ऐ० आ० 1.2-3
12 ऐ० 4.19, तै० 1.2
13 श० 3.1
14 तै० आ० 1.9
15 श० 2.3
16 श० ब्रा० 7.31-43
17 तां ब्रा० 22.1.3
18 श० 1.8
19 श० 14.6

4.4.4 "शून्य" शब्द व्युपत्ति एवं अर्थ

शून्य शब्द वहीं संस्कृत का "उन" शब्द, अरबी व ग्रीक में बदलकर "वन One" हुआ। संस्कृत का "शून्य" शब्द, अरबी में "सिफर" हुआ, ग्रीक में "जीफर" और अंग्रेजी में "जीरो" हो गया। इस प्रकार भारतीय अंक विद्या एक देश से दूसरे देशों में प्रचलित होते हुए पूरी दुनिया में छाये। दाशमिक पद्धति (Decimal system) में 10 संख्याएँ ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ होती हैं, इनके combination से अनन्त संख्याएँ बन सकती हैं. इन दश अंकों को देवनागरी लिपि में इस प्रकार से लिखा जाता है, की प्रत्येक अंक में "शून्य 0" विद्यमान रहता है. ऋग्वेद में शून का अर्थ बढ़ा हुआ तथा समृद्ध कहा गया है। वहीं सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ में अंण्ड (ब्रह्माण्ड) शून्य होता है। अर्थात वह बढ़ता चला गया और फिर फट गया जिसके फलस्वरूप आकाश की उत्पत्ति हुयी। इस प्रकार शून्य खालीपन और आकाश का प्रतीक माना गया।[1] वहीं महाबीराचार्य ने शून्य के अनेक पर्याय वाची शब्दों का उल्लेख किया है। यथा– आकाश, गगन, अम्बर, ख, नमः, वियत, अनन्त, अन्तरिक्ष, विष्णुपाद तथा दिव शब्दों को आचार्य ने शून्य के पर्यायवाची माने हैं।[2]

4.5 ऋग्वेद में प्राप्त गणितीय स्वरूप

सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में गणना के विषय में कहा गया है कि जो व्यक्ति ग्रह - गणना से अनभिज्ञ है वह मुर्ख के समान है।[3] वहीं अनेक स्थलों पर गणितीय संख्याओं का उल्लेख प्राप्त होते हैं जैसे –

–

यहाँ एक रथचक्र की विशेषता के सन्दर्भ में वेदों में निम्नलिखित संख्याओं का वर्णन प्राप्त होता है।[4]

---

1 उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भरतीय गणित, पृ० 124

2 आकाशं गगनं शून्यंमाम्बरं खं नभो वियत्।
अनन्तमन्तरिक्षं च विष्णुपादं दिविस्मरेत्। गणितसार संग्रह

3 यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ऋ० सं० 5.40.5

4 द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नम्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शंकवोऽपिताः षष्टिनं चलाचलासः॥ ऋ० सं०, 1.164.48

एक - एकं[1], तीन - त्रीणि[2] "त्रिः, त्रि, तिस्रो[3], सात - सप्त[4], आठ - अष्ट[5], बारह - द्वादश[6], साठ - षष्टिः[7]

तीन सौ (300) - त्रिशता[8], सात सौ बीस (720) - सप्त शतानि विंशति[9], अयं त्रिस्सप्त[10]०.......। = 7 x 3 = 21, ..त्रिस्सप्त परमं नाम जानन।[11] 7x 3 = 21

वहीं अन्य मन्त्रों में भी 1 तथा 20 संख्या का उल्लेख स्पष्टतया देखने को मिलता है।[12] वहीं अन्य मन्त्र में एक तथा 5 संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है।[13]

वहीं अन्य मन्त्र में - पृथिवी के अपारत्त्व के विषय में भी वर्णन मिलता है और कहा गया है कि - वह पृथिवी भी इन्द्र के प्रभाव से दश गुना (10 x) छोटी है यहाँ दश गुना छोटी के लिए "दशभुजिरहानि" शब्द

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम।
त्रिनाभिचक्रमजरमन यत्रमा विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ वहीं, 1.164.2

1 वहीं.4.164.48
वहीं, 1.164.2

2 वहीं.4.164.48
वहीं, 1.164.2

3 त्रिनो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थवानि त्रिरुदत्तमद्भ्यः।। ऋ० सं०, 1.34.6
तिस्रो द्यावः सवितुर्दा उपस्था एका यमस्य भुवने बिराषाट्।
अणिम न रथ्यममृताधितस्थुः।। ऋ० सं०, वहीं, 1.35.6

4 सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनाम। वहीं, 1.164.2

5 इन्द्रे॑ण युजा निः सृ॑जन्त वाघतो॑ व्रजं गोम॑न्तमश्विन॑म्।
सहस्रं॑ मे दद॑तो अष्टकर्ण्यः श्रवो॑ देवेष्व॑क्रत ॥ ऋ० 10.62.7

6 वहीं.4.164.48
द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य। वहीं, 1.164.11

7 वहीं.4.164.48

8 वहीं.4.164.48

9 द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वति चक्रं परिद्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः।। ऋ० सं० 1.164.11

10 अयं त्रिस्सप्त दुदुहान आशिरम्। सामवेद, वही, 2.1.17.3

11 तेऽसम्वत् प्रथम नाम गोनाम् त्रिस्सप्त परमं नाम जानन्।
ना जानतीरभ्यनूषत क्षाः आविर्भुवन्नरूणीर्यशसा गावः।। - सामवेद, 2.1.17.3

12 एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥ ऋ० सं० 7.18.11

13 य एकश्चर्षणीनां वसूनाभिरज्यति।
इन्द्रः पञ्चक्षितीनाम्। ऋ० 1.7.9

का प्रयोग हुआ है और वही पृथिवी मनुष्यों से अनन्त गुना बड़ी कही गयी है।[1] यहाँ मन्त्र में दश गुणा एक उपलक्षण मात्र मानना चाहिए अर्थात दश गुना से कही अधिक समझना चाहिए। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समय में ह्रास, वृधी, परिमाण आदि के लिए संख्याओं का उपयुक्त प्रयोग होने लगा था।

ऋग्वैदिक समय में हमें अंकों को लिपिबद्ध करने का उल्लेख मिलता है।[2] जिसमें द्यूत विद्या के सन्दर्भ में वहाँ अक्षरों के ऊपर एक, दो, तीन, चार इत्यादि अंकात्मक पद्धति प्रचलित थी। वहीं ऋग्वेद में अंकों को शब्दों में लिखने का वर्णन मिलता है जैस – "त्रीणि शतानि त्रिसहस्राणि त्रिंशत् च नव च"[3] सबसे पहले ऋगसहिंता में ही हमें बड़ी से बड़ी 99, 1000, 3339 संख्याएँ प्राप्त होती है।

निन्यानवे (99)	-	नवतीर्नव[4]
हजार (1000)	-	सहस्रं[5]
तीन हजार तीन सौ उन्तालीस (3339)	-	त्रीणिशता त्री सहस्राणि त्रिंशत् नव[6]

वहीं ऋग्वेद में 8 संख्या का उल्लेख मिलता है जहाँ ऋषि कहता है कि एक स्थान पर मुझे हजारों गायें मिली जिनके कान पर अष्ट (8) अंक लिखा हुआ था।[7] वहीं अदिति के पुत्रों के लिए भी 8 शब्द का प्रयोग मिलता है।[8]

---

1 यदिन्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः।
अत्राह ते मघवन् विश्रुतं सहोद्यामनु शवसा बर्हणा भुवत्।। ऋ० सं० 1.52.11

2 ऋ० सं० 10.34.2

3 ऋ० सं० 3.9.9.वहीं, 10.52.6

4 इन्द्रो॑ दधीचो अस्थभि॑र्वृत्राण्यप्र॑तिष्कुतः। जघान॑ नवतीर्नव॑। ऋ० 1.84.13

5 इन्द्रे॑ण युजा निः सृ॒जन्त वाघतो॑ व्रजं गोम॑न्तमश्विन॑म्।
सहस्रं॑ मे दद॑तो अष्टकर्ण्य श्रवो॑ देवेष्व॑क्रत ।।ऋ० 10.62.7

6 त्रीणि॑ शता त्री सहस्रा॑ण्यग्निं त्रिंशच्च॑ देवा नव॑ चासपर्यन्।
औक्ष॑न्घृतैरस्तृ॑णन्बर्हिर॑स्मा आदिद्धोता॑रं न्य॑सादयन्त।। ऋ० 3.9.9

7 इन्द्रे॑ण युजा निः सृ॒जन्त वाघतो॑ व्रजं गोम॑न्तमश्विन॑म्।
सहस्रं॑ मे दद॑तो अष्टकर्ण्य श्रवो॑ देवेष्व॑क्रत ।। ऋ० 10.62.7

8 अष्टौ पु॒त्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभि: परा मार्ताण्डमास्यत् ।। ऋ० 10.72.8

वहीं ऋग्वैदिक अक्ष सूक्त में वर्णित द्यूत – विद्या के विषय में बताया गया है जिसमें 53 संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] यथा - तिरपन पासों का समूह सत्यधर्मापालक सूर्यदेव की किरणों की भांति क्रीड़ा करता है।

4.6 यजुर्वेद में प्राप्त गणितीय स्वरूप

यजुर्वेद में देखें तो यहाँ यागादि कर्मों में मुहुर्तादि परिमाण के लिए तथा संख्याओं से कहे जाने वाले सभी श्रेष्ठ पदार्थों का यज्ञ में प्रयोग और उनके फल की प्राप्ति की कामना की गयी है। यजुर्वेद में ये सभी संख्याये सम्वत्सर के सन्दर्भ में लोक के सन्दर्भ में, मास एवं अर्धमास तथा ऋतुओं के सन्दर्भ में, तिथि तथा नक्षत्रों के सन्दर्भ में, कभी छन्द तथा आयु के सन्दर्भ में और कभी तो स्वतन्त्र रूप से यागादि कर्मों में प्रयोग किया जाता रहा है। यथा – तीन लोक[2], बारह मास[3], तेरह मास[4], चौबीस अर्धमास[5], पाँच छः एवं सात ऋतुयें[6], अट्ठाईस नक्षत्र[7], आदि अनेक मन्त्र संख्याओं के सन्दर्भ में प्राप्त होते हैं।

4.6.1 दिवस संख्याएँ एवं उनके देवता

यजुर्वेद में मृत्यु के पश्चात 12 दिवस के बाद पुनर्जन्म होता है जिसके लिए 12 देवताओं की स्तुति की गई है जिनमें से 1 से लेकर 12 संख्या पर्यन्त क्रमानुसार संख्याओं को कहा गया है।

---

1 त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥ ऋ० 10.34.8

2 त्रय इमे लोकाः। तै० ब्रा० 3.8.16.1

3 द्वादश व वै त्रयोदश वा सम्वत्सरस्य मासाः। शतपथ ब्रा० 2.2.3.27

4 अश्वं त्रयोदशं ददाति यस त्रयोदशो मासस्..।ऋ० शांखायन ब्र०, 1.1
अथ यस त्रयोदशं मासं सम्पादयति त्रयोदशं मासमभियजते। वहीं, मै० सं० 1.10.8
मलिम्लुचो नामासि त्रयोदशो मासः। वहीं, काठक सं० 38.14

5 तस्य चतुर्विंशः स्तोमो भवति चतुर्विंशतिर् वै सम्वत्सरस्याऽर्धमासाः सम्वत्सर स्याप्त्यै। ऋ०, शांखायन ब्रा० 19.8
स वा एष सम्वत्सर एव यदग्निष्टोमश् चतुर्विंशत्यर्धमासो वै सम्वत्सरश्चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि। वहीं, ऋ० ऐतरेय ब्रा० 14.2 (3.39)
चतुर्विंशतिमन्वाह चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः साक्षादेव वैश्वानरमवरुन्धे। वहीं, तै० सं० 5.1.8.5

6 पञ्च वा ऋतवः संवत्सरः तै० ब्रा० 2.7.10.2
षट् संपद्यन्ते। षड्वा ऋतवः। वहीं, तै० ब्रा० 1.3.10.3

7 ब्राहमणों व अष्टाविंशो नक्षत्राणाम्। तै० ब्रा० 1.5.3.4

दिवस संख्या	अंक क्रम	देवता
प्रथमे अहन	1	सविता
द्वितीये	2	अग्नि
तृतीय	3	वायु
चतुर्थे	4	आदित्य
पञ्चम	5	चन्द्रमा
षष्ठे	6	ऋतु
सप्तमे	7	मरुत
अष्टमे	8	बृहस्पति
नवमे	9	मित्र
दशम	10	वरुण
एकादशे	11	इन्द्र
द्वादशे	12	विश्वेदेव

यजुर्वेद में हमें 2 से विभाजित न होने वाली 1 से लेकर 33 तक की विषम संख्याएँ (१, ३, ५, ७, ----३३) प्राप्त होती हैं -

4.6.2 यजुर्वेद में विषम रूप में उल्लिखित संख्याएँ

कुछ संख्यायें ऐसी हैं जो विषम संख्याओं के अलावा सम संख्याओं के रूप में तथा समान्तर श्रेणी से चार के गुणज रूप में देखने को मिलती है।

एक अंकात्मक विषम संख्याएँ

एकाचमे	-	एक	1
तिस्रश्चमे	-	तीन	3
पञ्चचमे	-	पाँच	5
सप्तचमे	-	सात	7
नवचमे	-	नौ	9

द्विअंकात्मक विषम संख्याएँ

एकादशचमे	-	ग्यारह	11
त्रयोदशचमे	-	तेरह	13
पञ्चदशचमे	-	पन्द्रह	15
सप्तदशचमे	-	सत्रह	17
नवदशचमे	-	उन्नीस	19
एकविंशतिश्चमे	-	इक्कीस	21
त्रयोविंशतिश्चमे	-	तेईस	23
पञ्चविंशतिश्चमे	-	पच्चीस	25
सप्तविंशतिश्चमे	-	सत्ताईस	27
नवविंशतिश्चमे	-	उनतीस	29
एकत्रिंशश्चमे	-	इकतीस	31
त्रयस्त्रिंशश्चमे	-	तैंतीस	33

इन सभी 1 से लेकर 33 विषम संख्या पर्यन्त कहे जाने वाले सम्पूर्ण श्रेष्ठ पदार्थ मेरे द्वारा किए गए इस यज्ञ के फल के रूप में मुझे प्राप्त हो।[1] ये सभी यज्ञ में प्रयोग होने वाली संख्याये हैं जो की अवश्य ही आधुनिक समय में भी गणना का आधार बनी।

वही कृष्ण यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र में 48 तक की संख्याओं को जो कि 4 के गुणज हैं और साथ ही एक समान्तर श्रेणी का निर्माण करते हैं तथा जिस का प्रथम पद 4 है और अन्तिम पद के रूप में 48 को कहा गया है यहाँ चार आठ बारह सोलह बीस चौबीस अट्ठाईस बत्तीस छत्तीस चालीस चोवालीस और अड़तालीस प्रभृति ये सभी स्वर्गप्राप्य युग्म स्तोम मुझे यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवें।[2]

4.6.3 यजुर्वेद में गुणात्मक रूप में संख्याओं का विभाजन

चतस्रश्चमे	-	चार	4
अष्टौचमे	-	आठ	8
द्वादशचमे	-	बारह	12
षोडशचमे	-	सोलह	16
विंशतिश्चमे	-	बीस	20
चतुर्विंशतिश्चमे	-	चौबीस	24
अष्टाविंशतिश्चमे	-	अट्ठाईस	28
द्वात्रिंशश्चमे	-	बत्तीस	32
षटत्रिंनशश्चमे	-	छत्तीस	36
चत्वारिंशश्चमे	-	चालीस	40

[1] एकाचमेतिस्रश्च्चमे तिस्रश्च्चमेपञ्चचमे पञ्चचमेसप्तर्मे सप्तचमेनवचमे नवचमऽएकादशचम एकादशचमेऽत्रयोदशचमे त्रयोदशचमेपञ्चदशचमे पञ्चदशचमेसप्तदशचमे सप्तदशचमेनवदशचमे नवदशचमऽएकविंश्शतिश्च्चम एकविंशतिश्च्चमेत्रयोविंशतिश्च्चमे त्रयौविंशतिश्च्चमेपञ्चविंशतिश्च्चमे पञ्चविंशतिश्च्चमेसप्प्तविंशतिश्च्चमे सप्प्तविंशतिश्च्चमेनवविंशतिश्च्चमे नवविंशतिश्च्चमऽएकत्रिंशच्च्चम एकत्रिंशच्च्चमे त्रयस्त्रिंशच्च्चमेयुज्ञेनकल्प्प न्ताम्। यजु०, 18/24

[2] यजुर्वेद, 18.25

चतुश्चत्वारिंशश्चमे	-	चौवालीस	44
अष्टाचत्वारिंशश्चमे	-	अड़तालीस	48

इन सभी जोकि चार से गुणित 48 संख्या पर्यन्त 4 से 48 तक कहे जाने वाली सभी संख्याओं से जो श्रेष्ठ पदार्थ मेरे द्वारा दिए गये हैं ये सभी यज्ञ के फल के स्वरूप में मुझे प्राप्त हों।[1] इस प्रकार से हम यह समझ सकते हैं कि वेदों में पूर्व में ही गुणात्मक पद्धति का ज्ञान रहा होगा।

वहीं यजुर्वेद में संख्याओं का वर्णन अन्य स्थलों पर भी देखने को मिलता है यथा – हे ईट ! तुम तीन बार स्तुत होवो चन्द्रमा की पन्द्रह किरणें तुम हो, सतरह ब्योम तुम हो इक्कीस सूर्य तुम हो, अट्ठारह प्रतूर्ति तुम हो उन्नीस तप तुम हो, उन्नीस अभीवर्त तुम हो, बाईस वर्च्च तुम हो, तेइस सम्भरण तुम हो, चौबीस योनि तुम हो, पच्चीस गर्भ तुम हो, सत्ताईस ओज तुम हो, इकत्तीस क्रतु तुम हो, तैंतीस प्रतिष्ठा तुम हो, चौंतीस ब्रह्म के विष्ट तुम हो, छत्तीस नाक तुम हो, अड़तालीस विवर्त तथा चार स्तोम तुम ही हो।[2]

4.6.4 यजुर्वेद में अर्ध संख्याएँ

त्र्यविश्चमे	-	डेढ़ह वर्ष	1½
त्र्यवीचमे	-	डेढ़ह वर्ष	1½
दित्यवाट्चमे	-	दो वर्ष	2
दित्यौहीचमे	-	दो वर्ष	2
तुर्य्यवाटचमे	-	ढाई वर्ष	2½
त्रिवत्साश्चमे	-	तीन वर्ष	3
पंचाविश्चमे	-	पाँच वर्ष	5

1 चतस्रश्च्चमेऽष्टौचमेऽष्टौचमे द्वादशचमे द्वादशचमे षोडशचमे षोडशचमे विंशतिश्च्चमे विंशतिश्चमे चतुर्विंशतिश्च्चमे चतुर्विंशतिश्च्चमेऽष्टाविशतिश्च्चमेऽष्टाविंशतिश्च्चमे द्वात्रिंशच्चमे द्वात्रिंशच्चमे षट्त्रिंशच्चमेषटिशच्चमे चत्त्वारिशच्चमे चत्त्वारिशच्चमे चतुश्च्चत्वारिशच्चमे चतुश्चत्त्वारिशच्चमेऽष्टाचत्वारिशच्चमे यज्ञेनकल्प्पन्ताम्। यजु०, 18/ 25

2 आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूतिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्तः सविंशो वर्णो द्वाविंशः सम्मरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशःप्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपञ्चचतुस्त्रिंशोनाक : त्रिंशोविवर्तोऽष्टाचत्वारिंशो धत्रं चतुष्टोमः। यजु० सं० 14.23

इस प्रकार से संख्याओं से इंगित होने वाले सम्पूर्ण श्रेष्ठ पदार्थो का हवि करके उनके फल की प्राप्ति मनुष्यों द्वारा हो सके।[1]

वहीं एक अन्य मन्त्र में देवताओं से यह कामना की गई है कि उनकी कृपा से हम सौ वर्षों तक देखें, सौ वर्षों तक हमारी नेत्रज्योति बनी रहे, हम सौ वर्षों तक सुखपूर्वक जीवन यापन करें, हम सौ वर्षों तक सुनें अर्थात 100 वर्षों तक श्रवण शक्ति बनी रहें, 100 वर्षों तक शुद्ध स्वरूप वाणी से युक्त रहें[2]। कहने का तात्पर्य है कि 100 वर्षों से ऊपर काल तक हम सम्यक रूप से रहें, इस प्रकार से कामना की गयी है।

वही कृष्ण यजुर्वेद के एक मन्त्र में अग्निदेव को अनेक संख्याओं में नमस्कार किया गया है। जिसमें कहा गया है कि - "अग्नि को प्रणाम है। दो बार नमन। दस बार नमन। सौ बार नमन। हजार बार नमन। असीमित बार नमन। इस प्रकार से यहाँ एक साथ २, 10, 100, 1000 और असीमित संख्या को का गया है।[3] वहीं सामवेद में अग्नि देव की स्तुति करते हुए ऋषि वामदेव विरत पुरुष के स्वरूप का संख्याओं के साथ उल्लेख करते हैं जिसमें कहागया है कि विराट पुरुष हजारों सहस्र (1000) शिर वाला है वह हजारों सहस्र (1000) नेत्रों वाला है और हजारों सहस्र (1000) चरण वाला है वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को सभी और से ढक कर दश (10) अंगुल के हृदय को व्याप्त करके स्थित है।[4] वहीं अन्य स्थान पर इन्द्र की दानशीलता का वर्णन करते हुए संख्याओं का उल्लेख किया गया है "जो कि हजारों और सैकड़ों गौओं के समूह को हवि देने वाले यजमान को देता है।[5] वहीं साम में सोम की स्तुति में भी संख्याओं का उल्लेख मिलता है।[6]

---

1 त्र्यविश्च्चमेत्र्यवीचमे दित्त्यवाट्चमेदित्त्यौहीचमे पञ्चाविश्च्चमेपञ्चावीचमे त्रिवत्सश्चमेत्रिवत्त्साचमे तुर्च्वाट्चमेतुयोही चमेयज्ञेनकल्प्पन्ताम्।।26।

2 पश्येमशरद शतञ्जीवेमशरद शत शृणुयामशरद शुतंप्रब्ब्रवामशरदः शतमदीनास्यामशरदः शतम्भूयश्च्चशरदः शुतात्।।24।।

3 सकृते अग्ने नमः। द्विस्ते नमः। नमः। दशकृत्वस्ते नमः। शतकृत्वस्ते नमः। आस्रहकृत्वस्ते नमः। अपरिमितकृत्वस्तेस्ते नमः।
सक्रते अग्ने नमः। दविस - ते नमः। त्रिस - ते नमः। दशा - कर्मवास - ते नमः। शत - शत - शत - ते नमः। आ - सहस्र - कृतव - ते नमः। अपरिमिता - कर्मवास - ते नमः। कृ० यजु० 4.69

4 सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्। साम.आरण्यक पर्व, 6.4.3

5 त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय महसे। आ पुरन्दरं चकृम निप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे। साम० उत्तरार्चिक, 16.1.2

6 ते नः सहस्रिणां रयिं पवन्तामा सुवीर्यम्। स्वाना देवास इन्दवः। साम, उत्तरार्चिक, 9.2.6

4.6.5 इकाई से परार्द्ध पर्यन्त संख्याएँ

वहीं यजुर्वेद में "प्रथम दशगुणोत्तर संख्या" के विषय में बताया गया है, अर्थात बाद वाली संख्या पहले वाली संख्या से दस गुना अधिक हो।[1] वहीं लीलावती में भी इसी प्रकार से संख्याओं का उल्लेख किया गया है।[2] इसमें संख्या का क्रम इस प्रकार से देखा जा सकता है यथा –

एक	१
दश[3]	१०
शत[4]	१००
सहस्र[5]	१०००
अयुत	१००००
नियुत	१०००००
प्रयुत	१००००००

---

1 इमाः मे अग्ने इष्टकाः धेनवः सन्तु,
एका च दश च, दश च शतं च,
शतं च सहस्र च, सहस्रंचायुते च,
अयुतं च नियुतं च, नियुतं च प्रयुतं च,
प्रयुतं च अर्बुदं च, अर्बुदं च चन्यर्बुदं च,
समुद्रश्च मध्यं च, अन्तश्च परार्धश्च,
एताः मे अग्ने इष्टिकाः धेनवः सन्तु,
अमुत्रामुश्मिन लोके। यजु० वाज० सं० 17.2

2 एकदश शत सहस्रायुत लक्ष प्रयुत कोटयः क्रमश अर्बुदमब्जं खर्वनिखर्व...।।
लीलावती, प्रथम खण्ड, परिकर्माष्टकम, श्लोक 10

3 सकृते अग्ने नमः। द्विस्ते नमः। नमः। दशकृत्वस्ते नमः। शतकृत्वस्ते नमः। आस्रहकृत्वस्ते नमः।
अपरिमितकृत्वस्तेस्ते नमः।
सक्रते अग्ने नमः। दविस - ते नमः। त्रिस - ते नमः। दशा - कर्मवास - ते नमः। शत - शत - शत - ते नमः।
आ - सहस्र - कृतव - ते नमः। अपरिमिता - कर्मवास - ते नमः। कृ० यजु० 4.69

4 सकृते अग्ने नमः। द्विस्ते नमः। नमः। दशकृत्वस्ते नमः। शतकृत्वस्ते नमः। आस्रहकृत्वस्ते नमः।
अपरिमितकृत्वस्तेस्ते नमः।
सक्रते अग्ने नमः। दविस - ते नमः। त्रिस - ते नमः। दशा - कर्मवास - ते नमः। शत - शत - शत - ते नमः।
आ - सहस्र - कृतव - ते नमः। अपरिमिता - कर्मवास - ते नमः। कृ० यजु० 4.69

5 सकृते अग्ने नमः।.......आस्रहकृत्वस्ते नमः। अपरिमितकृत्वस्तेस्ते नमः।
सक्रते अग्ने नमः। दविस - ते नमः। त्रिस - ते नमः। दशा - कर्मवास - ते नमः। शत - शत - शत - ते नमः।
आ - सहस्र - कृतव - ते नमः। अपरिमिता - कर्मवास - ते नमः। कृ० यजु० 4.69

अर्बुद	१००००००००
न्यर्बुद	१०००००००००
समुद्र	१००००००००००
मध्य	१०००००००००००
अन्त	१००००००००००००
परार्ध	१०००००००००००००

इस प्रकार से परार्ध का मान 10^12 दश ख़रब हुआ।[1] वहीं अगर हम रामायण और बौध ग्रन्थों की बात करें तो वहाँ हमें लाख के लिए लक्ष तथा करोड़ के लिए कोटि शब्द प्रयोग में मिलता है जो की यजुर्वेदीय "नियुत, प्रयुत तथा "अर्बुद" से भिन्न है इन्ही का अनुकरण करते हुए ज्योतिष गणितज्ञ आर्यभट ने प्रयुत (दश लाख) के पश्चात दशगुणोत्तर संख्याओं का प्रयोग करते हुए कोटि को एक करोड़ कहा है।[2] वहीं आचार्य श्रीधर ने भी "नियुत" के स्थान पर "लक्ष" का प्रयोग किया है।[3] जब हम इसी गणना के क्रम संख्या को तैत्तिरीय संहिता में देखते हैं तो वहाँ हमें 10^12 से आगे की संख्याओं के नाम देखने को मिलते हैं -

10^13	उसस
10^14	वयुष्टि
10^15	देशयत
10^16	उद्धयत
10^17	उदित
10^18	सुबर्ग
10^19	लोक

---

1 यजुर्वेद 17.2

2 एकं दश च शतं सहस्रमयुतनियुते तथा प्रयुतम्।
कोट्यर्बुदं च वृन्दं स्थानात् स्थानं दशगुणं स्यात्। आर्यभटीय, गणितपाद, श्लो० 2

3 एकं दश शतमस्मात् सहस्रमयुतं ततः पर लक्षम्। त्रिशतिका, श्लो० 2

4.7 अथर्ववेद में प्राप्त गणितीय स्वरूप

अथर्ववेद में भी हमें अनेक गणितीय तथ्यों से सम्बन्धित संख्यांक एवं संख्याएँ एवं मूल गणितीय संक्रियायें प्राप्त होती हैं। वहीं अथर्ववेदीय प्राण सूक्त में ऋषि द्वारा वायु देवता का आवाहन किया गया है जिसमें अनेक संख्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। यथा – वे प्रजापति तथा वायुदेव एक (1) और दस (10) से, (दो) और बीस (20) से, तथा तीन (3) और तीस (30) शक्तियों से विशेष प्रकार से युक्त होकर यज्ञ में पधारें और हमारी मनोकामना पूर्ण करें तथा उन सक्तियों से हमारा कल्याण करें।[1] वहीं अथर्ववेद के शत्रु पराजय सूक्त में भृगु तथा अंगीरा ऋषि के द्वारा इन्द्रदेव की स्तुति की गयी जिसमें अनेक बड़ी संख्याओं का उल्लेख किया गया है।[2] जैसे – हे शूर बीर इन्द्र! यज्ञों में हजारों अर्घ वाले तथा सैकड़ों वीर्य वाले आपका जाल विशाल है इसी जाल से आपने सैकड़ों, हजारों, लाखों और करोड़ों दस्युओं का संहार किया।

(100) सौ – शतं,

(1000) हजार – सहस्रं,

(100000) लाख – अयुतं,

(10000000) करोड़ – न्यर्बुदं) आदि सख्याओं का प्रयोग हुआ है।

4.7.1 अथर्ववेद में विपरीत क्रम में ग्यारह का पहाडा

प्रायः यह होता है कि जब शब्दांक को लिखा जाता है तब इसकी इकाई का मान पूर्व में होता है परन्तु जब इन्हें अंकांकविधि से लिखा जाता है तो उन्हें बाद में लिखते हैं जैसे प्राचीन काल में ही भास्कराचार्य की अंक गणितीय गणना करने के लिए एक प्रसिद्ध उक्ति है जिसे "अंकानां वामतो गति" से

---

1 एकया च दशभिश्च सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च।। अथर्व सं० 7.4.1

2 बृहत् ते जालं बृहत इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुद जघान शक्रो दस्यूनाभिधाय सेनया।। अथर्व सं० 8.8.7

जाना जाता है उसी प्रकार अथर्व के रात्रि सूक्त में ग्यारह का का पहाडा विपरीत क्रम में वर्णित है जिसमें – 99, 88, 77, 66, 55, 44, 33 आदि संख्याओं का उल्लेख मिलता है।[1]

(99) निन्यानवे – नवतिर्नव

(88) अट्ठासी – अशीतिर्ष्टा

(77) सतत्तर – सप्त सप्ततिः

(66) छाषट – षष्टिःषट्

(55) पचपन – पञ्चाशत् पञ्च

(44) चोवालीस – चत्वारश्चत्वारिंशच्च

(33) तैंतीस – त्रयस्त्रिंशच्च

वहीं अथर्व के अन्य सूक्त में ऋषि शुनः शेप द्वारा ग्रीवा रोग निदान के लिए गणितीय अंको का प्रयोग किया है।[2]

4.8 वेदाङ्ग ज्योतिष में उल्लिखित एक अंकात्मक संख्याएँ

जहाँ वेदाङ्ग ज्योतिष एक कालविधान शास्त्र कहा जाता है वहीं काल की सभी सीमाएं बिना गणना के सम्भव नहीं हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि ऋग, याजूष तथा अथर्वण ज्योतिष में अनेक गणित विषय सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। इन सभी गणितीय सामग्री में संख्याओं का उल्लेख, जोड़, घटाव, गुणन, भाग

---

1 ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः।।
षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सम्नयि।
चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि।।
द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।
तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः।। अथर्व सं० 19.47.3-5

2 पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव ।।
सप्त च या सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।।
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।। अथर्व सं० 6.25.1-3

त्रैराशिक नियम आदि कहे गए हैं। इन तीनों वेदाङ्ग ज्योतिष के ग्रन्थों में किस प्रकार से गणितीय प्रक्रियाओं को कहा गया है और किस तरह से वह एक दूसरे से सम्बन्धित हैं इन सभी का हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

ऋगज्योतिष में हमें अनेक संख्याएँ प्राप्त होती हैं। उन सभी संख्याओं को हम तीन भागों में रखेंगे जिन संख्याओं का महर्षि लगध ने अपने वेदाङ्ग ज्योतिष में वर्णन किया है।

प्रथम - एक अंक वाली संख्याएँ

द्वितीय - दो अंक वाली संख्याएँ

तृतीय - तीन अंक वाली संख्याएँ

4.8.1 ऋगज्योतिष में एक अंकात्मक संख्याएँ

एक अंक वाली संख्याओं में 1 से लेकर 9 तक के संख्याओं का प्रयोग ग्रन्थाकार ने यहाँ किया है।

एक[1],

दो[2],

तीन[3],

चार[4],

पाँच[5],

छः[6],

सात[7],

आठ[8],

नौ[9]

---

1 कार्या भाशाष्टकास्थाने कला एकोनविंशतिः। ऋग ज्यो० 31

2 चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्युतौ। वहीं, 8

3 त्रयांशो भाशेषो दिवसस्य...। वहीं, 12

4 चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्युतौ। वहीं, 8

5 पञ्चसम्वत्सरमय- युगाध्यक्ष प्रजापत्तिम्। वहीं, 1

6 धर्मवृद्धिरपा प्रस्थः क्षपाह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेती विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु। वहीं,

7 प्रथम सप्तमं चाहुरयनाय त्रयोदशम्। वहीं, 8

8 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः। वहीं, 10

9 नवभिस्तुद्गतोऽश : स्याधुक्तांशो द्वयद्रिकेन तु। वहीं, 13

4.8.2 याजुष ज्योतिष में एक अंकात्मक संख्याएँ

एक[1],

दो[2],

तीन[3],

चार[4],

पाँच[5],

छः[6],

सात[7],

आठ[8],

नौ[9]।

4.8.3 अथर्व ज्योतिष में एक अंकात्मक संख्याएँ

एक[10],

दो[11],

तीन[12],

---

[1] एकान्तरेऽहि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः। याजुष ज्यो०, 11

[2] सूर्यसंभागान् नभिर्विभज्य शेष द्विरभ्यस्य दिनोपभुक्तिः। वहीं, 26

[3] त्रिभिविहीनं कुडवैस्तु कार्य तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्। वहीं, 24

[4] चतुर्थे दशमं चैव द्विर्युग्माद्यं बहुलेऽप्यतौ। वही, 9

[5] उत्तमानि तु पञ्चान्तः काष्ठा पञ्चाक्षरा भवेत्। वही, 39

[6] त्रिशत्यन्हां सपष्टषष्टिरब्दः पञ्चतंवोऽयने। वहीं, 28

[7] नवकैरूद्गतोऽश : स्याधुतः सप्तगुणो भवेत्। वहीं, 16
प्रथम सप्तमं चाहुरयनाद्य त्रयोदशम्। वहीं, 9

[8] अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ। वहीं, 11

[9] भर्धेऽधिके चापि गते परोंऽशो द्वावुत्तमे तन्नवकैरवेयुः। वहीं, 27

[10] एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक पृथक्। अथर्वण ज्यो० 35

[11] सर्व युग्म छिद्र माहुस्तिथिज्ञाः सामावस्या न द्वितीया दशम्यौ। वहीं, 71

[12] त्रिनक्षत्रा : नवगणास्तेषां कर्मफलं शृणुः। वही, 111
कुज श्रेष्ठ तत्रजाग्रं तृतीया। वहीं, 71

चार[1],

पाँच[2],

छः[3],

सात[4],

आठ[5],

नौ[6]

इन संख्याओं के लिए जिन वैदिक संख्याओं का प्रयोग महर्षि लगध ने किया है उन सभी का नामोल्लेख प्रस्तुत तालिका के माध्यम से देख सकते हैं-

संख्या क्रम	**ऋगज्योतिष**	**याजुष ज्योतिष**	**आथर्वण ज्योतिष**
1	एक एक[7]	एक एक[8]	एक एक[9]
2	दो द्वि[10]	दो द्वि [11]	दो द्वि [12]
3	तीन त्रि[13]	तीन त्रि[14]	तीन त्रि[15]

---

1 चतुर्भिरितरः सार्धमहोभिः सिद्धिगर्हितः। वही, 141

2 पूर्णा गुरौ पञ्चसु पञ्च एते जयावहाः सर्वफलप्रदाय। वहीं, 70

3 नैर्ऋतस्तु पंडगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा। वही 10

4 ध्रुवाणि तत्र चत्वारि चराण्यन्यानि सप्त च। वही, 38

5 मध्येचाष्टौ विजानीयाद् विष्टिपुच्छेत्रयः स्मृतः। वही 54

6 कुज श्रेष्ठ तत्रजाग्रं तृतीया, सर्वारम्भा वर्जनीया नवम्याम्। वही, 7

7 प्रथम सप्तमं चाहुरयनाय त्रयोदशम्। ऋ० ज्यो० 8

8 एकान्तरेऽहि मासे च पूर्वान् कृत्वादिरूत्तरः। याजुष ज्यो० 11

9 एकैकस्यतु यत्कर्म तद्वक्ष्यामि पृथक पृथक्। आथर्वण ज्यो० 35

10 निरेक द्वारशाध्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।ऋ० ज्यो० वहीं० 4
द्विर्युग्मं बहुलेऽप्युतौ। वहीं० 8

11 कला दश सविंशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिके। या० ज्यो० 38

12 सर्व युग्म छिद्र माहुस्तिथिज्ञाः सामावस्था न द्वितीया दशम्यौ। अथर्व० ज्यो० 71

13 तृतीयायां नवम्यां च पौर्णमास्यां त्रिकतिके। ऋ० ज्यो० 33

14 त्रिभिविहीन कुडवैस्तु कार्य तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्। या० ज्यो० 24

15 त्रिनक्षत्रा : नवगणास्तेषां कर्मफलं शृणुः। अथर्व० ज्यो० 111

4	चार चतुर्थ[1]	चार चतुर्थ[2]	चार चतुर्थ[3]
5	पाँच पञ्च[4]	पाँच पञ्च[5]	पाँच पञ्च[6]
6	छः षट[7]	छः षट[8]	छः षट्[9]
7	सात सप्तम[10]	सात सप्तम[11]	सात सप्त[12]
8	आठ अष्टम[13]	आठ अष्टम[14]	आठ अष्ट[15]
9	नौ नव[16]	नौ नव[17]	नौ नव[18]

प्रस्तुत तालिका में ऋग, यजु एवं अथर्वण ज्योतिष में वर्णित एक से लेकर 9 तक की प्रारम्भिक एक अंकात्मक संख्याओं का उल्लेख किया गया है। इन संख्याओं का प्रयोग तीनो लिंगो में किया गया है। यदि मूल वैदिक संहिताओं की बात करें तो वहाँ भी हमें सम विषम संख्याओं के रूप में यही संख्याएँ प्राप्त होती हैं। जोकि वेदों में बीज रूप में विद्यमान है।

---

1 चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्मं बहुलेऽप्युतौ। ऋ० ज्यो० 8
2 चतुर्थ दशमं चैव द्विर्युग्माय बहुलेऽप्यतौ। या० ज्यो० 9
3 चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव चतुर्दशी। अथर्व ज्यो० 68
4 पञ्चसम्वत्सरमय- युगाध्यक्ष प्रजापत्तिम्। ऋ० ज्यो० वहीं० 1
5 उदया वासवस्य स्युदिनराशि : सपञ्चकः। या० ज्यो० 29
6 तिथयः पञ्च विज्ञेया पक्षयोरुभयोरपि। अथर्व० ज्यो० 66
7 षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणा राशिरूच्यते। ऋ० ज्यो० 4
दक्षिणेती विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु। वहीं0 7
8 दक्षिणेती विषयांसः षण्मुहूर्त्ययमन तु। या० ज्यो० 8
9 षडष्टो नव चत्वारि पक्षछिद्राणि वर्जयेत्।
अपि नक्षत्रसम्पन्ना वर्जयेत्तु चतुर्दशीम्। अथर्व ज्यो० 65
10 प्रथम सप्तमं चाहुरयनाय त्रयोदशम्। ऋ० ज्यो० 8
11 या पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणा तिथि :। या० ज्यो० 21
12 सप्तम्यां प्रजा कन्यामष्टम्यामीश्वरः सुतः। अथर्व ज्यो० 146
13 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः। ऋ० ज्यो० 10
14 अर्धयोः पञ्चपर्वाणां मृदू पञ्चदशाष्टमौ। या० ज्यो० 11
15 अष्टमी रोगलाभाय नवम्या निवर्तते। अथर्व ज्यो० 61
16 नवभिस्तुद्गतोऽश : स्याधुक्तांशो द्वयद्रिकेन तु। ऋ० ज्यो० 13
17 भाऽधिक चापि गते परोंऽशो द्वावुत्तमे तन्नवकैरवेयुः। या० ज्यो० 27
18 चतुर्थी नवमी रिक्ता तथैव चतुर्दशी। अथर्व ज्यो० 68

4.9 वेदाङ्ग ज्योतिष में उल्लिखित द्वि अंकात्मक संख्याएँ

वही एक अंकात्मक संख्याओं के पश्चात् वेदाङ्ग ज्योतिष में द्वि अंकात्मक संख्याओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है यह दो अंकों वाली संख्याएँ 10 से प्रारम्भ होकर 99 तक हो जाती हैं। ऋग, याजुष और अथर्वण ज्योतिष में इन 10 से 99 तक की पूरी संख्याओं का पूर्णता से वर्णन तथा क्रम पूर्वक वर्णन तो नहीं मिलता, तथापि अनेक ऐसे पद्य हैं जिनमें दो अंको वाली संख्याओं का उल्लेख हमें प्राप्त होता हैं जो की निम्न प्रकार से हैं -

4.9.1 ऋगज्योतिष में द्वि अंकात्मक संख्याएँ

दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, उन्नीस, बीस, तीस, पचास, साठ, एकसठ, बासठ, बहत्तर आदि इन सभी संख्याओं के लिए जिन वैदिक संख्याओं का प्रयोग ऋगज्योतिष में किया गया है उन सभी का नामोल्लेख प्रस्तुत तालिका के माध्यम से देख सकते हैं।

आर्चज्योतिष

दस - दश[1]	ग्यारह - एकादश[2]
बारह - द्वादश[3]	तेरह - त्रयोदश[4]
चौदह - चतुर्दश[5]	पन्द्रह - पञ्चदश[6]
उन्नीस – एकोन्नविंशति[7]	बीस - विंश[8]
तीस - त्रिंशत[9]	पचास - पंचाशत[10]

1 दशमं चैव। ऋ० ज्यो० 8
2 एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽध चैन्दवा यदि। वहीं, 10
3 पक्षा द्वादशकोद्गताः। वहीं, 10
4 ससप्तक भयुक सोमः सूर्या द्यूनि त्रयोदश। वहीं.18
5 भादान स्याच्चतुर्दश्यां द्विभागेभ्योऽधिकं यदि। वही, 15
6 पक्षात् पञ्चदशाङ्गोध्यं तद्धुक्तमिति निर्दिशेत्। वहीं, 13
7 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोनविंशतिः। वहीं, 11
8 कला दश च विंशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिक। वहीं, 16
9 तत्रिंशद युकलानां तु षट्शती व्यधिका भवेत्। वही, 16
10 नाडिके द्वे मुहूर्तस्तु पञ्चाशत्पलमाढकम्। वहीं, 17

साठ - षष्टिः[1]	एकसठ - एकषष्टिः[2]
बासठ -षष्टयायुतं द्वाभ्यां[3]	बहत्तर - द्विसप्तति[4]

4.9.2 याजुष ज्योतिष में द्वि अंकात्मक संख्याएँ

ऋगज्योतिष के समान ही याजुष ज्योतिष में भी द्वि-अंकात्मक संख्याओं का उल्लेख किया गया है।

दस - दश[5]	ग्यारह - एकादश[6]
बारह - द्वादश[7]	तेरह - त्रयोदश[8]
चौदह - चतुर्दश[9]	उन्नीस -एकोन्नविंशति[10]
इक्कीस - विंशति चएकम्[11]	तीस - त्रिंशत्[12]
इक्कतीस –त्रिंशतसैकिका[13]	पचास - पंचाशत्[14]

---

1 षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते।। वही, 4
2 तदेकषष्ट्या द्विगुण विभक्तं सदादशं स्वादिवसप्रमाणम्। वही, 22
3 वही, 4
4 कनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम्। वही, 11
5 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्।याजुष ज्यो० 13
चतुर्थ दशमं चैव द्वियुंग्मं बहुलेऽप्युतौ। वहीं, 9
6 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्। वहीं, 25
7 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं चापसंयुतम्। वहीं, 13
8 ससप्तेकं भयुक् सोमः सूर्यो पनि त्रयोदश। वहीं, 39
9 भादानं स्याच्चतुर्दश्यां द्विभार्गभ्योऽधिको यदि। वहीं, 17
10 कार्या भाशाष्टकास्थाने कला एकोनविंशतिः। वहीं, 19
11 …..विंशत्या चैकया स्तृणाम्। वहीं० 29
12 तन्त्रिशत् युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्। वही, 38
द्यु त्रिंशत् सावनस्याब्द : सौरस्तृणां सिपर्ययः। वहीं, 31
13 दुहेयं पर्व चेत् पादे पादस्त्रिंशत् तु सैकिका। वहीं, 12
14 पलानि पञ्चाशदपा धृतानि तदादक द्रोणमतः प्रमेयम्।
त्रिभिविहीन कुडवस्तु कार्य तन्नाडिकायास्तु भवेत् प्रमाणम्। वहीं, 24

साठ - षष्टिः[1]	एकसठ - एकषष्टिः[2]
बासठ - षष्टयायुतं द्वाभ्यां[3]	बहत्तर - द्विसप्तति[4]

4.9.3 अथर्व ज्योतिष में द्वि अंकात्मक संख्याएँ

ऋग, याजुष ज्योतिष के पश्चात द्विअंकात्मक संख्याओं का प्रयोग अथर्वण ज्योतिष के पद्यों में किस प्रकार से उल्लिखित हैं आगे तालिका में देखते हैं -

दस - दश[5]	ग्यारह - एकादश[6]
बारह - द्वादश[7]	तेरह - त्रयोदश[8]
चौदह - चतुर्दश[9]	पन्द्रह - पञ्चदश[10]
सोलह - षोडश[11]	सत्रह - सप्तदश[12]
अठारह - अष्टादश[13]	उन्नीस - एकोनविंशति[14]
बीस - विंशतिः[15]	इक्कीस - एकविंशः[16]

1 षष्ट्या षष्ट्या युत द्वाभ्या पर्वणा गशिरूच्यते। वहीं, 13
2 तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्त सद्वादशं स्याद् दिवसप्रमाणम्। वही, 40
3 ह्यूनं द्विषष्टिभागेन जयं सौर सपार्वणम्। वहीं, 37
4 ऊनस्थाने द्विसप्तनि मुद्रपेद्युक्तसम्भवे।। वही, 19
5 दशमं जन्म नक्षत्रात् कर्म नक्षत्रमुच्यते। अथर्वण ज्यो० 105
6 द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करोगणः। वहीं, 106
7 द्वादशीत्वर्थनाशाय सन्धि कुर्यात् त्रयोदशी।
चतुर्दशी चलत्कर्म कौतुकान्यत्र कारयेत्। वही, 63
8 वहीं, 63
9 आद्यं तु शकुनिं नाम रात्रौ कृष्ण चतुर्दशी। वहीं, 36
10 करणं चतुष्पदं नाम कृष्ण पञ्चदशी दिवा।। वही, 37
11 ऋतुः स्वाभाविकस्त्रीणां रात्रयः षोडशः स्मृताः। वहीं, 141
12 मैत्रे सप्तदशं विद्यात् षडविशतिश्चाष्टमम्।
सप्तविंशपरं मैत्रं नवमष्टादशं च यत्। वही, 109
13 वहीं, 109
14 एकोनविंशतिचैव गर्भाधानकमुच्यते। वहीं, 105
15 द्वितीयमेकादशमं विंशतिः सम्पत्करोगणः। वहीं, 106
16 वहीं, 106

बाइस - द्वाविंशम्[1]	तेईस - त्रयोविंशम्[2]
चौबीस - चतुर्विंशम्[3]	पच्चीस - पञ्चविंशम्[4]
छब्बीस - षडविंशतिः[5]	तीस - त्रिंशत्[6]
बतीस - द्वात्रिंशत[7]	साठ - षष्टिः[8]
नब्बे - नवति[9]	छियानवे - षड्नवति[10]

4.10 वेदाङ्ग ज्योतिष में उल्लिखित तीन अंकों की संख्याएँ

वहीं द्वि-अंकात्मक संख्याओं के पश्चात् वेदाङ्ग ज्योतिष में तीन अंको वाली संख्याओं का प्रयोग कम हुआ है यह तीन अंकों वाली संख्याएँ 100 से प्रारम्भ होकर 999 तक हो जाती हैं। ऋग, याजुष और अथर्वण ज्योतिष में इन 100 से 999 तक की संख्याओं का वर्णन जिनमें तीन अंको वाली संख्याओं का उल्लेख हमें प्राप्त होता हैं जो की निम्न प्रकार से हैं -

---

1 क्षेम्यं चतुर्थं द्वाविंशं भवेद्यच्च त्रयोदशम्।
प्रत्वरं पञ्चमं विद्यात्त्रयोविंशं चतुर्दशम्। वहीं, 107

2 वहीं, 107

3 साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठ पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंश तु पोडशं सप्तमं तथा। वहीं, 108

4 वहीं, 108

5 द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता। वही, 91

6 त्रुटीनां तु भवेत् त्रिंशन्मुहूर्तस्य प्रयोजनम्।
द्वादशांगुलमुक्षेपं तस्य छाया प्रमाणतः। वहीं, 5

7 साधकं तु चतुर्विंशं षष्ठ पञ्चदशं च यत्।
नैधनं पञ्चविंश तु पोडशं सप्तमं तथा। वहीं, 108

8 नैर्ऋतस्तु षडंगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा। वहीं, 10

9 नवति षडंगुलाश्चैव प्रतीची तां प्रकाशयेत्।
पुरस्तात् सन्धिवेलायां मुहतों रौद्र उच्यते। वही, 6

10 नैर्ऋतस्तु षडंगुल्यो वारुणो द्वादशांगुलः।
सौम्यः षष्ठिः समाख्यातो भगस्तु परमस्तथा। वही, 10

4.10.1 ऋगज्योतिष में तीन अंकों की संख्या

ऋगज्योतिष में तीन अंकों की संख्या में एक ही संख्या ऐसी है जो तीन अंको वाली है वह संख्या (603) छःसौ तीन[1] है यह दिवस के सन्दर्भ में "छः सौ तीन कलाओं का एक दिवस कहा गया है।

4.10.2 याजुष ज्योतिष में तीन अंकों की संख्याएँ

वहीं याजुष ज्योतिष में तीन अंकों वाली संख्याओं में (124) एक सौ चौबीस[2], एक युग में चन्द्रमा चन्द्रमा के 124 पर्व होते हैं। (134) एक सौ चौंतीस, "एक युग में चन्द्रमा के 134 अयन होते हैं।[3] वहीं (135) एक सौ पैंतीस[4], (366) तीन सौ छयासठ[5], वर्ष में 366 दिवस[6]। तथा (603) छः सौ तीन[7], तीन[7], आदि।

4.10.3 आथर्वण ज्योतिष में तीन अंकों की संख्याएँ

अथर्वण ज्योतिष में प्राप्त होने वाली 3 अंकों वाली संख्याओं में सिर्फ एक प्राप्त होती है वो है (100) सौ।[8] इन सभी संख्याओं के लिए जिन वैदिक संख्याओं का प्रयोग वेदाङ्ग ज्योतिष में किया गया है उन सभी सभी का नामोल्लेख प्रस्तुत तालिका के माध्यम से किया गया है।

---

1 कला दश च विशा स्याद् द्वे मुहत्तस्य नाडिके।
तत्रिशद् धुकलाना तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्। ऋग ज्यो, 16

2 पर्वणां स्याच्चतुष्यादी काष्ठानां चैव ताः कला ॥ याजुष ज्यो, 30

3 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यूषेः। वहीं, 30

4 पञ्चत्रिंशं गतं पौष्णमिति। यत् पौष्णं सौरमयनमुदगयनाद् यमुक्तं
तदृषेश्चन्द्रस्यायनानि पञ्चत्रिंशं शतमेकोनं चतुर्विंशं शतं भवतीति वाक्यशेषः। सोमाकर भाष्य, वहीं, 30

5 त्रिशत्यहां सषट्षष्टिरब्दः पञ्चर्तवोऽयने।
नासा द्वादश सूर्याः स्युरेतत् पञ्चगुण युगम्। वहीं, 28

6 एवमेतत् पूर्णमासस्य दर्शस्य चन्द्रसूर्यसम्बन्धेन पर्वसञ्चोदनया यागकालं
प्रतिपाद्यावयवानां संख्या तेन कालनिष्पत्तिप्रतिपत्त्यर्थमाह त्रिशत्यहां सषट्षष्टिरब्दः इति। सोमाकर भाष्य, वहीं, 28

7 कला दश सविशा स्याद् द्वे मुहूर्तस्य नाडिके।
तन्त्रिशत् युकलानां तु षट्शती त्र्यधिका भवेत्। वही, 38

8 चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तस्तस्माच्चन्द्र बलाबलम्।
समीक्ष्य चन्द्रस्य बलाबलानि ग्रहाः प्रयच्छन्ति शुभाशुभानि।
मनः समेतानि यथेन्द्रियाणि कर्माण्यथा यान्ति न केवलानि।। आथर्वण ज्यो० 92

ऋग ज्योतिष	छः सौ तीन - षट्शतीत्र्यधिका[1]				
याजुष ज्योतिष	एक सौ चौबीस - चतुर्विंशंशतं[2]	एक सौ चौंतीस - एकोन चतुस्त्रिंशंशतं[3] चतुस्त्रिंशंशतं[3]	एक सौ पैंतीस -पञ्चत्रिंशं शतं[4]	तीन सौ छयासठ –त्रिंशत सषट्षष्टिः[5]	छः सौ तीन - षट्शती त्र्यधिका[6]
अथर्वण ज्योतिष	सौ - शत[7]				

4.11 तुलनात्मक विश्लेषण

जहाँ अभि तक हमने देखा कि मूल वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में शून्य से लेकर अरब खरब आदि बड़ी से बड़ी संख्याओं का उल्लेख प्रचुर मात्रा में किया गया है जो कि गणित तथा ज्योतिष शास्त्रों के प्राचीन ग्रन्थों भी प्राप्त होता है परन्तु वेदाङ्ग ज्योतिष के तीनो ऋग याजुष तथा अथर्वण भाग में लक्ष अर्बुद न्यर्बुद आदि बृहद गणितीय संख्याओं का उल्लेख नही किया गया है परन्तु तीनो (ऋग, याजुष, अथर्व) वेदाङ्ग ज्योतिष में कुछ सीमित संख्याओं के साथ साथ गणितीय संक्रियाओं जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदि प्रक्रियाओं और त्रैराशिक आदि विधियों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है जो कि तीनों वेदाङ्ग ज्योतिषीय ग्रन्थों में एक तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता है इस प्रकार से तीनों भागों में सामान रूप से ज्योतिषीय काल गणना का उल्लेख किया गया है।

---

1 वहीं, ऋग ज्यो, 16
2 वहीं, याजुष ज्यो, 30
3 वहीं, 30
4 वहीं, 30
5 वहीं, 28
6 वहीं, 38
7 वहीं, आथर्वण ज्यो० 92

4.12 वेदाङ्ग ज्योतिष में त्रैराशिक नियम विधि

त्रैराशिक विधि के सन्दर्भ में सर्वप्रथम हमें वेदाङ्ग ज्योतिष में उल्लेख प्राप्त होता है। जिसको हम ज्योतिषीय गणना की विधि भी कह सकते हैं। यह त्रैराशिक नियम एक गणितीय विषय है जो अंकगणित के लिए परम उपयोगी है। वेदाङ्ग ज्योतिष में त्रैराशिक विधि के सन्दर्भ में इस प्रकार से है "वेध के द्वारा ज्ञात राशि को प्राप्त करके (पदार्थ का ज्ञान कर, उसके बाद ज्ञेय राशि में उस पदार्थ का आनयन करके, गणना करके, ज्ञान राशि सम्बंधिगत होने से गुणा करने के उपरान्त) गत ज्ञान राशि के द्वारा विभाजित कर देना चाहिए। (जो लब्धि होगी वह ज्ञेयराशिसम्बन्धी उस पदार्थ का मान होगा)।[1] वहीं त्रैराशिक के सन्दर्भ में अन्य ज्योतिर्विदों ने अपने मत प्रस्तुत किये हैं जैसे - आर्यभट प्रथम ' ने त्रैराशिक नियम की व्याख्या करते हुए लिखा है कि त्रैराशिक विधान में फलराशि को इच्छा राशि से गुणित करें और प्रमाणराशि से विभाजित करें, तब अभीष्ट फल प्राप्त होता है।[2] उन्होंने इसे व्यस्त त्रैराशिक कहा है क्योंकि यदि प्रमाण राशि (प्रथम राशि) से इच्छा राशि बड़ी होती है तो अभीष्ट फल (चतुर्थ राशि भी), दिये गए फल से बड़ा होता था। किन्तु यदि इच्छा राशि के बढ़ने पर अभीष्ट फल कम होता जाए तो इस त्रैराशिक को व्यस्त त्रैराशिक कहते हैं।[3] भास्कर द्वितीय के अनुसार इसमें प्रमाण और फल राशियों को गुणा करके, इच्छा राशि से भाग देकर अभीष्ट फल को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार आदि व अन्त राशि समान जाति की हों तो यह सम त्रैराशिक तथा विषम जाति के हों तो व्यस्त त्रैराशिक कहलाता है। व्यस्त का अर्थ ' विपरीत ' है अर्थात् गुणा के स्थान पर भाग व भाग के स्थान पर गुणा की जाए।[4]

वहीं कुपन्ना शास्त्री त्रैराशिक विधि को Rule of three (for obtaining the desired result) माना है। वहीं सुधाकर पण्डित ने त्रैराशिक नियम को वेध का उपाय बताया है उनके अनुसार वेध से ज्ञात राशि

---

1 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्यह्नः प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना। वेदाङ्ग ज्योतिष, श्लो० 42

2 त्रैराशिकफलराशिं तमथेच्छाराशिना हतं कृत्वा।
लब्ध प्रमाणभाजितं तस्मादिच्छाफलमिदं स्यात्।। लीलावती, त्रैराशिकम् – 8

3 इच्छावृद्धौ फले ह्रासो ह्रासे वृद्धिः फलस्य तु।
व्यस्तत्रैराशिकं तत्र ज्ञेयं गणितकोविदैः।। वहीं, लीलावती, त्रैराशिकम्- 8

4 विपरीतमस्तं व्यस्तं गणित व्यस्तत्वं च गुणाभागहार विपर्यासात्। श्रीधर - पाटीगणित, टीकाकार रचित, पृ.- 43

को प्राप्त करके, किसी भी पदार्थ को जानने के लिए, ज्ञेय राशि में, उस पदार्थ के आनयन के लिए गणक को ज्ञान राशिसम्बंधिगत पदार्थ से गुणा करके ज्ञेयराशि को ज्ञान राशि से विभाजित कर देना चाहिए। प्राप्त हुआ फल ज्ञेयराशि से सम्बन्धित उस पदार्थ का मान होगा। इस प्रकार ज्ञान राशि के द्वारा बार-बार सब सावन दिवसों की कल्पना की जानी चाहिए। वहीं बलदेव उपाध्याय ने गणितीय शब्दावली का प्रयोग करते हुए त्रैराशिक शब्द को त्रिराशि से सम्बद्ध माना है। ये 3 राशियां इस प्रकार से हैं - प्रमाण राशि, फल राशि तथा इच्छा राशि हैं।[1]

इस त्रैराशिक नियम में 3 राशियां प्रमाण राशि, फल राशि और इच्छा राशि दी होती है और चतुर्थ राशि अज्ञात होती है जिसका मान -

$$\frac{\text{इच्छा राशि x फल राशि}}{\text{प्रमाण राशि}}$$ इस नियम से निकाल लेते हैं

उदहारण रूप में - यदि १०० पुस्तकों का मूल्य ५०० है, तो ४०० पुस्तकों का मूल्य कितना होगा?

इस प्रकार से यहाँ - प्रमाण राशि १०० फल राशि ५०० तथा इच्छा राशि ४०० है इसलिए अभीष्ट राशि का मान

$$४०० \text{ x } \frac{५००}{१००} = २००० \text{ रुपए होगा}$$

भास्कराचार्य अपनी कृति लीलावती में त्रैराशिक नियम की प्रशंसा करते हैं[2]। वे कहते हैं त्रैराशिक नियम ही समस्त अंकगणित है और विमलबुद्धि ही बीजगणित है

4.13 वैदिक साहित्य में योग (जोड़) व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

जब किसी संख्या या अंक में एक या एक से अधिक संख्या या अंक को मिलाया जाता है तो उसे जोड़ अथवा योग कहते हैं। जोड़ को गणित शास्त्र में + के चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है। जिसे धन कहा

---

[1] शर्मा पुनीता, लगध ज्योतिष, सुयशा हिन्दी टीका, पृ० 292

[2] अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमला मतिः।
किमज्ञातं सुबुद्धीनामतो मन्दार्थ मुच्यते।। लीलावती, त्रैराशिकम्

जाता है यह जोड़ दो प्रकार का है एक धनात्मक तथा दूसरा ऋणात्मक।[1] योग शब्द का जोड़ के अर्थ में तथा युति के अर्थ में प्रथम प्रयोग हमें महाभारत तथा वक्षाली पाण्डुलिपि में मिलता है।[2] योग शब्द युजिर् धातु घञ् प्रत्यय के संयोग से बना है युजिर् का अर्थ योग करना है।[3] योग शब्द ऋग्संहिता में सर्वप्रथम घोड़े आदि को जोड़ने के लिए जुआ लगाने के अर्थ में होता था।[4] वहीं अन्य स्थान पर इस प्रक्रिया के लिए "च"[5] तथा "साकम्"[6] शब्दों का उल्लेख भी किया गया है। वहीं जोड़ने के अर्थ में संकलित (संकलन) शब्दों का प्रयोग भी वक्षाली पाण्डुलिपि में प्राप्त होता है जो की बाद में ब्रह्मगुप्त ने अपनी गणित की 20 क्रियाओं में संकलितादि का प्रयोग किया।[7] वहीं बलदेव उपाध्याय जोड़ने के अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख करते हैं जैसे – अभ्यास, एकीकरण, संकलन, संकलित, मिश्रण, सम्मलेन, सम्मिलन, सम्मीलन, मिलन, प्रक्षेपण, संयोजन, युक्ति, योजन, योजना,युति और समास आदि का प्रयोग किया है।[8] वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में देखें तो वहाँ एक स्थान पर जोड़ने के अर्थ में "आवाप" शब्द का प्रयोग किया गया है।[9] वहीं अन्य स्थान पर "अभ्यस्त" शब्द का प्रयोग किया गया है जो की गुणन तथा जोड़ दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।[10] वहीं आपस्तम्भ धर्मसूत्र में भी जोड़ने के अर्थ में "अभ्यास' तथा "अभ्यस्त" शब्दों का प्रयोग किया गया है।[11]

---

1. Wikipedia.org.com
2. वक्षाली पाण्डुलिपि, भाग 3, पृ० 161
3. महा० सि० 15 – 21
4. उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भरतीय गणित, पृ० 147
5. येते रात्रि नृचक्षसो दष्टारो नवतिर्नव। अथर्व० 19.47.3
   त्रीणि शता त्री सहस्राण्यगिं त्रिंशच् च देवा नव चासपर्यन्।
   औक्षन् घृतैर अस्तृणन् बर्हिर अस्मा आद्इद् धोतारं न्यसादयन्त। ऋ० 3.9.9
   त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिशच्च देवा नव चासपर्यन।
   औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरम्मा आदिद्घोतारं न्यसादयन्त। वही 10.52.6
6. अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवती : शम्बरस्य।
   शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासम् अतिथिग्वं यद् आवम्। वही 4.26.34
7. परिकर्म विंशति यः संकलिताद्यां प्रिथग्वि जानाति।
   अष्टौ व व्यवहारान् छायान्तान् भवति गणकः सः। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, अध्याय 12
8. उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित, पृ० 149
9. आवापस्त्वयुजे द्वौ स्यात पौलस्त्येस्तं गते परम्। वेदाङ्ग, याजु० ज्यो० 16
10. निरेकं द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
    षष्ट्या षष्ट्या युतं द्वाभ्यां पर्वणां राशिरुच्यते ॥ वेदाङ्ग ऋ० ज्यो० 4
11. त्रिक चतुष्कयोः पंचिकाक्ष्ण्यारज्जुः।
    ताभिस्त्रिरग्या ताभिरसौ चतुरभ्यस्ताभिश्श्रोणी आप० धर्म० पृ० 761

गणित की जोड़ने की प्रक्रिया को आंग्लभाषा भाषा में Addition कहा गया है वहीं इसके सन्दर्भ में कहा गया है कि दो संख्याओं को एक साथ जोड़ना ही Addition कहलाता है।[1]

4.14 वैदिक साहित्य में व्यकलन (घटाना) व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

जोड़ने की प्रक्रिया के विरुद्ध प्रक्रिया को घटाना कहते हैं। घटाने को गणितीय शास्त्रों में – चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है जिसे कि ऋणात्मक चिन्ह भी कहते हैं।[2] घाटाना शब्द 'घट" धातु के णिजन्त रूप घाटयति से बना है जिसका अर्थ हानि पहुँचाना है।[3] जब किसी राशि में से कुछ घटाया जाय तो उस घटाने की की क्रिया को व्यकलन या व्यकलित कहा जाता है।[4] व्यकलित शब्द वि+अव+कल "संख्याने" धातु से कर्ताकारक के अर्थ में क्त प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है यहाँ 'नपुंसकेभावेक्तः" से क्त प्रत्यय हुआ है। व्याकलन और व्यकलित दोनों भावार्थक शब्द हैं अर्थात दोनों का अर्थ घटाना है।[5] गणितीय प्रक्रिया घटाने के अर्थ में दैवज्ञों ने अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख किया है जिनमें से व्यकलन, पातन, विशोधन, व्युत्कलित, व्युत्कलन, विशोधन तथा वियोजन आदि शब्दों का प्रयोग किया है।[6] महावीराचार्य ने घटाने के अर्थ में व्यकलित "व्युत्कलितमतोष्टमम्" शब्द का प्रयोग किया है।[7] वहीं भास्कराचार्य ने अपने ज्योतिष गणित ग्रन्थ लीलावती में घटाने के अर्थ में व्यकलन शब्द का प्रयोग किया है।[8] वही श्रीधर ने पाटीगणित में घटाने के अर्थ में अपगम[9] तथा क्षयात्मक[10] शब्द का प्रयोग किया है। वहीं "ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त" में आचार्य

---

1 The process of finding the sum of two numbers called is Addition.In the elementary arthmetic of whole numbers, addition can be regard as the process of accumulating sets of objects.
Tanton, James – Eycyclopedia of Mathematies Facts on file, New york, 2005, P.6

2 Wikipedia.org.com

3 उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भरतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली 1978, पृ० 149

4 संख्यावतां बहूनामेकीकरणं तदेव सङ्कलितम्।
यदपास्तं सर्वधनात् तद्वयवकलितं तु शेषकं शेषम्। महा० सि० 15 – 2

5 प्राचीन भारतीय गणित, वहीं, पृ० 150

6 प्राचीन भारतीय गणित, वहीं, पृ० 150

7 प्राचीन भारतीय गणित, वहीं, पृ० 150

8 यदि व्यक्ते युक्तिर्यवकलन मार्गेऽसि कुशला। लीलावती, पृ० 6

9 मखयोजनापगमे "। श्रीधर, पाटीगणित, पृ० 94

10 अभ्यधिकपदस्यैवं विजये संख्या प्रजायते पुंसः।
संख्या क्षयात्मिका चेद् भवति जयो हीनगच्छस्य। वही, पृ.145

ब्रह्मगुप्त ने घटाने के अर्थ में व्यकलित और शोधन शब्दों का प्रयोग किया है।[1] वहीं आर्यभट द्वितीय के अनुसार सर्वधन में से कुछ घटाने को व्यकलित कहते हैं और जो बचता है उसे शेष कहते हैं।[2] वहीं Oxford Dictionary में इसे Subtract कहा गया है एक संख्या में से दूसरे का हटाना ही Subtract है।[3] वहीं आंग्लभाषा में इसे Subtraction कहा जाता है यहाँ दो संख्याओं के मध्य के अन्तर को जानने की विधि को ही Subtraction कहा है।

4.15 वैदिक साहित्य में गुणज- व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

जब किसी संख्या अथवा अंक में उसी संख्या अथवा अंक को एक या एक से अधिक बार जोड़ा जाये तो उसे गुणा कहा जाता है।[4] जिसे कि आंग्लभाषा में Multiplication कहा गया है वहीं अन्य परिभाषा में जो समान संख्याओं वाले कई समूहों के संग्रह का मान हो उसे Multiplication कहा गया है।[5] इस गुना को को गणितशास्त्र में x के चिन्ह से प्रदर्शित किया गया है।[6] वेदों में गुणन प्रक्रिया के लिए स[7] प्रत्यय, धा[8], वृत्त[9] धा[8], वृत्त[9] तथा कृत[10] आदि प्रत्ययों का प्रयोग तथा गुणित[11] शब्दों का प्रयोग किया गया है। गुणन प्रकिया का

---

1 अव्यक्तवर्गधनवर्गवर्गपञ्चगत षड्गतादीनाम्।
तुल्यानां संकलितव्यवकलिते पृथगतुल्यानाम्। ब्र० सि०, 18-41

2 महा सिद्धान्त, अध्याय 15 श्लो० 2

3 Deduct (a part-quantity or number) from another- Webster.
Thomas- Illustrated Oxford Dictionary.Oxford University Press.New york.2006 830

4 Wikipedia.org.com

5 The process of finding the product of two numbers is called Multiplication.In elementary arithmetic, multiplication can be defined as the process of finding the total number of elements in a collection of sets where each set in that covection has the same number of elements. Tanton, James - Eyeyelopedia of Mathematics, Facts on file, New york, 2005

6 वहीं, www.Wikipedia.org.com

7 द्विर्दश - ऋ; 1.53.9

i त्रिः एकादशा : त्रयस्त्रिंशाः। काठ० सं० 38.11

8 द्विधा। वही 10.56.6

9 द्विवद् हिरण्यं दक्षिणा। काठक संहिता 11.4

10 सकृत। 1.105.18

11 अथ वासः। द्विगुण वा चतुर्गुणं वा प्राग्दशं वादग्दश वोपस्तृणाति तदाज्ञानं मिमीते स यदाज्ञान मिमीते तस्मान्मात्रा मनुष्येषु मात्रो यो चाप्यन्या मात्रा। शत - बा 3-3-2-9

का रूप सर्वप्रथम हमें अथर्ववेद में देखने को मिलता है।[1] वहीं गोपथ ब्राह्मण[2] तथा वेदाङ्ग ज्योतिष[3] ग्रन्थों में में प्राप्त होता है। गुणा को स्पष्ट करने के लिए इसके लिए विद्वानों ने गुण्य, गुणक, गुणाकार, गुणनफल तथा प्रत्युत्पन्न भी कहा है। जिस संख्या को गुणा किया जाता है गुण्य कहा गया है और जिसके द्वारा गुणा किया जाये उसको गुणक या गुणाकार और गुणा करने से जिस संख्या की प्राप्ति हो उसे गुणनफल या प्रत्युत्पन्न कहते हैं।[4] वहीं गुणाकार तथा गुणकर शब्द का उल्लेख वक्षाली पाण्डुलिपि[5] तथा आर्यभट्टीयम[6] में भी मिलता है। वहीं गुणन के लिए अनेक पर्यायवाची जैसे- हनन, वध, अभिहित, आहन, कुट्टन, समाहति, प्रहति, घात, क्षय, आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[7] वहीं देखा जाये तो आर्यभट[8], ब्रह्मगुप्त[9] आदि ज्योतिष गणितज्ञों द्वारा गुणन प्रक्रिया के लिए प्रयोग होने वाले पर्यायवाची शब्द हनन, वध आदि का प्रयोग देखा जाता है। ब्रह्मगुप्त द्वारा चार गुणन विधियों को कहा गया है जो कि गोमूत्रिका, खण्ड, भेद और इष्ट नाम से वर्णित हैं।[10] वहीं आचार्य श्रीधर इसकी चार रीतियाँ कहते हैं जो कपाट सन्धि, तस्थ, रूप विभाग, स्थान विभाग नाम से उल्लिखित हैं।[11]

4.16 वैदिक साहित्य में भाग- व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

भाग अर्थात जब किसी संख्या अंक में किसी संख्या अथवा अंक को एक से अधिक बार घटाया जाता है तो उसे भाग कहा जाता है। जितनी भी बार अंक अथवा संख्या को घटाया जाता है उतनी ही बार

---

1 पुण्डरोक नवद्वार त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद वै ब्रह्मविदो विदुः अथर्व : 10-8-43

2 चासुसम्भृतस्त्रेधा वित्तः, प्राणोऽपानो व्यान इति ततोऽन्यत्र गुणितस्तथाह, यजमान सर्वमायुरेव्यस्मिल्लोह आर्नोत्याप्रोत्यमृतत्त्वमक्षितं स्वर्गे लोके - गो.ना.2.3.7

3 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्टया षष्टया युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। ऋग ज्यो० 4

4 उपाध्याय बलदेव, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, पृ० 90

5 वक्षाली पाण्डुलिपि, पृ० 187

6 आर्यभटीय, ग० पा० 23

7 उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित, वहीं, पृ० 155

8 त्रैराशिक फलराशिं तमथेछा रशिना हतं कृत्वा..। आर्य०, ग० पा०, 19, 26

9 गुण्येष्टवधो न युतो...। ब्रह्म० सि० 12, 55-56

10 गुणकार खण्डतुल्यो गुण्यौ गोमूत्रिकाक्रतो गुणितः। सहित : प्रत्युत्पन्नो गुणकारक भेदतुल्यो वा। गुण्यो राशिगुणकारराशिनेष्टधिकोनकेन गुणः। गुण्येष्टवधो न युतो गुणकेभ्यधिकोनके कार्या ब्र.सि.– 12, 55-56

11 दत्त विभूतिभूषण एवं सिंह अवधेश नारायण, हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, प्रकाश व्यूरो, नखनऊ, 1956, पृ० 125

भाग देना होता है। गणित शास्त्र में भाग को प्रदर्शित करने के लिए ÷ या / चिन्ह का प्रयोग किया जाता है।[1] भाग शब्द भज् (विश्राणने) धातु घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। विश्राणन का अर्थ है बांटना है।[2] ऋग्वैदिक काल से ही भाग शब्द का प्रयोग होता था जोकि "हिस्सा" अर्थ में प्रयुक्त होता था जैसे यज्ञादि का भाग अथवा हिस्सा।[3] वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में तिथियों के जोड़ गुणन की प्रक्रिया में भाग की क्रिया को भी निरूपित किया गया है।[4] भाग की क्रिया के लिए प्रयुक्त होने वाले अनेक पर्यायवाची हैं जिनमें से भाजन, विभाजन, विभाग, भागहर, छेद, हरण, आदि।[5] जिस संख्या या अंक में भाग दिया जाए उसे भाज्य, विभाज्य, छेद्य तथा हार्य कहते हैं और जिस संख्या या अंक से भाग दिया जाये उसे भाजक, छेदक, भागहार, हार अथवा हर कहते हैं। भाग देने में जितना "बार" जाए उसे लब्ध अथवा लब्धि कहा जाता है यहाँ बार का अर्थ आवृति समझना चाहिए भाज्य का भाजक से छोटा अंश जो बचा रहता है उसे शेष कहा गया है।[6] आंग्लभाषा में भाग शब्द के लिए Division शब्द का प्रयोग किया जाता है और वहाँ वहाँ Division शब्द का स्पष्टीकरण किसी संख्या में दूसरी संख्या को बार बार घटाने की प्रक्रिया को Division कहा है।[7] वहीं विपरीत त्रैराशिक नियम का वर्णन करते हुए भागहार का उल्लेख किया है।[8]

---

1 www.wikipedia.org.com

2 उपाध्याय बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 159

3 अधारयन्त वह्नयो भजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञं। ऋग्वेद संहिता 1.20.8

4 तिथिमेकादशाभ्यस्ता पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत् ॥ या० ज्यो० 20

5 प्राचीन भारतीय गणित, वहीं, पृ० 160

6 वहीं 160

7 The process of finding the quatient of two numbers is called division.In elementary arthmetic, the process of division can be viewed as repeated Subtration.–
Tanton James - Encyclopedia of Mathematics, Facts on file, New york, 2005

8 गुणकारा भागहरा भागहरा ये भबन्ति गुणकाराः।
य, क्षेपः सोपचयोऽपचयःक्षेपस्य विपरीते। ग० पा० पृ० 27

4.17 ऋग्ज्योतिष – संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग

4.17.1 ऋग ज्योतिष में संकलन (जोड़)

ऋग्ज्योतिष में प्राप्त होने वाले संकलन, व्यकलन, गुणन तथा भाग के अनेक उद्धरण जो यहाँ कालगणना के लिए मास, पक्ष, तिथि, पर्व, अयन, त्रैराशिक, दिवस, मुहूर्त, सूर्य तथा चन्द्र आदि के माध्यम से प्रस्तुत हैं।

ऋग ज्योतिष में प्राप्त सङ्कलन विधि (जोड़) से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्गों का उल्लेख किया गया है जिन्हें हम यहाँ निम्नलिखित रूप में देख सकते है -

वर्तमान सम्वत्सर में एक घटाकर जो शेष बचे उसमें 12 का गुणा करके **गत मास को जोड़ देवें** फिर गुणनफल को दुगना करें फिर 60 के प्रत्येक पर्यय में दो दो जोड़ते जाएँ यही चान्द्रपर्वो की राशी कही जाती है।[1]

पर्व में चन्द्र नक्षत्र की आयन विधि - वर्तमान सम्वत्सर को बारह मासों से गुणा करके मासों को द्विगुणित करके पक्ष में बदल दो, वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्रमा के नक्षत्र के अंश होते हैं, यदि चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व के आये **भांश में आधा जोड़ें**।[2]

पर्वभांश कलाओं की आयन विधि - नक्षत्रांशों के चार स्थानों पर 19 कलायें करनी चाहियें तथा हीन स्थान पर अर्थात हीन जातीय काष्ठा के स्थान पर 72 में 12 को जोड़कर 84 काष्ठा कर लेनी चाहिए। वहीं अन्य प्रकार से "नक्षत्रों की प्रत्येक चार - चार के समूह में 21 कलायें हैं और 21 कलाओं को 4 से गुणने पर 84 काष्ठा ही आ जाते हैं।[3]

---

1 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। ऋग ज्यो० 4

2 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि। ऋ० ज्यो० 10

3 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोनविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम। ऋ० ज्यो० 11

इष्ट तिथि के तुल्य गत नक्षत्र के कलाओं की आयन विधि – पूर्वोक्त प्रकार से पर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त की गयी, उस तिथि में **सात गुनी कलाएं जोड़ें**, आयी हुयी लब्धि को तिथि के तुल्य गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला समझें। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से गुणित **तिथि को जोड़ें**।[1]

ऋतुशेष अथवा अधिशेष - प्रत्येक पर्व में चान्द्रदिन भाग में से जो तिथि का आधा भाग शेष बचता है चान्द्र सौर पर्वान्तर पर्वों की संख्या के साथ जोड़ने पर जो आये उसे इष्ट पर्व समय में रवि चन्द्र पर्वान्तर समान ऋतुशेष समझना चाहिए।[2]

4.17.2 ऋग ज्योतिष में व्यकलन (घटाव)

ऋग ज्योतिष में गणित शास्त्र के इस व्यकलन विधि (घटाव) प्रक्रिया का कालविधान के सन्दर्भ में कई स्थलों पर प्रयोग हुआ है। जोकि व्यकलन से सम्बन्धित कुछ प्रसङ्ग प्रस्तुत किये गये है।

पर्वराशि आनयन विधि - पञ्चसंवत्सरात्मक युग की वर्तमान अब्द (सम्वत्सर) **संख्या में से एक घटाकर** जो शेष बचे उसमें बारह का गुणा करें, फिर उसमें गत माह जोड़ें, योग को द्विगुणित करें, साठ के प्रत्येक पर्यय में दो - दो जोड़ें यह पर्वो की राशि होती है।[3]

दिवस रात्रि वृद्धि ह्रास मान - सूर्य के उत्तरायण में होने पर जल के एक प्रस्थ जितना दिनमान (एक प्रस्थ दिनमान वृद्धि का अर्थ 4/61 नाड़ी वृद्धि है) बढ़ता है और रात्रि घटती है। ठीक इसके विपरीत दक्षिणायन की स्थिति होती है। जिसमें अयन में छः मुहूर्त दिन - रात में अन्तर होता है।[4]

---

1 याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्धादानिकाः कलाः ॥ वहीं 21

2 यदर्धं दिनभागानां सदा पर्वणि पर्वणि।
ऋतुशेषं तु तद्विद्यात् संख्यया सह पर्वणाम्। ऋ० ज्यो० 23

3 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्टया षष्टया युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। वहीं 4

4 घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपा ह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु। वहीं 7

तिथिमान विधि - सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे द्विगुणित करके **तिथियों को उनमें से घटा दें,** शेष उन रात - दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[1]

इष्ट विषुवत तिथि आनयन विधि - समान दिन - रात काल विषुवत् को दो **से गुणित कर उसमें एक एक घटायें** फिर उसे छ से गुणित करें, लब्ध पर्व (पक्ष संख्या) होगा, उसका आधा भाग तिथि होगा जो कि विषुवान् कही गयी है।[2]

4.17.3 ऋग ज्योतिष में गुणन

गणितीय गुणन संक्रिया से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्ग व उद्धरण हमें ऋग ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। जिनका उल्लेख अधोलिखित प्रसङ्गों के माध्यम से किया गया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं –

पर्व में चन्द्र नक्षत्र की आयन विधि - वर्तमान सम्वत्सर को **बारह मासों से गुणा करके** मासों को **द्विगुणित** करके पक्ष में बदल दो, वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्रमा के नक्षत्र के अंश होते हैं, यदि चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व के आये भांश में आधा जोड़ें।[3]

वर्तमान सम्वत्सर में एक घटाकर जो शेष बचे उसमें **12 का गुणा करके** गत मास को जोड़ देवें फिर **गुणनफल को दुगना करें** फिर 60 के प्रत्येक पर्यय में दो दो जोड़ते जाएँ यही चान्द्रपर्वों की कही जाती है।[4]

---

1 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः। ऋ ज्यो० 20

2 विषुवत् तद्गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षड्गुणम्।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्धं सा तिथिर्भवेत्। ऋ० ज्यो० 31

3 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि। वहीं 10

4 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्टया षष्टया युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। ऋग ज्यो० 4

तिथिमान विधि - सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे द्विगुणित करके तिथियों को उनमें से घटा दें, शेष उन रात - दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[1]

चन्द्र ऋतु साधन एवं लग्नायन - सत्ताईस भगण में से धनिष्ठा से जो इष्ट काल भाग हो उसे गुणित किया जाता है, उन भागों को धनिष्ठा से गिनकर पूर्व दिशा में भाशों का निर्देश करें,स्व नाक्षत्र मासों को **छ : से गुणित करके** चन्द्र सम्बन्धी ऋतुओं को जाना जा सकता है।[2]

4.17.4 ऋग ज्योतिष में भाग

(आर्च) ऋग ज्योतिष में भाग की विधि का प्रयोग अनेक प्रसङ्गों में बहुलता से किया गया है। जिन्हें हम अधोलिखित उद्धरणों के माध्यम से जान सकते हैं जो कि महत्त्वपूर्ण हैं –

सूर्य-चन्द्र नक्षत्रयुक्त भूदिन - चन्द्रमा जितने समय में एक नक्षत्र से युक्त होता है वह समय सात कला अधिक एक रवि सावन दिन होता है। इसी प्रकार सूर्य जितने समय में एक नक्षत्र का भोगता करता है वह काल तेरह सावन दिन तथा 5/9 (1) भाग होता है। पाँच गुरू (s) अक्षरों के उच्चारण समकाल की एक काष्ठा होती है।[3]

मुहूर्त दिनमान – उत्तरायण के पश्चात् जितने दिन व्यतीत हुए हों अथवा दक्षिणायन के बाद जितने दिन शेष रह गये हों उसे दो से गुणा कर गुणनफल में **61 से भाग देने पर** जो लब्धि आये उस लब्ध में 12 जोड़ने से मुहूतात्मक दिनमान आयेगा।[4]

---

1 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः। वहीं 20

2 श्रविष्ठाभ्यो गणाभ्यस्तान् प्राग् विलग्नान् विनिर्दिशेत्।
स्वार्क्षान्मासान् षडभ्यस्तान् विद्याच्चान्द्रमसानृतून्। वहीं 19

3 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चाह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता। ऋ० ज्यो० 18

4 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्या च्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्यादिवसप्रमाणम्। वहीं 22

इष्ट विषुवत तिथि आनयन विधि - समान दिन - रात काल विषुवत् को दो से गुणित कर उसमें एक एक घटायें फिर उसे छ से गुणित करें, लब्ध पर्व (पक्ष संख्या) होगा, उसका आधा भाग तिथि होगा जो कि विषुवान् कही गयी है।[1]

4.18 याजुष ज्योतिष – संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग

4.18.1 याजुष ज्योतिष में संकलन (जोड़)

याजुष ज्योतिष में प्राप्त सङ्कलन विधि (जोड़) से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्गों का उल्लेख किया गया है जिन्हें हम यहाँ निम्नलिखित रूप में देख सकते है -

अयन दिवस रात्रि मान-सूर्य के उत्तरायण में जाने पर जल के एक परिमाण मात्र दिन बड़ता है और रात घटती होती है और दक्षिणायन में ठीक इसके विपरीत अयन से रात और दिन में छह मुहूर्त की वृद्धि होती है।[2]

पर्वराशि आनयन विधि - वर्तमान सम्वत्सर संख्या में से एक निकाल कर उसे बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करे, और उसमें **गत पर्व को जोड़ें,** जोड़ें हुए को साठ - साठ पदों से युत करें, यही चान्द्र पर्वो की राशि कही जाती है।[3]

पर्व में चन्द्र नक्षत्रअयन विधि - वर्तमान सम्वत्सर में बारह (बारह मास) से गुणा करें। मासों को द्विगुणित कर पक्ष में बदलें, फिर वे पक्ष ग्यारह से गुणित होने पर चन्द्र के अंश होते हैं। यदि चान्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भाश में आधा जोड़ें।[4]

---

1 विषुवत् तद्गुणं द्वाभ्यां रूपहीनं तु षड्गुणम्।
यल्लब्धं तानि पर्वाणि तदर्थं सा तिथिर्भवेत्। वहीं 31

2 घर्मवृद्धिरपां प्रस्थः क्षपा ह्रास उदग्गतौ।
दक्षिणेतौ विपर्यासः षण्मुहूर्त्ययनेन तु। याजु० ज्यो० 8

3 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्ट्या षष्ट्या युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। यजु० ज्यो० 13

4 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि। वहीं, 15

पर्वभांश कलाओं की आयन विधि - नक्षत्रांशों के चार स्थानों पर 19 कलायें करनी चाहियें तथा हीन स्थान पर अर्थात हीन जातीय काष्ठा के स्थान पर 72 में **12 को जोड़कर** 84 काष्ठा कर लेनी चाहिए। वहीं अन्य प्रकार से "नक्षत्रों की प्रत्येक चार - चार के समूह में 21 कलायें हैं और 21 कलाओं को 4 से गुणने पर 84 काष्ठा ही आ जाते हैं।[1]

इष्ट तिथि गतनक्षत्र कलानयन विधि - पर्व समय में जो भांश ग्रहण कला प्राप्त हुई उसमें सात से गुणित **तिथि को जोड़कर** गणक तिथि के समान गत नक्षत्र के होने पर ग्रहण करने योग्य कला जानें। यदि पर्व से गत तिथि संख्या समान ही गत नक्षत्र मान हो तब पर्व नक्षत्र ग्रहण कला में सात से गुणित तिथि को जोड़ें।[2]

4.18.2 याजुष ज्योतिष में व्यकलन (घटाव)

याजुष् ज्योतिष में गणितीय व्यकलन विधि अर्थात् घटाव से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्ग उद्धरण प्राप्त होते हैं। जिनके यहाँ पर निम्नलिखित उद्धरण द्रष्टव्य है।

पर्वराशि आनयन विधि - वर्तमान सम्वत्सर संख्या में से **एक घटा कर** उसे बारह से गुणित कर गुणनफल को दूना करे, और उसमें गत पर्व को जोड़ें, जोड़ें हुए को साठ - साठ पदों से युत करें, यही चान्द्र पर्वो की राशि कही जाती है।[3]

तिथिमान विधि - सूर्योदय से बीते हुए पर्व के उन्नतांश जो एक सावन दिन में एक सौ चौबीस होते हैं, उनसे द्विगुणित करके **तिथियों को उनमें से घटा दें**, शेष उन रात - दिन के वृत्त भागों में जब सूर्य आता है तब वह सूर्य तिथिमान के अन्त को प्राप्त करता है।[4]

---

1 कार्या भांशाष्टकास्थाने कला एकोनविंशतिः।
ऊनस्थाने द्विसप्ततिमावपेदिनसंयुताम। याजु० ज्यो० 19

2 याः पर्वभादानकलास्तासु सप्तगुणां तिथिम्।
प्रक्षिपेत् तत्समूहं तु विद्याद्धादानिकाः कलाः ॥ वहीं 21

3 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्टया षष्टया युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। यजु० ज्यो० 13

4 अतीतपर्वभागेभ्यः शोधयेद्विगुणां तिथिम्।
तेषु मण्डलभागेषु तिथिनिष्ठां गतो रविः। वहीं 22

पक्ष तिथि आनयन- विषुव संख्या में से एक निकाल कर शेष संख्या को दो से गुणा करें, पुनः छः से गुणा करें, गुणा करने पर पक्ष संख्या आती है जो पक्षों का आधा है वह तिथि है वह तिथि ही विषुवान कही जाती है।[1]

सावनदिन संख्या चन्द्र नक्षत्रभोग संख्या विधि - युगीन सावन दिन की संख्या के साथ पाँच योग करने से तत्संख्यक सावन दिन में धनिष्ठा नक्षत्र की उदय संख्या होती है। उक्त सावन दिन **संख्या से बासठ घटाने पर** चन्द्र की सावन दिन संख्या होती है तथा **इक्कीस घटाने पर** चन्द्र के नक्षत्र भोग की संख्या मिलती है।[2]

4.18.3 याजुष ज्योतिष में गुणन

गणितीय गुणन संक्रिया से सम्बन्धित अनेक प्रसङ्ग व उद्धरण हमें याजुष् ज्योतिष में प्राप्त होते हैं। जिनका उल्लेख अधोलिखित प्रसङ्गों के माध्यम से किया गया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं –

वर्तमान सौराब्द मान में एक घटा कर उसे **बारह से गुणित कर गुणनफल** को दूना करें। उसमें गतपर्व को जोड़ें, जोड़ें हुए को साठ - साठ पदों से युत करें।[3]

वर्तमान अब्दस (सम्वत्सर) में बारह मासों में प्राप्त अभीष्ट पक्ष करें। वे पक्ष **ग्यारह से गुणित होने पर** चन्द्र के भांश होंगे . यदि चान्द्र पक्ष शुक्ल पक्ष में हो तो पूर्व आगत भाश स आधा जाड़।[4]

नक्षत्रानयन विधि - पर्व के नक्षत्रांश से युक्त **तिथि को बारह और दस से गुणा कर** उसे नक्षत्र समूह अर्थात् 124 से विभाजित कर लब्ध को तिथि सम्बन्धी नक्षत्र जानें।[5]

---

1 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदधु पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः। याजु० ज्यो० 23

2 उदया वासवस्य स्युर्दिनराशि : सपञ्चकः।
ऋषेर्द्वि षष्टिहीनं स्याद् विंशत्या चैकयास्तृणाम्। याजु० ज्यो० 29

3 निरेक द्वादशाभ्यस्तं द्विगुणं गतसंयुतम्।
षष्टया षष्टया युत द्वाभ्या पर्वणा राशिरूच्यते।। वहीं, 13

4 भांशाः स्युरिष्टकाः कार्याः पक्षा द्वादशकोद्गताः।
एकादशगुणाश्चेन्दोः शुक्लेऽर्धं चैन्दवा यदि। वहीं, 15

5 तिथिमेकादशाभ्यस्ता पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत् ।। याजु० ज्यो० 20

युगारम्भ से पक्ष-तिथि आनयन - विषुवत के संख्यात्मक मान को **दो से गुणा करें,** फिर गुणित फल में एक को हटा दे, शेष को छः से गुणा करें, यह गुणनफल अपने विषुवत् में युगादि से पक्ष होता है।[1]

इष्ट तिथि में रविनक्षत्र आनयन- युगारम्भ से वर्तमान पर्व पर्यन्त जितने पर्व हो, उन सभी को ग्यारह से गुणा कर फिर पर्व के अनन्तर जो तिथि हो, उस तिथि की **संख्या को नौ से गुणा कर** दोनों को एकत्रित कर युग में जितने पर्व हो उस संख्या से लब्धफल पर्वमान के सहित किया जाय तो वह क्रम से सूर्य नक्षत्र होता है।[2]

4.18.4 याजुष ज्योतिष में भाग

याजुष् ज्योतिष में प्राप्त गणित की इस भाग की विधि प्रक्रिया का उल्लेख अनेक प्रसङ्गों में प्राप्त होता है जिनके कुछ उद्धरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत हैं -

नक्षत्रानयन विधि - पर्व के नक्षत्रांश से युक्त तिथि को बारह और दस से गुणा कर उसे नक्षत्र समूह अर्थात् 124 से विभाजित कर लब्ध को तिथि सम्बन्धी नक्षत्र जानें।[3]

सूर्य के एक युग में नाक्षत्रमान एक सौ पैंतीस होता है, यह मान एक कम अर्थात् एक सौ चौंतीस युग में चन्द्र का अयन होता है। युग में जो चन्द्रपर्व एक सौ चौबीस होते है, उनका **चतुर्थांश (चौथा भाग) पर्वपाद** कहा जाता है।[4]

सूर्य-चन्द्र नक्षत्रयुक्त भूदिन - चन्द्रमा जितने समय में एक नक्षत्र से युक्त होता है वह समय सात कला अधिक एक रवि सावन दिन होता है। इसी प्रकार सूर्य जितने समय में एक नक्षत्र का भोगता करता है वह

---

1 विषुवन्तं द्विरभ्यस्तं रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदधु पक्षाणां तिथिः स विषुवान् स्मृतः। याजु० ज्यो० 23

2 एकादशभिरभ्यस्य पर्वाणि नवभिस्तिथिम्।
युगलब्धं सपर्व स्याद्वर्तमानार्कभक्रमात्। वहीं, 25

3 तिथिमेकादशाभ्यस्ता पर्वभांशसमन्विताम्।
विभज्य भसमूहेन तिथिनक्षत्रमादिशेत् ॥ याजु० ज्यो० 20

4 पञ्चत्रिंशं शतं पौष्णमेकोनमयनान्यृषेः।
पर्वणां स्याच्चतुष्पादी काष्ठानां चैव ताः कला। याजु० ज्यो० 30

काल तेरह सावन दिन तथा 5/9 भाग होता है। पाँच गुरू (s) अक्षरों के उच्चारण समकाल की एक काष्ठा होती है।[1]

दिनमान आनयन विधि – उत्तरायण के पश्चात् जितने दिन व्यतीत हुए हों अथवा दक्षिणायन के बाद जितने दिन शेष रह गये हों उसे दो से गुणा कर गुणनफल में **61 से भाग देने पर** जो लब्धि आये उस लब्ध में 12 जोड़ने से मुहूतात्मक दिनमान आयेगा।[2]

पूर्वोक्त विधि से कहा गया बार-बार सब कर्मों में प्रकल्पित करना चाहिए। वेध के द्वारा ज्ञात राशि में प्राप्त किसी पदार्थ को जानकर, ज्ञेयराशि में उस पदार्थ को ले जाने के लिए ज्ञान राशि सम्बन्धी गत पदार्थ से गुणित **ज्ञेयराशि को ज्ञान राशि से विभाजित करें** फल ज्ञेयराशि सम्बन्धी उस पदार्थ का मान होता है।[3]

4.19 अथर्व ज्योतिष - संकलन, व्यकलन, गुणन, भाग

4.19.1 अथर्व ज्योतिष में संकलन (जोड़)

यद्यपि हमें अथर्वेदीय ज्योतिष में जोड़ अर्थात संकलन विधि का प्रयोग किसी प्रसङ्ग में प्राप्त नही होता तथापि वहाँ हमें "योग"[4] शब्द का प्रयोग अवश्य प्राप्त होता है जो कि जोड़ शब्द का ही पर्यायवाची रूप है और यहाँ योग का अर्थ पन्द्रह मुहूर्तो के सन्दर्भ में लिया गया है यथा अभिजित[5] (योग) मुहूर्त

4.19.2 अथर्व ज्योतिष में व्यकलन (घटा)

अथर्ववेदीय ज्योतिष में हमें जो व्यकलन सम्बन्धित गणितीय संक्रिया प्राप्त होती हैं उन्हें यहाँ उल्लिखित किया गया है।

---

1 ससप्तैकं भयुक् सोमः सूर्यो द्यूनि त्रयोदश।
नवमानि च पञ्चाह्नः काष्ठा पञ्चाक्षरा स्मृता। वहीं 39

2 यदुत्तरस्यायनतो गतं स्या च्छेषं तु यद्दक्षिणतोऽयनस्य।
तदेकषष्ट्या द्विगुणं विभक्तं सद्वादशं स्यादिवसप्रमाणम्। वहीं 40

3 इत्युपायसमुद्देशो भूयोऽप्यह्नः प्रकल्पयेत्।
ज्ञेयराशिं गताभ्यस्तं विभजेज्ज्ञानराशिना ॥ याजु० ज्यो० 42

4 द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टिसमन्विता। अथर्व ज्यो० 96

5 सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यन्दिनेभिजित। आथर्व ज्यो० 20

तिथि में होने वाले करण के सन्दर्भ में – कहते हैं कि जिस तिथि में करण जानना हो उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या आये, उसको दुगुना कर फिर **उसमें एक संख्या घटा दें**, जो शेष बचे उसमें सात का भाग देकर जो शेष बचे उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझना चाहिए।[1]

4.19.3 अथर्व ज्योतिष में गुणन

अथर्वेदीय ज्योतिष में गुणन प्रक्रिया के सन्दर्भ में हमें अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं जो कि कुछ प्रसङ्गों के माध्यम से यहाँ उल्लिखित किये गये हैं।

तिथि में होने वाले करण के सन्दर्भ में – कहते हैं कि जिस तिथि में करण जानना हो उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या आये, उसको दुगुना कर फिर उसमें एक संख्या घटा दें, जो शेष बचे उसमें सात का भाग देकर जो शेष बचे उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझना चाहिए।[2]

चन्द्र नक्षत्र शुभत्त्व - चन्द्रमा के कृष्ण पक्ष में न रहने पर **तिथि एक गुना तथा नक्षत्र चौगुना** शुभदायी कहा गया है, अर्थात् **तिथि का एक गुण और नक्षत्र का चार गुण** मान्य होता है।[3]

वहीं वार योग करण के सन्दर्भ में - वार अर्थात् **दिन का आठ गुणाफल** तथा करण का **सोलह गुणाफल** होता है।[4] योग का **बत्तीस गुणाफल तथा तारा का साठ गुणा फल** होता है।[5]

चन्द्रमा का बलत्व - चन्द्रमा का फल सौ गुणा होता है, इसलिए चन्द्रमा का बलाबल अवश्य देखना चाहिए[6], क्योंकि अन्य ग्रह भी चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार ही शुभ या अशुभ फल देते है।

---

1 तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिक्ष हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।। -आथर्वण ज्यो- 32

2 वहीं – 32

3 तिथिरेक गुणा प्रोक्ता नक्षत्रम च चतुर्गुणं। आथर्वण ज्यो० 95

4 वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम्। वहीं 95

5 द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टिसमन्विता। वहीं 96

6 चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तः तस्माचन्द्रबलाबलम। वहीं 96

4.19.4 अथर्व ज्योतिष में भाग

अथर्वेदीय ज्योतिष में भाग की प्रक्रिया का उल्लेख हमें कुछ प्रसङ्गों में प्राप्त होता है। जो कि हम यहाँ कुछ उद्धरणों के माध्यम से देखेंगे

ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन सभी वर्णों के कार्यों के लिए नित्योपयोगी व्यवहार, मित्रता हेतु मध्य दिन के समय पड़ने वाला अभिजित मुहूर्त उत्तम होता है।[1] यहाँ मध्यान दिन में होने वाला ' अभिजित् ' मुहूर्त श्रेष्ठ माना गया है। प्रस्तुत उदाहरण में ' मध्यदिन ' का मान बिना गुणा, भाग की क्रिया के सम्भव नहीं।

कहा गया है कि जिस तिथि में करण जानना हो उस तिथि को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिनकर जो संख्या आये, उसको दुगुना कर फिर उसमें एक संख्या घटा दें, जो शेष बचे उसमें सात का भाग देकर जो शेष बचे उसको वव से विष्टि पर्यन्त क्रमशः करण समझना चाहिए।[2]

नक्षत्र विभाग - सम्पूर्ण सत्ताईस नक्षत्रों के नौ विभाग किये गये हैं। प्रत्येक विभाग में तीन तीन नक्षत्र आते हैं फिर उनका क्रमशः उत्तम, मध्यम, अधम रूप बताये जाते हैं।[3] उपरोक्त उद्धरण गणित की व्यकलन परिक्रम पर आधारित है।

इन समस्त उदाहरणों में कालमान निर्धारण हेतु व्यकलन क्रिया का आश्रय लिया गया है। वेद एवं वेदाङ्ग ज्योतिष के अनेक स्थानों पर इसी प्रकार से अनेक गणितीय क्रियाओं का प्रसंगानुसार उल्लेख मिलता है। जो कि गणित ज्योतिष के मूल में पूर्व से ही विद्यमान है।

---

1 ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शूद्राणांचापि नित्यशः।
सर्वेषामेव वर्णानां योगो मध्यन्दिनेभिजित। आथर्व ज्यो० 20

2 तां तिथिं द्विगुणीकृत्य हीनमेकन्तु कारयेत।
सप्तभिक्ष हरेद् भागं शेषं करणमुच्यते।। -आथर्वण ज्यो- 32

3 नवानां त्रिकवर्णानामाधाने जन्मकर्मणि।
अधमोत्तमवर्गेषु संवदन्तीह भागशः ॥ वहीं 108

पञ्चम अध्याय

वेदों में ज्योतिष आधारित विभिन्न यज्ञ-होमादि विधान



ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद ज्योतिष को जानने तथा समझने के लिए और उनके मध्य किस प्रकार पौर्वापर्य सम्बन्ध है। इसको जानने के लिए हम पहले विषय वस्तु का चयन तथा उसका वर्णन और विश्लेषण करेंगे जिसके पश्चात् हम तीनों के विषय को समुचित रूप से समझ सकेंगे। इसी को समझने के लिए प्रस्तुत अध्याय में ऋग, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में होने वाले यज्ञ - होमादि माङ्गलिक क्रिया कर्मों का ज्योतिष आधारित सम्वत्सर, मास, पक्ष, ऋतु, मुहूर्त,नक्षत्र आदि विधानों के आधार पर होने वाले यज्ञों का तीनों ऋग्याजुष अथर्व ज्योतिष के सन्दर्भ में यहाँ प्रस्तुत करेंगे।

जो वेदों द्वारा प्रेरित किये जाने वाले यज्ञ कर्म हैं उन यागादि कर्मों को करने से पूर्व का समय अथवा काल यजन करने के लिए शुभ है अथवा अशुभ इस शुभाशुभ का विधान करने वाला ज्योतिष शास्त्र है, जिसे

कालविधान शास्त्र भी कहा गया है[1]। जिससे मानव द्वारा किये गये यागादि कर्मों से शुभता की प्राप्ति हो और इच्छित मनोकामना की पूर्ति हो। वेदकालीन संस्कृति में "यज्ञ" करना प्रधान कर्म के रूप में स्वीकृत था इसलिए तत्कालीन जीवन पद्धति में प्रत्येक वस्तु तथा सामान्य जन – जीवन यज्ञ की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय यागादि कर्म प्रक्रिया मनुष्य की प्रत्येक दिवस की दिनचर्या में सामिल था एक प्रकार का नित्यकर्म सा था। जिन्हें मनुष्य सम्वत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस, अहोरात्र, मुहूर्त आदि वैदिक ज्योतिष द्वारा निर्दिष्ट कालानुसार करता था। इन यागादि विधानों को वैदिक ज्योतिष विषयानुसार आगे देखेंगे –

5.1 यज्ञ एवं ज्योतिष में सम्बन्ध

यज्ञ और ज्योतिष में घनिष्ठ सम्बन्ध है यदि यज्ञ का विधान शुभ मुहूर्त अथवा शुभ समय में न किया जाय तो यज्ञ द्वारा प्राप्त होने वाला फल अशुभ तथा अमंगलकारी सा सिद्ध हो सकता है। क्यूंकि यज्ञ का प्रारम्भ और अन्तिम परिणति काल अर्थात समय से परे नही है सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल भौगोलिक प्रक्रियाएँ काल के अन्दर ही समाहित हैं और काल का विधान बिना ज्योतिष के नहीं हो सकता। इसी विषय में आचार्य लगध अपने वेदाङ्ग ज्योतिष में कहते हैं "जो ऋग, यजु, साम आदि वेद हैं वे यज्ञ के लिए अभिप्रवृत्त हैं और यज्ञ काल के अधीन विभक्त किये गये हैं। यज्ञ काल के अधीन विभक्त होने का तात्पर्य है यज्ञ दिन, ऋतू, अयन, मासादि के आधार पर विभक्त किये गये हैं। जैसे तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है "कृतिका नक्षत्र में अग्नि का आधान करना चाहिए, तथा फाल्गुनी पूर्णमास में दीक्षा का विधान करना चाहिए।[2] वहीं ब्राह्मणादि वर्णों के लिए अलग अलग ऋतुओं के आधार पर अग्न्याधान का विधान बतया गया है जैसे – वसन्त ऋतू में ब्राह्मण के लिए अग्नि का आधान, ग्रीष्म में क्षत्रिय के लिए अग्नि का आधान, शरद ऋतु में वैश्य के लिए अग्न्याधान का विधान किया गया है।[3] इस प्रकार से अग्न्याधान हेतु काल का ज्ञान होना परम आवश्यक है इसलिए जो व्यक्ति इस काल विधान ज्योतिष शास्त्र को जानता है वह यज्ञ को जानता है।[4] इसी याजुषवेदाङ्ग ज्योतिष के यज्ञ काल पर आश्रित है और जो काल तथा ज्योतिष को जानता है वह

---

1 ऋग्वेदांग ज्योतिष, श्लो० 3

2 कृत्तिकास्वग्निमादधीत। तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.1.2.1

3 पञ्चशारदीयो वा एष यज्ञ इति। वहीं, तै० ब्रा० 2.7.11

4 वेदा हि यज्ञार्थ मभिप्रवृत्ता, कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

यज्ञ को जानता है। इस मत की पुष्टि भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि में उल्लेख किया।[1] वहीं चन्द्रशेखर ने "वेद द्वारा लोग यज्ञकर्म में प्रवृत होते हैं यज्ञ कर्म उचित समय (मुहूर्त) में ही फलदायक होता है और इसी उचित मुहूर्त का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा होता है ऐसा अपने सिद्धान्त दर्पण में कहते हैं।[2] इसलिए अमुक यज्ञ अमुक नक्षत्र, तिथि, वार, सम्वत्सर, पक्ष, मुहुर्तादि में किया जाना चाहिए। यह ज्ञान होना आवश्यक है ताकि वैदिक यज्ञों से मनुष्य अधिकाधिक अभीष्ट (इष्ट) फल की प्राप्ति हो सके। जो कि पूर्व में हीं वेद लक्षण में इष्ट प्राप्ति की कामना की गयी है।[3] इसीलिए कहा गया है कि उचित समय में बोया गया बीज उचित ऋतु में फल देता है इसी प्रकार ज्योतिष के अनुसार उचित मुहूर्त, नक्षत्र, पक्षादि का विचार किये जाने से यज्ञानुष्ठान का फल उचित (इष्ट) ही प्राप्त होता है। वहीं ऋग ज्योतिष में महर्षि लगध स्वयं कहते हैं कि "सूर्य चन्द्र नक्षत्रों की गति सम्पूर्ण रूप से ज्योतिषियों के सम्मत क्रम से संसार में यज्ञ काल की अर्थ की सिद्धि के लिए कहूँगा।[4] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि यज्ञ के उचित (समय) काल के लिए तथा यज्ञ द्वारा प्राप्त होने वाले उचित अर्थसिद्धि इष्टफल प्राप्ति हेतु ग्रह नक्षत्रों की गति पर आधारित कालविधान रूपी ज्योतिषशास्त्र को कह रहा है। हमेसा से ही हिन्दू षोडश संस्कार एवं यज्ञ- हवन निश्चित काल मुहूर्त में ही किये जाते हैं ऐसा श्रुति का मानना है वहाँ कहा गया है कि वे यज्ञ जो करणीय हैं वे कालानुसार निश्चित महूर्त में न करने पर देवरहित, दक्षिणा रहित, नक्षत्र रहित हो जाते हैं। वस्तुतः वे फिर यज्ञ ही नही कहलाते हैं इसलिए जो कुछ भी यज्ञादि धार्मिक कृत्य करना हो तो उसे निर्दिष्ट कालानुसार ही करना चाहिए।[5] वहीं ऋग्वेद में देखेंगे तो वहाँ ऋग यजु साम अथर्व की उत्पत्ति भी यज्ञ के द्वारा बतायी गयी है (तस्मात् सर्वहुतः-यज्ञात्) उस सर्वहुत सङ्गमनीय परमात्मा से (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋग्वेद के मन्त्र, सामवेद के मन्त्र उत्पन्न हुए, (तस्मात्

तस्मादिदं कालविधान शास्त्रं, यो ज्यौतिषं वेद स वेद यज्ञम्।। ऋ० ज्यो०, श्लो० 3

1 वेदास्तावदयज्ञकर्म प्रवृत्तः। सिद्धान्त शिरोमणि

2 श्रुतिर्यज्ञकर्मप्रवृत्तैव यज्ञ क्रिया :
कालमासाद्य वैशद्यमापुः।
इतः शास्त्रतः कालबोधो यतोऽङ्गे
श्रुतेर्योतिषं प्रोक्तमस्मान् मुनीन्द्रैः।। सिद्धान्त दर्पण 1.14

3 इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः यो ग्रन्थं वेदयति स वेदः। सायणाचार्य, तैत्तिरीय भाष्य भूमिका

4 ज्योतिषामयनं कृत्स्नं प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।
विप्राणां सम्मतं लोके यज्ञकालार्थसिद्धये।। ऋगवेदाङ्ग ज्योतिष – 3

5 ते असुरा अयज्ञा अदक्षिणा अनक्षत्राः।
यच्च किंच कुर्वत तां कृत्यामेवा अकुर्वत।। फलित ज्योतिष विवेचनात्मक वृहत्पाराशर समीक्षा, पृ० 4

छन्दांसि जज्ञिरे) उसी से अथर्ववेद के मन्त्र उत्पन्न हुए (तस्मात्-यजुः अजायत) [1] और यज्ञ काल के अधीन है और काल ज्योतिष शास्त्र के द्वारा ज्ञेय है।

5.2 यज्ञ शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

यज्ञ शब्द 'यज" धातु[2] से और (न) प्रत्यय[3] होकर बना है। इस प्रकार से "यज" धातु के देवपूजा, संगतिकरण और दान यह तीन अर्थ हुए। यहाँ देवपूजा में "देव" शब्द बह्वर्थक[4] है और पूजा शब्द सत्कार = यथायोग्य व्यवहार हैं। वहीं दयानन्द ने यज्ञ का अर्थ तीन प्रकार का कहा है १. देव पूजा जिसमें विद्या ज्ञान और धर्म के अनुष्ठान से युक्त विद्वानों का ऐहिक और पारलौकिक सुख के सम्पादन के लिए सत्कार करना। २. अच्छे प्रकार से पदार्थों के गुणों के मेल-विरोध-ज्ञान की संगति से शिल्पादि विद्या का प्रत्यक्षीकरण तथा नित्य विद्वानों के समागम का अनुष्ठान करना। ३. विद्या, सुख, धर्म आदि शुभ गुणों का नित्य दान करना।[5] निरुक्त में यजन क्रिया से यजु नाम पड़ा इस प्रकार यजुर्वेद से यज्ञ का विशेष सम्बन्ध है[6]। वैदिक कर्मों में यज्ञ, दान और तप ये धर्म के मुख्य आधार माने गये हैं।[7] जिनमें से छान्दोग्य ने यज्ञ को विशिष्ट मानते हुए उसे प्रथम कहा है।[8] वहीं कात्यायन ने "देवता के उद्देश्य से द्रव्य का त्याग ही यज्ञ है[9] ऐसा कहा है।

5.3 संहिताओं में यज्ञ रूप में प्रजापति

यज्ञों के विषय में ऋग्वेद से लेकर पूरे वैदिक वांग्मय वेदाङ्ग ज्योतिष तक देखें तो हर किसी ने अपने अनुसार यज्ञ की व्याख्या की है। वहीं अगर हम वेदाङ्ग ज्योतिष की बात करें तो जिस प्रकार ऋग्वेद में

---

1 तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ऋ० सं० 10.90.9

2 "देवपूजासंगतिकरणदानेषु"। धातु पाठ - 1.728

3 यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षौ नङ्।, अष्टाध्यायी, 3.3.90

4 दिवुक्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु। धातुपाठ - 4.1

5 धात्वर्थाद् यज्ञार्थस्त्रिविधो भवति – विद्या - ज्ञान - धर्मानुष्ठान - वृद्धानां देवानां विदुषाम् ऐहिकपारलौकिक - सुख - सम्पादनाय सत्करणम्, सम्यक् पदार्थ गुणसंमेलविरोधज्ञानसंगत्या शिल्पविद्याप्रत्यक्षीकरणं नित्यविद्वत्समागमानुष्ठानं [च], विद्यासुखधर्मादिशुभगुणानां नित्यं दानकरणम्। दयानंद, यजुर्भाष्य 1.2॥

6 यजुर्यजतेः। याजतेः धातोः तेन हि विशेषत इज्यते। निरु० 7.3

7 तमेतं वेदानु वचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन

8 त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोध्ययनं दानमिति प्रथमः। छान्दोग्य उपनिषद, 2.23

9 द्रव्यं देवता त्यागः। कात्यायन श्रौत सू० 1.1.2

प्रजापति को यज्ञ का स्वरूप माना है उसी प्रकार आचार्य लगध ने वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रारम्भिक मंगलाचरण में ही प्रजापति की स्तुति की है। क्योंकि उन्होंने वहाँ काल रूपी चक्र की व्यवस्था करने वाले प्रजापति और प्रजापति के द्वारा ही काल का निर्धारण किया जाता है। ऐसा मानते हुए यज्ञ तथा काल के देवत्त्वरूप में प्रजापति को स्वीकारा है। यह सृष्टि एक यज्ञ मानी गयी है जिसका कर्ता स्वयं प्रजापति को कहा गया है। मूर्त व अमूर्त रूप में यह प्रजापति का ही कार्य है क्योंकि वह उसमें पूर्ण रूप से आहुति देता है। वेद में इसी को 'सर्वहुत' यज्ञ का अभिधान दिया गया है, जिसमें स्रष्टा अपने समस्त द्रव्य की आहुति तीन रूपों मन, प्राण और द्रव्य के रूप में देता है। वेदों में प्रजापति को यज्ञ माना गया है जो कि वैयक्तिक तथा सृष्टिपरक धरातल पर होने वाला यज्ञ है। यज्ञ, सम्वत्सर तथा सृष्टि तीनों को ही प्रजापति के रूप कहा गया है। प्रजापति यज्ञ में स्वयं को पूर्ण रूप से प्रकट करता है।[1]

संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रजापति के विषय में विभिन्न व्याख्यायें की गयी हैं। कहीं ये रूपक में तो, कहीं ये प्रतीक रूप में, प्रजापति की विशेषताओं व उसके स्वरूप को स्पष्ट करती हैं। वहीं हमें इसके अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं जैसे - प्रजापति सम्वत्सर है।[2] प्रजापति यज्ञ का ही प्रतीक रूप है।[3] प्राण या जीवन जीवन शक्ति ही प्रजापति है।[4] वायु प्रजापति का व्यक्त रूप है जो कि जीवन का आवश्यक तत्त्व है जिसे हम श्वांस रूप में खींचते हैं।[5] हिरण्यगर्भ ही प्रजापति है।[6] तथा ब्रह्मा भी प्रजापति ही हैं।[7] मनु ही प्रजापति है, क्योंकि ये सभी लोक उसी के मानस विचार से पैदा हुए हैं।[8] प्रजापति ही विश्वकर्मा है क्योंकि उसी ने प्रजा का निर्माण किया है।[9] प्रजा और विश्व एक ही स्वरूप को दर्शाते हैं जिसे की सृष्टि ब्रह्माण्ड कहा जाता है।

---

1 शर्मा पुनीता, लगधज्योतिष (याजुष व आर्च संस्करण) सुयशा टीका, पृ० 104, प्रकाशन - नागपब्लिकेशन,
2 कौषीतकी ब्राह्मण। 6.15
3 शतपथ ब्राह्मण। 4.3.4.3, वहीं 1.7.4
4 जाबालोपनिषद। 2.2.6
5 कौषीतकी ब्राह्मण। 19.2
6 शतपथ ब्राह्मण। 10.1.4.9
7 गोपथ ब्राह्मण। 2.5.8
8 शतपथ ब्राह्मण। 6.1.1.19
9 ऐतरेय ब्राह्मण। 4.22

वैदिक ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्वमेध यज्ञ वर्णन के प्रसङ्ग में प्रजापति को अश्वमेध यज्ञ का अश्व माना गया है जिसे अश्वमेध यज्ञ में बलि किया जाता है।[1] उस प्रजापति के एक-एक करके अंग को बलि करते हुए भी वह पूरे का पूरा शेष रह जाता है। वहीं अथर्ववेद में प्रजापति को मृत्यु से रहित काल माना है।[2] वहीं व्यवहारिक दृष्टि में यह प्रजापति छोटे व बड़े रूप में ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण आदि के रूप में है जबकि पारमार्थिक रूप में यह मात्र माया है। यह काल रूपी अश्व काल तथा मृत्यु का भी प्रतीक चिन्ह है। यह प्रजापति ही है जो कि सृष्टि के बीज रूप में है तथा बार-बार यज्ञ के रूप में नवीकृत और स्वशक्ति से व्यक्त होता रहता है।

प्रजापति का पूर्ण प्रतीक सम्वत्सर तथा काल है प्रजापति की यह व्याख्या प्रजापति देवता को ज्योतिष विद्या के साथ जोड़ती है क्योंकि काल के अध्ययन हेतु ही आचार्य ने वेदाङ्ग ज्योतिष शास्त्र की रचना की है।

ज्योतिष की दृष्टि से देखें तो प्रजापति का सबसे अच्छा रूप उसका चक्र रूप (काल चक्र) होना है। मास के दो भाग (शुक्ल तथा कृष्ण), अहोरात्र (दिवस तथा रात्रि) तथा वर्ष के दो भाग (उत्तरायण तथा दक्षिणायन), ये सभी उस घूमते हुए प्रजापति रुपी चक्र के ही दो रूप हैं। सभी यज्ञ-यागादि कृत्य इन काल की इकाइयों पर ही निश्चित व निर्धारित किए जाते हैं। जो दर्श तथा पूर्णमास यज्ञ हैं वे कृष्ण तथा शुक्ल पक्ष के ही प्रतीक हैं।[3] ये दो ही प्रकृति यज्ञ है, इनके अलावा जो शेष समस्त यज्ञ हैं वे सभी इन्ही दो की विकृतियां हैं मास मास प्रजापति का दृश्य रूप है।[4] इन सब में से दिखाई देने वाला सर्वश्रेष्ठ चिन्ह 'अहोरात्र' ही है।[5] सूर्य, चन्द्रमा, प्रातः, गोधूलि, मध्यान्ह, मध्यरात्रि, ये सब उस प्रजापति के अलग अलग पड़ाव हैं।

---

1 तैत्तिरीय ब्राह्मण। 3.9.21.1

2 कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः। अथर्ववेद 19.53.1

3 कालचक्र परिवर्तन। ऋग्वेद 1.164.13

4 मासो वै प्रजापतिः तस्य कृष्णपक्ष एव रात्रिः शुक्लः प्राणः। प्रश्नोपनिषद 1.12

5 अहोरात्रो वै प्रजापतिः। प्र० उ० 1.13

5.3.1 संहिताओं में नक्षत्रराशि के रूप में प्रजापति

वैदिक ब्राह्मण साहित्य में प्रजापति की एक ज्योतिष परक व्याख्या नक्षत्रीय प्रजापति के रूप में वर्णित है जिसका विशेष वर्णन इस प्रकार से है कि चित्रा नक्षत्र प्रजापति का सिर है, स्वाति नक्षत्र प्रजापति का हृदय है, हस्त नक्षत्र प्रजापति का हाथ है, विशाखा नक्षत्र प्रजापति की जाँघे हैं तथा अनुराधा नक्षत्र उस प्रजापति के पैर हैं।[1] वहीं वराहमिहिर कृत वृहज्जातकम् (भट्टोत्पल व्याख्या) में भी स्रष्टा ब्रह्म प्रजापति की राशिपरक व्याख्या की है जिसमें उन्होनें अलग अलग अंगों के रूप में राशियों को रखा है[2] इस प्रकार से नक्षत्रों तथा राशियों को प्रजापति रूप में वर्णित किया है।

प्रजापति पञ्चसम्वत्सरात्मक युग का अध्यक्ष माना गया है[3] वही सुधाकर ने पञ्चसम्वत्सरात्मक युगाधिपति के अंगों के रूप में दिन, ऋतु, मास, अयन आदि को माना है। दो स्फुट सूर्योदय के अन्तर का काल को स्फुट सावन दिन कहते हैं।[4] इसी सावन दिन के अनुसार यज्ञ कार्य, सूतक कार्यों में दिवसगणना, वर्षपति, वर्षफल, मासाधिपति आदि निर्धारित किए जाते हैं। सूर्य जितने समय में एक अंश गति करता है उसे एक सौर दिन कहते हैं।[5] इस सौर दिन के प्रयोजन के अनुसार महर्षियों ने दिन के कहीं पाँच, कहीं चार, तथा कहीं कहीं तीन भाग किए हैं। सामान्यतया प्रचलित दिन के चार भाग हैं प्रातः, मध्याह्न, सायं अथवा सायंतन किए गए हैं। इसी प्रकार पहले से ही धार्मिक परम्पराओं में समय के विभाजन के अनुसार धार्मिक यज्ञ अनुष्ठानादि कृत्यों का विभाजन किया गया है जैसे - अग्निहोत्र, हवन आदि कृत्य व्यक्ति द्वारा प्रातः काल में किया जाता है। पूजा पाठ तथा देव पूजन का विधान मध्यकाल में किया जाता है, पितृकर्म अपर्हान में तथा

---

1 या वै नक्षत्रीयं प्रजापतिं वेद। उभयोरेनं लोकयोर्विदुः। हस्त एवास्य हस्तः। चित्रा शिरः निष्ट्या हृदयम्।
ऊरू विशाखे। प्रतिष्ठानुराधा। एष वै नक्षत्रीयः प्रजापतिः। तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.5.2.2

2 मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातुः वक्षो भवेन्नृमिथुनं हृदयं कुलीरः।
सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च बस्तिस्तुलाभृदथ मेहनमष्टमः स्यात्॥
धन्वीचास्योरूयुगं मकरो जानुद्वयं भवति।
जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति॥ वृहज्जातकम (भट्टोत्पल व्याख्या) पृ० 8

3 पञ्चसम्वत्सरमयम युगाध्यक्षंप्रजापतिम्। वेदाङ्ग ज्योतिष, श्लो० 1

4 स्फुटसूर्योदयद्वन्द्वं विवरं सावनं दिनम्।
प्रसिद्ध तेन यज्ञादि सूतकाद्यब्द पादयः॥ सिद्धान्तदर्पण; 22.41

5 एकांश प्राग् गतिर्भानोः सौरदिनमितीर्यते। सि० द० वही; 22.41

भोजन आदि सायंकालीन अथवा सायंतन कर्म कहलाते हैं। चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय के आधार पर शुक्ल व कृष्ण पक्ष होता है जिनका उपयोग देवतकार्यों (देवयज्ञ) व पितृकार्यों (पितृयज्ञों) में होता है।

ऋग्वेद के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि का केन्द्र अथवा ब्रह्माण्ड की नाभी भी यज्ञ ही है।[1] प्रजापति की महिमा उसके द्वारा सृष्टि यह लोक है। समस्त दैवी शक्तियां जो सृष्टि के निर्माण में लगी है वे भी यज्ञ ही है। वहीं कहा गया है कि यज्ञाग्नि समस्त देवताओं की प्राणशक्ति है।[2] वहीं यजमान, पुरोहित, ऋत्विज, देव, समिधा, वेदी, परिधि, आज्य, हविष आदि सभी वैदिक यज्ञ परम्परा के कर्मकाण्ड पर रूप हैं।

ऋत्विज प्रजापति

वहीं वेदों में उल्लिखित प्राचीन 'ऋत्विज' शब्द के विषय में देखें तो वह भी सम्वत्सर को स्पष्ट करता है। ऋत्विज शब्द ऋतु+यज् से मिलकर बना है, जिसका अर्थ हुआ "ऋतु के आधार पर यज्ञ करने वाला"। यह इस बात को दर्शाता है कि प्राचीन काल में यज्ञ और ऋतु के मध्य समानता थी जो कुछ उसके लिए अच्छा समीचिन था वही सब कुछ सम्वत्सर के लिए भी था।[3] क्योंकि जिसमें ऋतुओं का निवास होता है वही सम्वत्सर होता है तथा ऋतुओं का चक्र ही सम्वत्सर है।[4] और सम्वत्सर प्रजापति है तथा प्रजापति ही यज्ञ है।

5.4 संहिताओं में अग्निचय (यज्ञ वेदिका निर्माण)

सात यज्ञों में अग्नि चयन कृत्य सबसे कठिन माना गया है यजुर्वेदीय शतपथ का एक तिहाई भाग इसी अग्नि चयन से ही सम्बन्धित है। आरम्भ में अग्निचयन कृत्य एक स्वतन्त्र कृत्य था परन्तु कुछ समय के उपरान्त यह सोम यज्ञों के अन्तर्गत ही माना जाने लगा। यज्ञवेदी अर्थात अग्निचयन कृत्य की जड़ में कुछ

1 अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः। ऋग्वेद 1.164.35

2 ततो देवानां समवर्ततासुरेकः। ऋ० वहीं, 10.121

3 Tilak, B.G.– The Orion; p.13

4 Dr.Schrader, in his Prehistoric Antiquities of the Aryan Peoples; part iv, Chap.vi (p.305), also makes a similar observation.He holds, on philological grounds, that the conception of the year was aiready formed in the premeval period by combining into one whole the conception of Winter and Summer, which he believes to be the two primeval seasons.- Quoted by Tilak, B.G.- The Orion; p.13 f.note no.1

विशिष्ट जगतसृष्टि विषयक सिद्धान्त पाए जाते हैं। वहीं ऋग्वेद में देखें तो वहाँ भी हिरण्यगर्भ या प्रजापति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्रष्टा के रूप में व्यक्त किए गए हैं।[1] ऋग्वेद में हम देखते हैं विराटपुरुष ने स्वयं को यज्ञ सामग्रियों यथा हवि का रूप धारण कर लिया है। वर्ष एवं ऋतु ने पुनर्निर्माण का रूप धारण कर लिया विभिन्न भागों में विभाजित पुरुष के पुनर्भियोजन एवं पुनर्निर्माण के पीछे वर्ष एवं विभिन्न ऋतु हैं[2] और यह भी शाश्वत ही माना जाता है की उत्पत्ति एवं नाश पुनरुक्ति का नियम है। इसलिए मनुष्य को विश्व के पुनर्निर्माण के लिए अपना कर्त्तव्य करना चाहिए। शतपथ ब्राह्मण का दशम काण्ड अग्नि चयन के रहस्य से सम्बन्धित है जो कृत्य वेदिका के निर्माण में किए जाते हैं[3] अथवा जिस प्रकार से वेदिका की रचना होती है उसमें सृष्टि की पुनः सृष्टि एवं पुनर्निर्माण की ही गतियां प्रतीक रूप में द्योतित है।

जब किसी व्यक्ति की अग्नि-वेदिका बनाने की इच्छा होती है तो वह सबसे पहले फाल्गुन मास की पूर्णिमा इष्टि के उपरान्त या फिर माघ मास की अमावस्या के दिन पाँच पशुओं की बलि देता है। जिन पाँच बलियों में मनुष्य की बलि भी कहीं गई है बाकी अन्य चार अश्व, बैल, भेड़ एवं बकरे को कहा गया है। मनुष्य की बलि किसी छुपे स्थान पर होती थी।[4] वही कात्यायन[5] के मतानुसार इनके विकल्प में पशुओं के स्थान पर उनके सिर के आकार के स्वर्णिम या मिट्टी के सिर बनाकर प्रयोग में ला सकते हैं। वर्तमान काल में जब कभी अग्नि चयन होता है तो पाँच जीवो की स्वर्णिम आकृतियां ही प्रयोग में लाई जाती हैं इसके उपरान्त फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष के आठवें दिन एक अश्व एक गधा एक बकरा आवाहनीय अग्नि के दक्षिण में लाए जाते हैं जिनमें सबसे आगे अश्व होता है। इस प्रकार से इन सभी कृत्यों के लिए फाल्गुन की अमावस्या को दीक्षा ली जाती थी।

---

1 ऋग्वेद। 10.121

2 ऋग्वेद। 10.190.3

3 शतपथ ब्राह्मण। 6.2.2.21

4 कात्यायन श्रौत० 16.1.17, वहीं बौधायन 10.9

5 कात्यायन श्रौत०16.1.32

5.5 संहिताओं में यज्ञों का विस्तार एवं विभाजन

यज्ञों के विकास का जो क्रम हमें उपलब्ध होता है। उसमें अग्नि के एकत्त्व त्रित्त्व और पञ्चत्त्व के साथ-साथ यज्ञों के लिए एक वेद, दो वेद और तीन वेद के विनियोजन का क्रम भी देखा जाता है। तदनुसार प्रारम्भ में एक अग्नि[1] के होने से एकाग्निसाध्य यजुर्वेदमात्र से सम्पन्न होने वाले अग्निहोत्र आदि होमो का प्रचलन हुआ। तदोपरान्त महाराजा पुरुरवा एल द्वारा अग्नि के त्रेता विभाजन[2] होने पर त्रेताग्निसाध्य अर्थात तीन अग्नियों में किए जाने वाले होते हैं। वहीं इन तीन अग्नियों के नाम शतपथ ब्राह्मण[3] में प्राप्त होते हैं। दो वेदों ऋग और यजु से किए जाने वाले दर्शपूर्णमास आदि तथा तीन वेदों से ऋग, यजु तथा साम से किए जाने वाले ज्योतिष्टोम[4] आदि यज्ञों की, और तत्पश्चात पंचाग्निसाध्य विविध क्रियाकलापों की प्रकल्पना हुई।

यहाँ सोमयज्ञ, पाकयज्ञ तथा हविर्यज्ञों सभी 21 यज्ञ विधानों में से कुछ यज्ञों का वर्णन करेंगे –

वेदों में यज्ञों का विभाजन 3 भागों में किया गया है जो सात-सात यज्ञों में बंटा हुआ है। अथर्ववेदीय गोपथ में सात सोमयाग, सात पाकयाग तथा सात हविर्यज्ञों का उल्लेख प्राप्त होता है।[5]

यज्ञ	सोमयज्ञ	पाकयज्ञ	हविर्यज्ञ
1.	अग्निष्टोम	1. सायं होम	1. अग्न्याधेय
2.	अत्यग्निष्टोम	2. प्रातः होम	2. अग्निहोत्र
3.	उक्थ	3. स्थालीपाक	3. दर्श

---

1 अंगिरसां वा एकोग्निः। ऐ० ब्रा० 6.24

2 गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत्।
एकोग्निः पूर्वमासीत् ऐलस्त्रेतामकारयत्।। हरिवंश 1.26.47
....त्रेतायां स महारथः (ऐल)।
एकोग्निः पूर्वमासीद्वै ऐलस्त्रींस्तानकल्पयत्। वहीं.वायुपुराण 91.48

3 एतानि वै तेषां नामानि – यद् भुवस्पतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः। शतपथ ब्र० 4.6.7.13

4 यजुषा ह वै देवा अग्ने यज्ञं वितेनिरे। अथर्चाथ साम्ना, तदिदमप्येतर्हि यजुषा एवाग्रे
यज्ञमतन्वत, अथर्चाथ साम्ना। शतपथ ब्रा० 4.6.7.13

5 सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः।
हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः।। गोपथ ब्राह्मण 1.5.25

4.	षोडशी	4. बलिवैश्वादेव	4. पौर्णमास
5.	वाजपेय	5. पितृयज्ञ	5. नवसस्येष्टि
6.	अतिरात्र	6. अष्टका	6. चातुर्मास्य
7.	आप्तोर्याम	7. पशुबन्ध	7. निरूढपशुबन्ध

प्रस्तुत तालिका में उल्लिखित सोमयाग[1], पाकयाग[2] तथा हविर्याग[3] सभी 21 यागों का नामोल्लेख गोपथ में तथा अन्य स्थलों पर बहुलता से देखने को मिलता है[4]। इनमें से सायंहोम, प्रातःहोम, स्थालीपाक, बलिवैश्वदेव, पितृयज्ञ, अष्टका और पशु आदि सात पाकयज्ञों का सम्बन्ध गृह्यसूत्रों के साथ है इसलिए ये पाकयज्ञ स्मार्त यज्ञ कहे गये हैं और इन सभी का मन्त्रब्राह्मण के साथ साक्षात् सम्बन्ध नही है। शेष जो सात हविर्याग और सात सोम याग हैं उनका साक्षात् सम्बन्ध मन्त्रब्राह्मण व श्रौतसूत्रों के साथ है।[5]

5.5.1 श्रौत यज्ञ के भेद

प्राचीन काल में किये जाने वाले यज्ञों का वर्णन वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, स्त्रोत सूत्रों तथा गृह्य सूत्रों में विशेष रूप से पाया जाता है। श्रौत सूत्र तो वैदिक यज्ञ करने वालों के लिए मानव व्यवहारिक चर्चाएं या पद्धतियाँ मात्र हैं और उनमें प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धरण पर्याप्त मात्रा एवं संख्या में पाए जाते हैं। श्रौतयज्ञ वे कहे गये हैं जिनका विधान साक्षात् श्रुति में पठित किसी वचन से होता है जैसे याज्ञिकों मन्त्र और ब्राह्मण की वेद संज्ञा तथा आम्नाय संज्ञा पारिभाषिक है।[6] हम यहाँ वैदिक विधियों का वर्णन उपस्थित करेंगे और वह भी हम यहाँ पर ऋग्वैदिक ब्राह्मण, यजुर्वेदीय ब्रह्मण, अथर्वेदीय ब्रह्मण तथा तीनों संहिताओं के

---

1 अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यषोडशिमांस्ततः।
वाजपेयोऽतिरात्राप्तोर्यामात्र सप्तम इत्येते सुत्याः।। गोपथ ब्राह्मण 1.5.23

2 सायंप्रातहोमौ स्थालीपाको नवश्च यः।
बलिश्च पितृयज्ञश्चाष्टका सप्तमः पशुरित्येते पाकयज्ञाः।। वहीं 1.5.23

3 अग्न्याधेयमग्निहोत्रं पौर्णमास्यमावास्ये।
नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धोऽत्र सप्तम इत्येते हविर्यज्ञाः।। वहीं 1.5.23

4 गौतमधर्मसूत्र, 8.18

5 श्रौत-यज्ञ-मीमांसा, युधिष्ठिर मीमांसक, पृ० 127

6 द्र० – वेदसंज्ञा-मीमांसा, पृ० 81, 93

आश्वलायन, आपस्तंभ, कात्यायन, बौधायन एवं सत्याषाढ आदि श्रौतसूत्रों तथा गृह्य सूत्रों के आधार पर अपना ज्योतिष परक विवेचन उपस्थित करेंगे।

जो श्रौत तथा स्मार्त यज्ञ दो भागों में विभक्त हैं उन यज्ञों के पुनः प्रत्येक के तीन तीन भेद हैं जो की नित्य, नैमित्तिक और काम्य कहे जाते हैं।

नित्य यज्ञ

उन्हें कहा जाता है जिनका यथाकाल नियमतः करने का विधान है ऋत्विजों के अनुसार नित्ययज्ञों को करने से कोई फल नही होता परन्तु और उन्हें न किया जाये तो अवश्य ही प्रत्यवाय (पाप) होता है। अग्निहोत्र से लेकर सोमान्त (अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य और सोमयाग) ये सभी नित्य यज्ञ माने गये हैं।[1] वहीं महाभारत शान्ति पर्व में अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, और चातुर्मास इन तीनों को प्राचीन यज्ञ कहा गया है।[2]

नैमित्तिक कर्म

नैमित्तिक कर्म उन्हें कहा गया है जो गृहादि का दाह होने पर तथा भीषण भूकम्प आने और अतिवृष्टि आदि होने पर उनके निमित्त किये जाते हैं।

काम्य कर्म

काम्य कर्म वे होते हैं जिन्हें किसी मनोकामना की प्राप्ति के लिए किया जाये। जैसे – पशुप्राप्ति, धनप्राप्ति, यशप्राप्ति, ग्रामप्राप्ति आदि कामनापूर्ति के लिए किया जाये।[3]

---

1 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 1.1.1, धूर्तस्वामीभाष्य वृत्ति, मैसूर संस्करण पृ० 5
वहीं, आप० श्रौत० 2.21.7, हरदत्तीय व्याख्या

2 दर्श च पौर्णमासं च अग्निहोत्रं च धीमतः।
चातुर्मास्यानि चैवासन् तेषु धर्मः सनातनः।। महाभारत शान्तिपर्व 269.20

3 मीमांसक युधिष्ठिर, श्रौत-यज्ञ-मीमांसा, पृ125, प्रकाशक – श्रीमती सावित्रीदेवी, बगड़िया ट्रस्ट, कलकत्ता

5.5.2 ऋग्वेद में वर्णित श्रौतयज्ञ

अगर हम ऋग्वेद में देखें तो वहाँ हमें अग्नि के विषय में सबसे अधिक उल्लेख प्राप्त होता है। जिस समय ऋग वैदिक मन्त्रों का प्रणयन एवं संग्रह हो रहा था उसी समय में यज्ञों के प्रमुख विधान तथा यज्ञ परक अनेक कृत्यों का प्रकटीकरण हो रहा था। ऋग्वेद में यज्ञ में प्रज्वलित होने वाली अग्नि के विषय में कहा गया है कि मनुष्य तीन स्थानों पर अग्नि प्रज्वलित करते हैं जिनका सम्बन्ध तीन प्रकार की ऋतुओं से भी बताया गया है ।[1] वहीं ऋग में गार्हपत्य नामक (श्रौत यज्ञों में आहवनीय, गार्हपत्य एवं दक्षिणाग्नि नामक तीन अग्नियां प्रज्वलित होती है) । अग्नि का वर्णन भी प्राप्त होता है[2] जो कि ऋतुओं के साथ तीन प्रकार के यज्ञों सम्पादन करने वाला होता है। वहीं अन्य स्थान पर तीनों सवनों - प्रातःसवन[3], मध्यान्ह सवन[4] एवं तृतीय सवन[5] (सायंकाल) में सोम रस निकालने का वर्णन प्राप्त होता है। वहीं अन्य स्थान पर कहा गया है कि सभी दिनों में यज्ञ द्वारा अग्नि को तीन बार भोजन मिलता है।[6] यज्ञ में अग्नि उत्पन्न करने के विषय में ऋग्वेद में कहा है कि उस समय दो अरणियों के घर्षण से यज्ञाग्नि उत्पन्न की जाती थी।[7]

5.5.2.1 श्रौतयज्ञों में पशुयज्ञ

ऋग्वेद में हमें पशु-यज्ञ के विषय में कहीं न कहीं बहुत से लक्षण दिखाई देते हैं। ऋग्वेद में 'यूप' शब्द आया है और इसी यूप की प्रशंसा ऋग्वेद के अनेक स्थानों पर की गयी है। 'यूप' का अर्थ जिसमें बलि का पशु बांधा जाता था। यूप के साथ-साथ यूप के शीर्ष भाग 'चषाल' का वर्णन भी आया है।[8] वहिं जो व्यक्ति

---

1 अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिंषु त्रिषु। परि भूष पिब ऋतुन॥ ऋ० सं० 1.15.4 वहीं 5.2.2

2 गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान्देवयते यज॥ ऋ० सं० 1.15.12

3 अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः। प्रातःसावे धियावसो॥ ऋ० सं० 3.28.1

4 माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः॥ ऋ० सं० 3.28.4

5 अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम्।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम्॥ ऋ० सं० 3.28.5

6 यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन।
स सु द्युम्नैरभ्यंस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ऋ० सं० 4.12.1

7 ऋग्वेद 3.29.1-3
ऋ० वहीं, 5.9.3, एवं 6.48.5

8 यूपव्रस्का उत ये यूंपवाहाश्चषालं ये अंश्वयूपाय तक्षंति।
ये चार्वंते पचंनं सम्भरंन्त्युतो तेषांमभिगूंर्तिर्न इन्वतु ॥ ऋ० सं० 1.162.6

यज्ञ के पशु को मारता था जिसे 'शमिता'[1] कहा गया है उसका वर्णन भी हमें यहाँ प्राप्त होता है। उस समय ऐसा विश्वास था कि यज्ञ में बलि किया हुआ पशु स्वर्ग में चला जाता है।[2] ऋग्वेद में वर्णित 10 आप्री मन्त्रों से से यह पता चलता है कि श्रौतसूत्रों में वर्णित पशु- यज्ञ के बहुत से लक्षण उस समय (ऋग्वैदिक काल) में प्रचलित हो चुके थे।

5.6 हविर्यज्ञों में अग्न्याधान

अग्न्याधान सात हविर्यज्ञों में प्रथम हविर्यज्ञ है। यह एक इष्टि कही गई है। "इष्टि" शब्द का अर्थ ऐसा यज्ञ जो यजमान (याज्ञिक) तथा उसकी पत्नी के द्वारा चार पुरोहितों की सहायता से सम्पादित किया जाए। वहीं अग्न्याधान में दो दिन लगते हैं जो प्रथम दिन होता है उसे उपवसथ कहा जाता है। वह दिन आरम्भिक कृत्यों में ही निकल जाता है और दूसरा दिन प्रमुख कृतियों के सम्पादन में बीत जाता है। इसका सम्पादन दो बार किया जाता है;

5.6.1 नक्षत्र आधारित अग्न्याधान

ज्योतिष विदित सात नक्षत्रों का इस यज्ञ के लिए विधान किया गया है -

1. कृतिका
2. रोहिणी
3. मृगशीर्ष
4. पूर्वा फाल्गुनी
5. उत्तरा फाल्गुनी
6. विशाखा
7. उत्तरा भाद्रपदा

---

[1] ऋग्वेद 1.162.10 वहीं 5.43.4

[2] ऋग्वेद 1.162.21, वहीं 1.163.13

इन 7 नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र को भी उपयुक्त मानकर यज्ञ का सम्पादन किया जा सकता है।[1] वहीं आपस्तम्भ के मतानुसार अग्न्याधान के लिए अन्य नक्षत्रों हस्त चित्रा[2] आदि के नाम भी दिए गए हैं। जिनमें यजमान विशिष्ट फलों की आकांक्षा लेकर इष्टि का सम्पादन कर सकता है।

5.6.2 ऋतुओं में चातुर्वर्ण आधारित अग्न्याधान

वहीं वर्णों के आधार पर शतपथ ब्राह्मण[3] एवं आपस्तंभ[4] में कहा गया है कि क्षत्रिय को चित्रा नक्षत्र में पवित्र अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए। द्वितीय बार अग्न्याधेय ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा उपक्रिष्टों जो कि द्विजातीय नहीं है किन्तु वैदिक यज्ञ कर सकते हैं[5] इनको बढई का काम करने वाला वैश्य भी कहा जाता है इन सभी को क्रमानुसार **वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा,** पतझड़ में किसी पर्व के दिन किया जा सकता है। किन्तु ऋतुओं के चुनाव में उपयुक्त वर्णित नक्षत्रों को ध्यान में रखना आवश्यक है किन्तु यदि किसी ऋतु में कठिनाई उपस्थित होती है तो उस स्थिति में अग्याधेय किसी भी ऋतु में साम्पादित हो सकता है।[6]

5.7 हविर्यज्ञों में अग्निहोत्र

अग्निहोत्र का सम्बन्ध अहोरात्र के साथ बताया गया है गौतम मतानुसार सात हविर्यग्यों में अग्निहोत्र का स्थान दूसरा है।[7] अग्निहोत्र प्रातः एवं सायं दो बार जीवनपर्यन्त या सन्यासी को अग्निहोत्र करना होता है शतपथ के मतानुसार अग्निहोत्र मृत्यु तक करना पड़ता है।[8] वहीं जैमिनीय के मतानुसार अग्निहोत्र अनिवार्य है, और जो इसे विस्तार से सम्पादित नही कर सकते वे लोग भी इसे कर सकते हैं परन्तु वे लोग जो इसे

---

1 काणे पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 514, प्रकाशक, विनोदचन्द्र पाण्डेय, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

2 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 5.3.3-14

3 शत० ब्राह्म० 2.1.2.17

4 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। वहीं 5.3.13

5 आश्वलायन श्रौतसूत्र 2.1

6 काणे पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 514, प्रकाशक, विनोदचन्द्र पाण्डेय, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

7 गौतम धर्मसूत्र। 8.20

8 शतपथ ब्राह्मण 12.4.1.1

अपनी इच्छापुर्ति के लिए करना चाहते हैं उन्हें इसे सम्पूर्णता के साथ करना चाहिए।[1] वहीं कात्यायन के अनुसार गृहस्थ को सभी वैदिक अग्नियाँ प्रज्वलित करनी चाहिए।[2] वहीं अगर अपस्तम्भ में देखें तो वहाँ केवल गार्हपत्यों को ही इसे सतत करना चाहिए ऐसा कहा है।[3]

5.7.1 अग्निहोत्र का समय एवं विधान

अग्निहोत्र करने के विषय में वैदिक श्रौतसूत्र तथा धर्मसूत्र आदि ग्रन्थों में अनेक कथन प्राप्त होते हैं। और कहा जाता है कि दिन के पापों के लिए सायंकाल में तथा रात्रि के पापों के लिए प्रातः काल में प्रार्थना की जाती है। और वह प्रार्थना प्रातः सायं सूर्याभिमुख होकर अग्निहोत्र किया जाता है। कात्यायन के अनुसार प्रातः काल का अग्निहोत्र सूर्योदय के तथा सायंकाल का सूर्यास्त के पूर्व होना जाना चाहिए।[4] किन्तु वहीं आश्वलायन के मत में अग्निहोत्र उदयास्त के उपरान्त ही करना चाहिए। इसी प्रकार प्राचीन काल से ही यह दो मत चले आ रहे हैं; कुछ लोग सूर्योदय के पूर्व और कुछ लोग सूर्यास्त के उपरान्त ही अग्निहोत्र करने की व्यवस्था बताते हैं।[5] वहीं आपस्तंभ में इस विषय में चार मतों स्पष्टतया उल्लेख किया है। प्रथम अग्निहोत्र प्रातः एवं सायं अर्थात रात्रि एवं दिन के सन्धिकाल में करना चाहिए, या तब जब प्रथम नक्षत्र (तारा) आकाश में दिखाई पड़े, या रात्रि के प्रथम व द्वितीय प्रहर में, या प्रातः जब सूर्य के मण्डल का एक अंश दिखाई पड़े या जब सूर्य ऊपर आ चुका हो। गृहस्थ को संध्या पूजा के उपरान्त ही अग्निहोत्र करना चाहिए।[6]

5.8 संहिताओं में दर्श-पौर्णमास यज्ञ विधान

वैदिक श्रौत यज्ञों में सर्वप्रथम अग्न्याधान (अग्न्याधेय) का विचार किया गया है तदोपरान्त अग्निहोत्र के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं जिन्हें यहाँ पर उल्लिखित किया गया है। उसके पश्चात वैदिक श्रौतसूत्रों में

---

1 जैमिनि श्रौतसूत्र 6.3.1-7 एवं 8.10

2 कात्यायन श्रौतसूत्र 4.13.5

3 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 6.2.12

4 कात्यायन श्रौतसूत्र 4.13.3

5 ऐतरेय ब्राह्मण 24.4.6
कौषीतकि ब्रह्मण। वहीं 2.9

6 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 6.4.7-9

पूर्णमास का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है आश्वलायन[1] के मतानुसार सभी प्रकार की इष्टियों पर पूर्णमास इष्टि के विवेचन से प्रकाश पड़ जाता है और वही आपस्तम्भ[2] एवं शतपथ[3] में पूर्णमास के सम्पादन के विषय में कहा है कि तीनों अग्नियों गार्हपत्य, अवाहनीय एवं दक्षिणाग्नि की प्रतिष्ठापना के उपरान्त प्रतिष्ठापक को दर्शपूर्णमास का सम्पादन जीवन भर, या जब तक सन्यासी ना हो जाए, या 30 वर्षों तक, या जब तक बहुत जीर्ण ना हो जाए अर्थात कृत्य करने में पूर्णरूप में अयोग्य ना हो जाए, वहीं जैमिनीय में जबतक जीवन है तब तक उसे दर्शपूर्णमास यज्ञ का सम्पादन करते रहना चाहिए।[4] वेदों में ‘‘दर्शपौर्णमासयज्ञ’’ बहुत प्रचलित है। यह यज्ञ पूर्णिमा एवं अमावस्या तिथि को होता है। आमवस्या शब्द का अर्थ है वह दिन जब सूर्य एवं चन्द्रमा साथ रहे यह वह तिथि होती है जिसदिन सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे के बहुत निकट होते हैं अर्थात एक दुसरे से न्यूनतम दूरी पर रहते हैं। पूर्णमासी वह तिथि है जिसदिन सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे से अत्यधिक दूरी पर रहते हैं पूर्णमास का तात्पर्य है वह क्षण जब चन्द्रमा पूर्ण रहता है। दर्शपौर्णमास में ‘‘दर्श’’ अर्थात आमावस्या ‘‘पौर्णमास’’ अर्थात पूर्णमासी। माधवाचार्य के अनुसार अमावस्या का नाम दर्श इसलिए पड़ा क्योंकि अमावस्या तिथि में सूर्य और चन्द्र एक दूसरे के दर्शन कर करते हैं इसलिए इस तिथि को दर्श कहा गया है।[5] वही अगर अथर्ववेद में देखे तो पूर्णमासी का एक पूरा सूक्त है जिसमें 4 मन्त्र हैं जिसके चारों मन्त्रों में पूर्णिमा की प्रार्थना की गई है। यहाँ कहा गया है कि पूर्णिमा तिथि दिन तथा रात्रि दोनों में प्रथम यज्ञ करने योग्य है।[6] और प्रार्थना की गई है कि हे पूजनीय पूर्णिमा जो योगियों द्वारा आप की पूजा करते हैं उसको इन श्रेष्ठ कर्मों से स्वर्ग धाम की प्राप्ति होती है।[7]

पूर्णमासी और अमावस्या को अन्य तिथि नाम से भी कहा जाता है तिथियों में दी जाने वाली हवि के विषय में भी कहा गया है कि पूर्णमासी तिथि की हवि अग्नीषोमीय है और अमावस्या तिथि की हवि

---

1 आश्वलायन श्रौतसूत्र 2.1.1

2 ताभ्यां यावद्ज्जीवं यजेत। त्रिंशतं वा वर्षाणि। जीर्णोवा विरमेत्। आपस्तम्भ श्रौतसूत्र 3.14.11-13

3 श० ब्रा० 11.1.2.13

4 यावज्जीवं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत। जैमिनि 10.8.36

5 सुर्यचन्द्रमसौ परस्परं पश्यतोत्रेति दर्शः। का० मा०, चतुर्थ प्रकरण, पृ० 412

6 पौर्णमासी प्रथमायज्ञीयासीत रात्रीणामतिशवरेषु। अथ० सं० 7.85.4
अथ० सं०; वहीं - 7.85.2 - 3

7 ये त्वां यज्ञे...नाके सुकृतः प्रविष्टाः। अथ० सं० 7.85.1

सान्नाय्य (दूध और दही को मिलाना) है।[1] दर्शपौर्णमास यज्ञ के विषय में शतपथ में कहा गया है कि सम्वत्सर - यज्ञ में दीक्षित यजमान को पूर्णमास - इष्टि आज्य और पुरोडाश द्वारा तथा अमावस्या - इष्टि दही और पुरोडाश से निरन्तर रहती है।[2] अत : यह प्रसङ्ग पूर्णमास और अमावस्या इष्टियों को निरन्तरता बनाये रखने की ओर संकेत करता है। इसी निरन्तरता के आधार पर फल - प्राप्ति को समझना चाहिए। यजमान के लिए कहा गया है कि दर्शपौर्णमास से यजमान इन्द्र के समान वृत्र रूपी शत्रु को मारता है इसीलिए अमावस्या और पूर्णमासी के देवता इन्द्र एवं अग्नि माने गये हैं।[3]

5.8.1 शुक्लपक्ष/पूर्णमासी – यज्ञ

वेदों में यज्ञ की दृष्टि से पूर्णमासी बहुत महत्त्वपूर्ण है। कोश ग्रन्थ में पूर्णमासी शब्द "पुर्णि + मास + ङीप्" से बना है।[4] पूर्णमासी वह तिथि है जिसदिन सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे से अत्यधिक दूरी पर रहते हैं पूर्णमास का तात्पर्य है वह क्षण जब चन्द्रमा पूर्ण रहता है। ऋग्वेद में पूर्णिमा को अनुमति तथा राका भी कहा गया है।[5] जहाँ यजुर्वेद के एक स्थान पर पूर्णमासी तिथि को शुभ मानकर उसमें अग्नि और सोम के लिए यज्ञ करने का आदेश दिया है।[6] वहीं अन्य स्थान पर पूर्णमासी तिथि को देवता संज्ञक मानकर उससे प्रार्थना की गई है कि वह हमारे प्राणों के लिए हजार संख्या से युक्त धन प्रदान करें।[7] पूर्णिमा तिथि ज्योतिष की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। पूर्णिमा का दिन अनेक शुभ माङ्गलिक कार्यों के लिए शुभ माना जाता है। पूर्णमासी अथवा पौर्णमासी उस रात्रि को कहते हैं जिस तिथि की रात्रि को चन्द्रमा पूर्ण प्रकाशित होता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी चन्द्रमा के पूर्ण होने के सन्दर्भ में "पूर्णमास" एवं पौर्णमासी दोनों शब्द मिलते हैं।[8] यजुर्वेद के

---

1 स न पौर्णमासं हविः। नामावास्यमग्नीपोमीय एव पौर्णमास हविः सानाय्यमामावास्यं यज्ञ...| श० ब्रा० 1.6.26

2 ...यत्सं कथमेषां पौर्णमासं हविरनन्तर्हितं भवतीत्याज्येन च पुरोडाशेन चेति ब्रुयात् श० ब्रा० 12.3.5.4

3 अथ यत्पुर्वेद्युः। ऐन्द्राग्नेन यजतेऽमावास्यायां दर्शपूर्णमासयो देवते स्त...श० ब्रा० 2.4.4.17

4 आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत- हिंदी कोश, वाराणसी, पृ० 630

5 या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतियोत्तरा सा राका। ऋग्वेद, द्वितीय मण्डल
ऐतरेय ब्रा० - 32.10
गोप० ब्रा० - 6.10

6 पौर्णमास्यामग्नीषोमीयं हि पौर्णमासं हविर्भवति। श० ब्रा० 1.8.3.2

7 स नो दोह्ताम सुवीयम..प्राणाय सुराधसे पूर्णमासाय स्वाहा। तै० ब्रा० 3.7.5.13

8 पूर्णमासं यजामहे। तै० ब्रा० 3.7.5.13
पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तात्। उन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय। वहीं; तै० ब्रा - 3.1.1.12

दोनों मुख्य तैत्तिरीय और शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों में पूर्णमासी के लिए "पञ्चदशी" शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] वर्णन मिलता है कि पञ्चदशी में चन्द्रमा पूर्ण होता है और पञ्चदशी में चन्द्रमा क्षीण होता है।[2] यजुर्वेद में में स्पष्ट उल्लेख है कि जिस यजमान को चन्द्रमा के आधार पर तिथि का ज्ञान होगा वही इन यज्ञों की उचित निष्पत्ति द्वारा फल प्राप्त करने में सफल होगा। शतपथ ने पौर्णमासी यज्ञ को वृत्रघ्न अर्थात् इन्द्र के लिए माना है।[3] वहीं पौर्णमास - यज्ञ को अग्नि और सोम का भी कहा है।[4] शतपथ में उल्लेख है कि पौर्णमासी - यज्ञ चातुर्मास्य - यज्ञ से भिन्न है तथा यह पौर्णमासी - यज्ञ एक निश्चित यज्ञ है क्योंकि यह यज्ञ चन्द्रमा पर आधारित होता है। इसलिए इस यज्ञ को करने से यजमान अपने को स्थापित (प्रतिष्ठित) करता है।[5] यजुर्वेद में पौर्णमासी - यज्ञ करने वाले यजमान को अन्न एवं धन से युक्त तथा शत्रु - रहित जानना चाहिए।

5.8.2 कृष्णपक्ष/अमावस्या यज्ञ

आमवस्या शब्द का अर्थ है वह दिन जब सूर्य एवं चन्द्रमा साथ रहे यह वह तिथि होती है जिस दिन सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे के बहुत निकट होते हैं। अर्थात एक दुसरे से न्यूनतम दूरी पर रहते हैं। देखा जाए तो पूर्णिमा और अमावस्या एक दूसरे के पूरक हैं। वामन ने अमावस्य शब्द "अमा + वस् + यत् " से की है।[6] अमावस्या के लिए शतपथ में "अमा वसति " शब्द का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में एक प्रसङ्ग आता है जिसमें कहा गया है कि अमावस्या की रात को चन्द्रमा ना पूर्व में दिखाई देता है और न हि पश्चिम में परन्तु वह उस समय इस लोक में आकर जलों और औषधियों में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए यह मानना चाहिए कि देवताओं का अन्न होने के कारण चन्द्रमा अमावस्या की रात को यहाँ देवताओं के साथ निवास करता है इसीलिए "अमा वसति " अमावस्या नाम रखा।[7] वहीं अगर अथर्ववेद में अमावस्या की बात करें तो अमावस्या नाम से एक पूरा सूक्त है। जिसमें 4 मन्त्र हैं उनमें अमावस्या देवता रूप में वर्णित है तथा अमावस्या

---

1 पञ्चदशाहान्यापूर्यंते पञ्चदशा पक्षीयते..। श० ब्रा० 8.4.1.10
तस्मात्पञ्चदशापूर्यमाणस्य। पञ्चदशापक्षीयमाणस्य। तै० ब्रा० 1.5.10. 5

2 शतपथ ब्रा० 10.4.2.17

3 तद्वाऽएतदेव वाघ्नम्। यत्पौर्णमासमथै ष एव वृत्रो यच्चन्द्रमा :...। श० ब्रा० 1.6.4.12-13

4 पौर्णमास्यामग्नीषोमीयं हि पौर्णमासं हविर्भवति। श० ब्रा० 1.8.3.2

5 प्रतिष्ठतो यज्ञो यत्पौर्णमासं तत्कलप्तेनैवैतद्यज्ञेनान्ततः प्रतितिष्ठति तस्मादुदवस्यति श० ब्रा०25.2.48

6 आप्टे वामन शिवराम, संस्कृत - हिन्दी कोश, वाराणसी, पृ० 74

7 तद्यदेष एतां रात्रिमिहामा वसति तस्मादमावास्या नाम श० ब्रा० 1.6.4.5

से प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में "अमा "शब्द का प्रयोग प्रायः 10 अथवा 12 बार हुआ है, परन्तु वह वहाँ पर गृह समीप व सह के अर्थ में हुआ है। जैसे एक मन्त्र में कहा गया है कि समस्त वस्तुओं को मिलाने वाली पुष्टि कारक और बलवर्धक धन देने वाली प्रतिक्षित अमावस्या रात्रि आ गई है।[1] अमावस्या में यज्ञ विधान के विषय में कहा गया है कि "इसके निमित्त हम हवि अर्पित करते हैं। अथर्ववेद में अमावस्या को देवता रूप में वर्णित किया गया है और अमावस्या से प्रार्थना करके फल की इच्छा की गई है हम आपको यज्ञ के द्वारा हवि अर्पित करते हुए अपने मनोकामनाओं की पूर्ति की प्रार्थना करते हैं।[2] यजुर्वेदीय शतपथ में अमावस्या के दिन यज्ञ करना चाहिए ऐसा कहा गया है। क्योंकि अमावस्या तिथि के दिन चन्द्रमा इस लोक में आता है तथा यज्ञ - शाला में वास करता है।[3] इसलिए अमावस्या के दिन यज्ञ करने से चन्द्रमा पुनः उत्पन्न होता है क्योंकि अमावस्या के दिन यज्ञ कर यजमान इन दोनों (मित्र और वरुण रूपी पक्षों) को प्रसन्न करता है।[4] वहीं कहते हैं कि अमावस्या के यज्ञ में दूध और दही मिलाने वाला यजमान प्रजा और पशु दोनों से पूर्ण होकर दोष मुक्त हो जाता है।[5] यही अमावस्या - यज्ञ का सबसे बड़ा महत्त्व है। वहीं शतपथ के श्मशान - निर्माण के प्रसङ्ग में अमावस्या - तिथि को एक नक्षत्र मानकर, इस तिथि की महत्ता के विषय में वर्णन है कि जो फल सब नक्षत्रों का होता है, वही फल इस (अमावस्या की) रात को मिल जाता है।[6] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी अमावस्या - तिथि की महत्ता का कथन है। यहाँ अमावस्या - तिथि से देवता के रूप में नाना वस्तुओं की प्रार्थना की गई है। अमावस्या देवता को सौभाग्य और सेवन योग्य मानकर वर्णन है कि " प्रतिदिन दूध देने वाली गाय के समान हम आपको अर्थात् अमावस्या देवता को प्रतिमास प्राप्त करें।[7] इस प्रकार वेदों में प्रतिपादित अमावस्या - यज्ञ का महत्त्व वैदिक ज्योतिष के आधार पर स्वत : सिद्ध है।

---

1 आगन रात्री संगमनी वसूनामूर्ज पुष्टं वस्वावेशयंती।
अमावास्यायै हविषा विधेमोज दुहाना पयसा न आगन्। अथ० सं० 7.84.3

2 अथ० सं०; वहीं - 7.84.4

3 यदहरेवैषः। न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृश्येत...इमं लोकमागछति तस्मिन्निह वसति श० ब्रा० 11.1.1.4
योऽमावास्यायामाधत्ते तस्मादमावास्यायमिवाग्नीऽआद्धीत। वहीं, श० ब्रा० 11.1.1.6

4 सन्तौ प्रीणाति सर्व हवाऽअस्य प्रीतं भवति सर्वमाप्तं य एवमेतद्वेद शबा० 2.4.4.18

5 विद्वान्त्संनयत्येवं हैव प्रजया पशुभिराप्यायतेऽप पाप्मानं हते तस्माद्वे संनयेत्। श० ब्रा०1.6.4.9

6 पितर्णिममावास्यायाममावास्या वाऽएकनक्षत्रमेको हि यद्वेतां रात्रि सर्वाणि भूतानि संवसन्ति...श० ब्रा० 13.8.1.3

7 अमावास्या सुभगा सुशेवा। धेनुरिव भूय आप्यायमाना...। तै० ब्रा० 3.7.5.13

5.9 सम्वत्सर एवं मास आधारित चातुर्मास्य यज्ञ

शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थलों पर सम्वत्सर को यज्ञ कहा गया है।[1] वहाँ कहा गया है कि सम्वत्सर को यज्ञ मानने वाले व्यक्ति के सभी कार्य सफल एवं निर्विघ्नतया सफल होते हैं।[2] वहीं सम्वत्सर रूपी यज्ञ की 21 आहुतियों के विषय में भी कहते हैं कि बारह मास, पाँच ऋतु, तीन लोक तथा एक सूर्य मिलाकर 21 आहुतियाँ[3] आहुतियाँ[3] गति या प्रतिष्ठा कहलाती हैं। सम्वत्सर की इन आहुतियों को जानने वाला यजमान ही गति एवं प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और स्वर्ग को जाता है।[4] क्योंकि 21 आहुतियों के द्वारा सम्वत्सर गतिशील होता है। वहीं सम्वत्सर का अर्थ "सम्पूर्ण" माना गया है।[5] और कहा गया है कि वर्ष में तीन बार यज्ञ करने से सम्पूर्णता मिलती है।[6] वर्ष में तीन बार यज्ञ करने से तात्पर्य है कि जो वर्ष में तीन बार किए जाने वाले यज्ञ हैं वही चातुर्मास्य यज्ञ हैं। अर्थात - 1 सम्वत्सर = 4 मास (चातुर्मास्य यज्ञ) बराबर 4 मास (चातुर्मास्य यज्ञ) बराबर 4 मास (चातुर्मास्य यज्ञ)। दोनों ही शतपथ एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण में चातुर्मास्य यज्ञ को सम्वत्सर कहा गया है।[7] वहीं शतपथ में कहा गया है कि चातुर्मास्य पशुओं के आलभन से साक्षात सम्वत्सर की प्राप्ति होती है।[8] तैतिरीय में भी कहा गया है कि चातुर्मास्य यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले यजमान को प्रजा और पशुओं की वृद्धि होती है।[9]

---

1 सम्वत्सरमेव यज्ञमाप्नोत्युपनामुक...। शतपथ ब्रा० 13.3.6.7
संवत्सरो यज्ञः। वहीं, 1.2.5.12, वहीं, 1.2.5.13
संवत्सरो यज्ञस्तेऽदः....। वहीं, 4.3.3.12,
संवत्सरो वै यज्ञः। वहीं, 11.1.1.1

2 स यो ह वै संवत्सरो यज्ञ इति वेदान्ते...सर्व हैवास्य तदाप्तमवरुद्धमभिजितं भवति। श० ब्रा० 11.2.7.1

3 द्वादश वै मासा : सम्वत्सरस्य पञ्चऽर्तवस्तयो लोकास्तविंशतिरे एवैकविंशो य एष तपति....| श० ब्रा० 11.2.6.11

4 सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा। तदेतां गतिमेतां प्रतिष्ठां गछति।
....मासि- मासि स्वर्गं लोकं रोहति। श० ब्रा० 12.2.2.6

5 सर्वं वै संवत्सरः। श० ब्रा० 2.6.3.1

6 यद्वै त्रिः सम्वत्सरस्य यजते तेनैव सम्वत्सरमाप्नोति......। श० ब्रा० 2.63.10

7 चातुर्मास्येभ्यः सम्वत्सरम्......। श० ब्रा० 13.2.52;
य इत इतश्चातुर्मास्यानि संवत्सरं प्रयुक्त इति। वहीं, तै० ब्रा० 3.9.2.2

8 चातुर्मास्येभ्यः संवत्सरं तनुतऽइत्येष वै साक्षात्संवत्सरो यच्चातर्मास्यानि यच्चातुर्मास्यन्पशूनालभते साक्षादेव...। श० ब्रा० 13.2.5.2

9 यो यजमानश्चातुर्मास्यपशुभिः संवत्समनुतिष्ठत्येष यजमानः प्रजया पशुभिर्व्यध्यते...। तै० ब्रा० सा० भा०, पृ० 1117

वही कहा गया है कि सम्वत्सर में तीन बार यज्ञ करने से यजमान सम्पूर्णता को प्राप्त करता है जिससे उसके पुण्य कभी नष्ट नहीं होते।[1]

यजुर्वेदीय शतपथ और तैत्तिरीय में यज्ञ की अनेक क्रियाएँ ऐसी हैं जिनमें ' बारह ' संख्या का प्राधान्य है, यथा - बारह कपाल[2], बारह पार्थ-आहुतियाँ[3], बारह गो - दान[4], बारह उपसद[5], बारह हवियाँ[6], बारह भक्ष[7] भक्ष[7] एवं बारह आचमन से जल छोड़ना[8] आदि अनेक उद्धरण हैं। वहीं यजमान द्वारा यज्ञ वेदी - निर्माण में छह - छह व्याहृतियाँ अर्थात् बारह व्याहतियाँ पढ़कर ही यज्ञ वेदी का घेरा खींचा जाता है।[9] जिससे यहाँ हमें हमें वर्ष में होने वाले बारह मासों की भूमिका का ज्ञान होता है। इस प्रकार एक सम्वत्सर (वर्ष) में बारह मास की संख्या यज्ञ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह बारह मास जितने ज्योतिष की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, उतने ही याज्ञिक - क्रियाओं की दृष्टि से भी। जहाँ एक ओर यज्ञ के लिए यह ज्योतिषानुसार उचित काल - निर्धारण करते हैं, वहीं दूसरी ओर यज्ञ की अंगस्वरूप क्रियाओं की संख्या भी घोषित करते हैं।

इन सबके अतिरिक्त पुरोडाश भी यज्ञ - विधि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है। यज्ञ की अन्य विधियों के समान पुरोडाश का सम्बन्ध भी मास से है। शतपथ में कथन है कि "यज्ञ में दिये जाने वाले पुरोडाश से अर्धमास की प्राप्ति होती है।[10] " किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण में केवल पुरोडाश से प्रार्थना है- पुरोडाश ! देवताओं और मनुष्यों को अर्धमास एवं मास में सामर्थ्य दे।[11] इस प्रकार यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की अनेक गतिविधियों एवं मास में सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित **वरुण प्रघास** यज्ञ

---

1 अक्षय्यं ह वै सुकृतं चातुर्मास्ययाजिनो भवति....सुकृतं भवस्य तन्नु तद्यस्माच्चातुर्मास्यैर्यजते। श० ब्रा० 2.6.3.1

2 अथ यद्द्वादशकपालो भवति। द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्य......। श० बा० 5.2.5.15
द्वादशकपालो द्वादश मासा : सम्वत्सर :......। वहीं, श० ब्रा० 9.3.1.1
द्वादशकपालो भवति। द्वादश मासा : संवत्सरः। वहीं, तै० ब्रा० 1.6.1.10

3 तानि वै द्वादश भवन्ति। द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्य। तस्माद्द्वादश भवन्ति। श० ब्रा० 5.3.5.5

4 द्वादश दद्यात्। द्वादश मासा : सम्वत्सरस्य.। श० ब्रा० 2.2.2.4

5 यद्यु द्वादशोपसद् उपेयात्। द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्य सम्वत्सरस्यैवैतदूपं...। श० ब्रा० 3.4.4.19

6 तानि वैद्वादश भवन्ति। द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्य तस्माद्द्वादश भवन्ति मासि - मासि यजेते...। श० ब्रा० 5.5.2.2

7 द्वादश भक्षा भवन्ति। द्वादश मासा भक्षैरेव मासानवरुन्द्धे...। श० ब्रा० 12.8.2.30

8 द्वादशोदचमसान्कृष्टे निनयति। द्वादश मासाः संवत्सरः...। श० ब्रा०7.2.4.4,

9 षड्भिाहतिभिः। पूर्वं परिग्रह परिगृह्णाति षड्भिरुत्तरं तद्वादश कृत्वो...। श० ब्रा० 1.2.5.13

10 ...पुरोडाशेनैवातोऽर्धमासावाप्नोति...। श० ब्रा० 1.6.3.25-26

11 अर्धमासा मे कल्पन्ताम्। मासा मे कल्पन्ताम्। तै० ब्रा० 3.7.5.8

(वरुण - प्रघास यज्ञ करने से वरुण के जाल से मुक्त, प्रजा निरोगी एवं दोषरहित होती है।[1] और **साकमेध यज्ञ** के विषय में भी - साकमेध यज्ञ से वृत्र अर्थात् पापी शत्रुओं पर विजय पाता है।[2] साकमेध यज्ञों का महत्त्व तभी पूर्ण होगा यदि यजमान को मास का भली - भाँति ज्ञान होगा क्योंकि ये यज्ञ चातुर्मास्य यज्ञों (वरुण - प्रघास यज्ञ के चौथे मास में साकमेध यज्ञ होता है) की श्रेणी में आते हैं। तात्पर्य यह है कि चौथे मास में किये जाने वाले यज्ञ के विषय में वही यजमान समझ पायेगा, जिसे मास की अवधि ज्ञान होगा। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण ने यज्ञ - वेदी एवं मास में भी सम्बन्ध स्थापित किया है। वेदी - निर्माण में प्रयुक्त होने वाली यजुष्मति ईंटें ही मास एवं अर्धमास है अर्थात् जिस प्रकार एक - एक यजुष्मति ईंट से वेदी का निर्माण होता है उसी प्रकार एक - एक अर्धमास एवं मास द्वारा सम्वत्सर रूपी वेदी निर्मित होती है।[3] इसलिए ज्योतिषीय तत्त्व मास, अर्धमास और यज्ञ परस्पर अभिन्न हैं तथा एक दूसरे के पूरक है।

5.10 संहिताओं में ऋतु आधारित चातुर्मास्य यज्ञ

मुख्यरूप से चातुर्मास्य यज्ञ में तीन यज्ञों के विधान को माना जाता है। जैसे वैश्वदेव, वरुणप्रघास तथा साकमेध परन्तु कुछ विद्वानों ने शुनासीरीय चतुर्थ चातुर्मास भी सम्मिलित किया है। इनमें प्रत्येक चातुर्मास्य को पर्व अर्थात सन्धि या अंग कहा जाता है। और इनमें से प्रत्येक को प्रति चौथे मास के अन्त में सम्पादित किया जाता है। अतः इन्हें चातुर्मास्य नाम से अभिनिहित किया गया है। इन सभी का विधान क्रमानुसार फाल्गुन या चैत्र, आषाढ़ तथा कार्तिक की पूर्णमासी को या फिर पूर्णमासी के पाँचवे दिन या साकमेध के दो या तीन दिन पूर्व किए जाते हैं। मुख्य रूप से चातुर्मास्य यज्ञों के द्वारा तीन ऋतुओं जैसे वसन्त, वर्षा एवं हेमन्त के आगमन का संकेत मिलता है। और वहीं शुनासीरीय के लिए कोई निश्चित तिथि का विधान नहीं किया है। यह साकमेध के बाद या उसके दो-तीन दिन या चार दिन हो या फिर एक या चार मासों के उपरान्त सम्पादित किया जा सकता है जिसके सन्दर्भ में हम कात्यायन श्रोत[4] सूत्र में देख सकते हैं। यदि प्रथम वैश्वदेव पर्व चैत्र

---

1 उभयीवरुणपाशात्प्रमुञ्चति ता अस्यानमीवा अकिल्विषाः प्रजा प्रजायते...। श० ब्रा०2.5.2.4

2 ...साकमे धैरेतैर्वै देवा वृत्रघन्नेतैर्वेव एतैः पाप्मानं द्विषन्तं भ्रातृव्यं हन्ति...। श० ब्रा०2.5.3.1

3 यजुष्मतीभिरहान्यर्धमासान्मासानृतूंलोकम्पृणाभिर्मुहूर्तान्। श० ब्रा० 10.4.3.12

4 कात्यायन श्रौतसूत्र। 5.11.1-2

मास की पूर्णमासी के दिन सम्पादित किया जाए तो उसके बाद वरुणप्रघास तथा साकमेध क्रमशः श्रावण एवं मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अवसर पर ही किए जाते हैं।[1]

क्रम	चातुर्मास्य	मास	तिथि	ऋतु
1	वैश्वदेव	फाल्गुन	पूर्णमासी	वसन्त
2	वरुणप्रघास	चैत्र	पूर्णमासी	वर्षा
3	साकमेध	आषाढ़	पूर्णमासी	हेमन्त
4	शुनासीरीय	कार्तिक	पूर्णमासी	(अनिश्चित)

वैश्वदेव यज्ञ – आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार फाल्गुन की पूर्णिमा से एक दिन पूर्व चातुर्मास के निमित्त वैश्वानर (अग्नि) तथा प्रजन्न्य देव के लिए एक इष्टि का विधान किया गया है[2] वहीं कात्यायन के अनुसार वैश्वदेव इष्टि पूर्णिमा से एक दिन पश्चात प्रातः काल की जाती है और तभी फाल्गुन मास के पूर्णिमास इष्टि की विधि को उचित माना गया है।[3]

वरुणप्रघास यज्ञ – शतपथ में वरुण प्रघास की व्युतिपत्ति के लिए कहा गया है कि यव (जौ) अन्न वरुण के लिए है। ये इस कृत्य में खाये (घस-खाना) जाते हैं, इसलिए इसका यह नाम है। वैश्वदेव के चार मासों के पश्चात वर्षा ऋतु में आषाढ़ अथवा श्रावण की पूर्णिमा को इस यजन कृत्य का सम्पादन किया जाता है।[4] सभी चातुर्मास्यों में जो पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं उन पाँचों आहुतियों के अतिरिक्त वरुणप्रघासों में चार अन्य देवों के लिए जिनमें से इन्द्र एवं अग्नि, मरुतों, वरुण तथा क अर्थात प्रजापति को आहुतियाँ दी जाती है।[5]

---

1 काणे पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 535, प्रकाशक, विनोदचन्द्र पाण्डेय, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

2 आश्वलायन श्रौत० 2.15-20

3 कात्यायन श्रौत० 5, 1

4 धर्मशास्त्र का इतिहास, वहीं, पृ० 536-537

5 आश्वलायन श्रौत० 2.17.14

साकमेध यज्ञ – साकमेध में बहुत से कृत्यों एवं आहुतियों की योजना पायी जाती है जिससे साकमेध शब्द का प्रयोग बहुवचन में होता है और साकमेध का अर्थ है "एक ही साथ अथवा एक ही समय प्रज्वलित करना (साकम्,एध)।[1] वरुणप्रघास के चार मासों के उपरान्त कार्तिक अथवा मार्गशीर्ष की पूर्णमासी को यह साकमेध कृत्य किया जाता है इसको करने में दो दिन लग जाते हैं।[2] आपस्तम्भ के अनुसार साकमेध में आठवीं आहुति सहः (मार्गशीर्ष), सहस्य (पौष) तथा तप (माघ), तपस्य (फाल्गुन) नामक चारों मासों के नामों का उच्चारण कर दी जाती है।[3]

चन्द्रमा एवं साकमेध विधान

चातुर्मास्य के इस अंगस्वरूप साकमेध यज्ञ का काल निर्धारण चन्द्रमा के आधार पर किया गया है क्योंकि साकमेध यज्ञ सोम से सम्पन्न होने वाला यज्ञ होता है यहाँ हमें यह वर्णन मिलता है कि जिस समय आकाश में चन्द्रमा चमकता है उस समय साकमेध यज्ञ करना चाहिए क्योंकि वह चन्द्रमा ही सोम है और इस प्रकार साकमेध याजी साक्षात् चन्द्रमा के रूप में सोम का भक्षण करता है जिससे वह लोक को जीत लेता है।[4]

शुनासीर यज्ञ - शतपथ में शुनासीर यज्ञ को सम्वत्सर का रस माना है। वहाँ 'शुनम्' से अभिप्राय वृत्र पर विजय पाने वाले देवों की 'श्री' से है और 'सीर' वहाँ सम्वत्सर के रस को कहा गया है।[5] वहीं तैत्तिरीय में शुनासीर यज्ञ करने वाले को परिवर्तन सम्वत्सर की प्राप्ति होती है ऐसा कहा गया है।[6] एक स्थान पर तो सम्वत्सर को ही शुनासीर कहा गया है।[7] शुनासीरीय के लिए कोई निश्चित तिथि का विधान नहीं किया है। यह साकमेध के बाद या उसके दो-तीन दिन या चार दिन हो या फिर एक या चार मासों के उपरान्त सम्पादित किया जा सकता है।

---

1 धर्मशास्त्र का इतिहास, वहीं, पृ० 538

2 वहीं, 538

3 आपस्तम्भ श्रौत सूत्र 8.9.2

4 यत्साकमे धैर्यजते। एतमेव लोकं जयति। यस्मिँश्चन्द्रमा विभाति। चन्द्रमस एवं सायुज्यमुपैति। सोमो वै चन्द्रमाः। एष ह त्वै साक्षात्सोमं भक्षयति। स एवं विद्वान्त्साकमेधैर्यजते। तै० ब्रा० 1.4.10.7

5 अथ यस्माक्शुनासीर्येण यजेत। या वै देवानां श्रीरासीत्साकमेधैरीजानानां विजिग्यानानां तक्शुनमथ यः सम्वत्सरस्य प्रजीतस्य रस आसीत्तत्सीरं......। श० ब्रा० 2.63.2

6 परिवत्सरमाप्नोति शुनाशीरीयेण यजते...। तै० ब्रा० सा० भा०, पृ० 217

7 संवत्सरो वा इन्द्रा शुनासीरः। तै० ब्रा० 1.7.1.1

5.11 वैदिक श्रौतयज्ञों में आग्रयण कृत्य

आग्रयण दो शब्दों से बना है ; 'अग्र' एवं 'अयन'। 'अग्र' का अर्थ हुआ प्रथम फल तथा 'अयन' का अर्थ खाना हुआ।[1] आग्रयण कृत्य श्रौत यज्ञ का ही एक रूप है जो कि तीनों वैदिक अग्नियों को प्रज्वलित करने वालो के लिए मान्य है। यह आग्रयण कृत्य पूर्णमासी या फिर अमावस्या के दिन किया जाता था। चावलों के अनुसार इस कृत्य का काल शरद ऋतु था।[2] यह वसन्त में पकते हैं इसलिए इनका आग्रयण कृत्य वसन्त ऋतु में किया जाता था। वहीं आश्वलायन के अनुसार एक विकल्प है कि यदि एक बार शरद ऋतु में आग्रायण किया जाए तो यव के लिए इसका सम्पादन पुनः नही भी किया जा सकता है।[3]

5.12 वैदिक श्रौतयज्ञों में सोमयज्ञ

सोम यज्ञ के विषय में कहा गया है कि सोम यज्ञ में कार्य करने के लिए 16 पुरोहितों की आवश्यकता होती है।[4] इन्हीं 16 पुरोहितों के नामों का उल्लेख भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है जैसे - होता[5]; अध्वर्यु, उद्गाता[6]। ब्रह्मा, अग्निमिन्ध (अग्नीत या आग्नीध्र), ग्रावग्राभ, ग्रवस्तुत, शंस्ता या मैत्रावरुण, सुविप्र(ब्रह्मा), नेष्टा[7]। अग्नीत, प्रशास्ता, पोता[8], ब्राह्मण, पुरोहित आदि। ऋग्वेद में सात होताओं की चर्चा की गयी है[9] उसके साथ साथ आठवें पोता[10] को आठवां पुरोहित माना गया है।

---

1 अग्रे अयनं भक्षणं येन कर्मणा तदाग्रयणम्..। आश्वलायन 2.9.1

2 यदा वर्षस्य तृप्तः स्यादथाग्रयणेन यजेत।....अपि वा क्रिया यवेषु। आश्व० 2.9.3-5

3 वहीं, आश्व०। 2.9

4 आश्वलायन श्रौतसूत्र 4.1.6

5 होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ऋ० सं० 1.162.5

6 उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि। वृषेव....ऋ० सं०, 2.43.2

7 ...तव नेष्ट्रम त्वमग्निद्र्तायतः ॥ ऋ० सं० 2.1.2

8 ...त्वमग्निदृतायतः। तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे॥ ऋ० सं० 2.1.2

9 स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत।
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते॥ ऋ० सं० 3.10.4 वहीं, 9.10.7, एवं 10.35.10

10 मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति॥ ऋ० सं० 2.5.2

सोमरस ग्रहपात्र - ऋग्वेद में सोम के 12 ग्रह पात्रों या कलशों का उल्लेख किया गया है।[1] वहीं ब्रह्ममुनि ने द्वादश ग्रहान को चन्द्रमां के द्वारा चैत्रादि द्वादश मासों का ग्रहण किया जाता है एसा कहा है। वहीं अन्य स्थान पर सोम को पीसने तथा सोम से निकलने वाले रस के विषय में भी चर्चा की गई है जिसमें कहा गया है कि एक **ग्रावा**[2] नामक जोकि चौड़ी सतह वाला पत्थर होता था उस पर सोम के डंठल कूटे जाते थे; वहीं आगे हमें **खल**[3] नाम प्राप्त होता है जो सोम का चूर्ण बनाने के काम में लिया जाता था इसमें सोम का चूर्ण बनाया जाता था, वहीं एक **अधिषवण** नामक ग्रह पात्र होता था जिस पर सोम का रस निकाला जाता था[4]; और वहीं एक **चमस** नामक पात्र का उल्लेख भी है जो सोम पीने के उपयोग में लिया जाता था।[5]

5.12.1 सोम यज्ञ में अग्निष्टोम कृत्य

अग्निष्टोम यज्ञ सोमयज्ञों के सात प्रकार के कृत्यों में से एक है। सोमयज्ञों के सातों कृत्यों में अग्निष्टोम को एक आदर्श रूप में माना जाता है यह "एकाह" एक दिन वाला यज्ञ माना गया है इस अग्निष्टोम को एकाहिक भी कहा जाता है।[6] सोमयज्ञ अनेक प्रकार के हैं जैसे एक दिन वाला 'एकाह' है, एक दिन से लेकर बारह दिनों तक चलने वाला 'अहीन' तथा जो बारह दिनों से अधिक दिनों तक चलने वाला है उसे सत्र कहा जाता है। द्वादशा नामक यज्ञ सत्र एवं अहीन दोनों ही कहा जाता हैं।[7] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार इसका नाम अग्निष्टोम इसलिए पड़ा क्योंकि इसमें अग्नि की स्तुति की गई है और अन्तिम स्त्रोत्र भी अग्नि को ही सम्बोधित किया गया है।[8] आपस्तम्भ[9] कात्यायन[10] एवं सत्याषाढ[11] के अनुसार यह अग्निष्टोम प्रत्येक वर्ष की

---

1 छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥ ऋ० सं० 10.114.5

2 यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे॥ ऋ० सं० 1.28.1

3 उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥ वहीं 1.28.1

4 यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ॥ ऋ० सं० 1.28.2

5 त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ऋ० सं० 1.110.3

6 गौतम धर्मसूत्र। 8.21
लाट्यायन श्रौतसूत्र 5.4.34

7 जैमिनि श्रौतसूत्र। 10.6.60-61

8 ऐतरेय ब्राह्मण। 14.5
आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। वहीं, 10.2.3

9 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 10.2.2.5

10 कात्यायन श्रौत०। 7.1.4

11 सत्याषाढ सू०। 7.1

की वसन्त ऋतु में अमावस्या या फिर पूर्णिमा के दिन किया जाता है। अग्निष्टोम कृत्य कब किया जाना चाहिए इस विषय में जैमिनि[1] में आया है कि दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य एवं पशु-यज्ञ सम्पादित करने के उपरान्त ही सोम यज्ञ किया जाना चाहिए।

अग्निष्टोम-ऋतुग्रह – अग्निष्टोम कृत्य में अलग-अलग ऋतु-पात्रों में ही सोमरस को भर दिया जाता है। द्रोंणकलश के द्वारा ऋतु-पात्रों में सोमरस भरा जाता है। अध्वर्युः और उसके सहायक प्रतिप्रस्थाता के द्वारा मधु-माधव, शुक्र-सूची, तप-तपस्य आदि बारह मासों या मलमास को भी लेकर सभी तेरह मासों को सोमरस दिया जाता है।[2] संहिता ग्रन्थों में मलमास को संसर्प[3] एवं अंहसस्पति[4] कहा गया है। दो-दो मासों के साथ उन साथ उन दो-दो मासों की ऋतुओं को भी सोमरस प्रदान किया जाता है। दो मासों में प्रथम को अध्वर्यु सोमरस देता है तथा दूसरे को प्रतिप्रस्थाता के द्वारा सोमरस दिया जाता है।

क्रम	वैदिक द्वादश मास[5]	षड ऋतु
1	मधु - माधव	वसन्त ऋतु
2	शुक्र - शुची	ग्रीष्म ऋतु
3	नभ - नभस्य	वर्षा ऋतु
4	इष - ऊर्ज	शरद ऋतु
5	सह - सहस्य	हेमन्त ऋतु
6	तप - तपस्य	शिशिर ऋतु

1 जैमिनि श्रौतसूत्र। 4.3.37
2 तैत्तिरीय संहिता। 1.4.14
वाजसनेयी संहिता। वहीं 7.30
3 तै० सं०। वहीं 1.4.14.1
4 वाज० सं०। वहीं, 7.30
5 तैत्तिरीय संहिता 4.4.11

5.12.2 सोम यज्ञ में निरूढ-पशुबन्धकृत्य

पशुबन्ध कृत्य को सोमयज्ञों का एक अभिन्न अंग माना जाता है और इसका सोमयज्ञ में सम्पादन किया जाता है। यह पशुबन्ध एक स्वतन्त्र यज्ञ है जिसे निरूढ-पशुबन्ध यज्ञ भी कहा जाता है।[1] सवनीय-पशु एवं अनुबन्ध्य पशु के अतिरिक्त सभी पशुयज्ञों का आदर्श वास्तविक रूप में निरूढ-पशुबन्ध ही है। जो यह यज्ञ करता था उसे यह यज्ञ जीवन भर प्रति छः मास उपरान्त या प्रत्येक वर्ष स्वतन्त्र रूप से पशुयज्ञ करना पड़ता था।[2] जब यह यज्ञ प्रतिवर्ष किया जाता था तब यह वर्षा ऋतु, श्रावण या भाद्रपद मास की अमावस्या या पूर्णिमा के दिन किया जाता था। जो इसे छः मास में करता था उसको इसे दक्षिणायन एवं उत्तरायण के आरम्भ में करना पड़ता था। षडमासी किये जाने पर इसे फिर किसी भी दिन सम्पादित किया जा सकता था और इस तरह उसके लिए पूर्णिमा अथवा अमावस्या का दिन आवश्यक नहीं माना जाता था। वही मनु ने भी अयनों के आरम्भ में ही पशु यज्ञ की व्यवस्था की बात कही है। इस निरूढ-पशुबन्ध को करने में दो दिन का समय लग जाता है। किन्तु इसका सम्पादन एक दिन में भी पूर्ण हो सकता है। जब इसे दो दिन में किया जाता है तो प्रथम दिन में जिसे उपवसथ कहा जाता है वह आरम्भिक कार्य जैसे वेदी का निर्माण, यूप लाना आदि प्रथम दिवस में किया जाता था और मुख्य कार्य का समापन द्वितीय दिन में किया जाता था।[3]

5.13 वैदिक संहिताओं में राजसूय यज्ञ

राजसूय यज्ञ के विषय में कहा जाता है कि यह केवल क्षत्रिय के द्वारा ही सम्पादित होता है। कात्यायन के अनुसार इसे वही व्यक्ति कर सकता है जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो।[4] वही आश्वलायन के अनुसार वाजपेय यज्ञ के उपरान्त ही राजसूय यज्ञ किया जाता है।[5] वहीं राजसूय और वाजपेय दो नों यज्ञों के विषय में बताते हुए शपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि राजसूय यज्ञ करने से व्यक्ति राजा होता है और वाजपेयी

---

1 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 3.8.3-4

2 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 7.8.2-3
बौधायन वहीं। 4.1

3 काणे पांडुरंग वामन, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 541-542, प्रकाशक, विनोदचन्द्र पाण्डेय, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

4 कात्यायन श्रौत०। 15.1.2

5 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 9.9.19

यज्ञ करने से वह सम्राट होता है तथा राजा की स्थिति के उपरान्त ही सम्राट की स्थिति उत्पन्न होती है।[1] यह राजसूय यज्ञ एक जटिल यज्ञ माना गया है और इसे पूर्णतया सोम यज्ञ भी नहीं माना गया है। इसमें अनेक प्रकार की पृथक-पृथक इष्टि सम्पादित होती हैं जो कि एक लम्बी अवधि तक चलती रहती हैं अर्थात 2 वर्षों से अधिक तक इसका सम्पादन होता रहता है।

राजसूय यज्ञ विधान

इसको कब किया जाना चाहिए इसके विषय में कहते हैं कि फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन यजमान पवित्र नामक सोम यज्ञ के लिए दीक्षा लेता है, जो कि अग्निष्टोम यज्ञ की विधि के समान ही किया जाता है।[2] वहीं इसकी दीक्षा के दिनों की संख्या के विषय में भी मतभेद हैं।[3] जो राजसूय यज्ञ है उसके प्रमुख कृत्यों में अभिषेचनीया नामक कृत्य पवित्र यज्ञ सम्पादन के एक वर्ष उपरान्त किया जाता है।[4] पवित्र यज्ञ के पश्चात 5 दिन पर्यन्त एक-एक करके पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं। वहीं फाल्गुन की पूर्णिमा को अनुमति के लिए एक इष्टि की जाती है अर्थात एक पुरोडाश दिया जाता है।[5] फिर उसके पश्चात कई कृत्य किए जाते हैं। वहीं फाल्गुन मास की पूर्णिमा को चातुर्मास्यों का आरम्भ होता है अर्थात सर्वप्रथम वैश्वदेव और तब चार मास उपरान्त वरुणप्रघास आदि कृत्य किए जाते हैं। यह भी एक वर्ष तक चलता रहता है। जो चातुर्मास्य वाले पर्व होते हैं उनके बीच पूर्णिमा एवं अमावस्या के मासिक यज्ञ होते रहते हैं। फाल्गुन शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन शुनासीरीय पर्व के साथ चातुर्मास्यों की परिसमाप्ति हो जाती है फिर उसके बाद कई कृत्यों का आरम्भ होता है। जैसे पञ्चवातीय[6] तथा अपमार्ग[7] होम आदि।

---

1 शतपथ ब्राह्मण। 9.3.4.8

2 लाट्यायन श्रौतसूत्र। 9.1.2
आश्वलायन श्रौतसूत्र। वहीं 9.3.2
कात्यायन श्रौत०। वहीं 15.1.6

3 लाट्यायन श्रौतसूत्र। 9.1.8
कात्यायन श्रौत०। वहीं 15.1.4

4 लाट्यायन श्रौतसूत्र। 9.1.4

5 कात्यायन श्रौत०। 15.1.9
आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। वहीं, 18.8.10

6 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 18.9.10.11
कात्यायन श्रौत०। वहीं 15.1.20-21

7 कात्यायन श्रौत०। 15.2.1
आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। वहीं, 18.9.15-20

5.14 वैदिक संहिताओं में अश्वमेध यज्ञ

अश्वमेध की गणना प्राचीन काल से ही प्राचीनतम यज्ञों में होती आई है। ऋग्वेद में अश्व को आदित्य, त्रित एवं यम के समान कहा गया है।[1] ऋग्वेद की एक ऋचा से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना से पूर्व ही अश्वमेध का प्रचलन था।[2] शतपथ[3] तैत्तिरीय[4] आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में अश्वमेध का वर्णन किया गया है जिनमें बहुत से ऐसे राजाओं का उल्लेख है जिन्होंने अश्वमेध यज्ञ को सम्पादित किया था। वहीं तैत्तिरीय में अश्वमेध को राज्य तथा राष्ट्र कहा गया है।[5] और वहाँ उल्लेख मिलता है कि जब अबल व्यक्ति अश्वमेध करता है तो वह हरा दिया जाता है। वहीं यदि शत्रु अश्व को पकड़ ले तो यज्ञ नष्ट हो जाता है।[6] अश्वमेध को वही राजा कर सकता था जो अभी सार्वभौम नहीं हुआ है या फिर वह अभिषिक्त हो।[7] वहीं आश्वलायन का कहना है कि जो सभी पदार्थों का इच्छुक है, अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने का इच्छुक है, और जो सभी प्रकार के विजयों का अभिलाषी तथा समृद्धि का आकांक्षी हैं उनके द्वारा अश्वमेध किया जा सकता है।[8] अश्वमेध यज्ञ कब किया जाए इस विषय में कात्यायन[9] एवं लाट्यायन[10] में फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष के आठवें दिन या जेष्ठ मास के इन्हीं दिनों अथवा आषाढ़ मास के दिनों में अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया जाना चाहिए। आपस्तम्भ के मत में चैत्र मास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ को आरम्भ किया जाना चाहिए।[11] शतपथ के एक स्थान पर चन्द्रमा को अश्वमेध कहा है "तद्वाएष एवाश्वमेधो यान्चंद्रमाः"[12] और वर्णन है कि चन्द्रमा को अश्वमेध जानकर दर्शपूर्णमास के समय अथवा प्रत्येक दिन प्रातः – सायं देवों के लिए आहुति प्रदान करने वाले यजमान के

---

1 ऋग्वेद संहिता 1.163.3
2 ऋग्वेद संहिता 1.162-163
3 शतपथ ब्राह्मण 13.1-5
4 तैतिरीय ब्राह्मण 3.8-9
5 राष्ट्रं वा अश्वमेध। वहीं, 3.8-9
6 ....परा वा एष सिच्यते योअबलोअश्वमेधेन यजते। तै० ब्रा० वहीं, 3.8.9
7 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 20.1.1
लाट्यायन श्रौतसूत्र। वहीं 9.10.17
8 सर्वान कामानाप्स्यन सर्वा विजित्तिर्विजिगीषमाणः सर्वा व्युष्टी...अश्वमेधेन यजेत। आश्वलायन 10.6.1
9 कात्यायन श्रौत०। 20.1.2-3
10 लाट्यायन श्रौतसूत्र। 9.9.6-7
11 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 20.1.4
12 शतपथ ब्राह्मण। 11.2.5

अग्निहोत्र और दर्शपूर्णमास यज्ञ अश्वमेध यज्ञ में मिल जाते हैं जिससे यजमान को अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति हो जाती है।[1]

5.15 वैदिक संहिताओं में सत्र यज्ञ विधान

रात्रि सत्र - जो यज्ञ सम्बन्धित दीर्घकालिक अवधि वाले कृत्य होते हैं उन्हें सत्र कहा गया है। शत्रों की प्रकृति द्वादशाह होती है अर्थात जिसकी सीमा 12 दिनों से लेकर एक वर्ष अथवा इससे अधिक हो।[2] ऋषियों ने सुविधा के अनुसार सत्रों को रात्रिसत्रों तथा सांवत्सरिक सत्रों जो कि एक वर्ष या उससे अधिक समय तक चलने वालों में विभाजित किया। वहीं आश्वलायन[3] तथा कात्यायन[4] आदि सूत्र ग्रन्थों में त्रयोदशरात्र आदि से लेकर शतरात्र पर्यन्त के बहुत से रात्रि तत्त्वों को वर्णित किया है। इन दोनों सूत्र ग्रन्थों में शत्रों के प्रमुख सिद्धान्तों तथा द्वादशाह से उनके उद्गम का वर्णन प्राप्त होता है। यदि 1 दिन और जोड़ा जाए तो वह महाव्रत होता है और यह एक दिन का जोड़ना उदयनीय नामक अन्तिम दिन के पूर्व ही होता है। यदि दो या दो से अधिक दिन जोड़े जाएं तो ऐसा दशरात्र के पूर्व ही किया जाता है। ऐसा करना प्रायणीय दिन के उपरान्त ही सही माना गया है अर्थात अच्छा माना जाता है जिससे कि यह द्वादशा का मध्य अंश हो जाता है। यदि जो रात्रिसत्र बहुत दिनों तक चलने वाले होते हैं उन रात्रिसत्रों के विषय में षडह जोड़े जाते हैं।[5] दशरात्र की बात की जाए तो एक ही सत्र सत्र में अधिक से अधिक एक ही बार दशरात्र दोहराया जा सकता है उससे अधिक नहीं।[6]

5.15.1 सांवत्सरिक सत्र विधान

रात्रिसत्रों के पश्चात यहाँ सांवत्सरिक सत्रों का आधार गवामयन माना गया है गवामयन से तात्पर्य गायों का पथ अर्थात सूर्य की किरणें या दिन।[7] वहीं अनेक सूत्र ग्रन्थों में एक वर्ष या इससे अधिक अवधि

---

1 इयमेव प्रथमा सामिधेनी..षष्ठी चन्द्रमा सर्वं समिद्धम तस्मात्सामिधेन्यो नाम। श० ब्रा० 11.2.7.6

2 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 9.1.7

3 आश्वलायन श्रौतसूत्र। वहीं 9.1.8 - 11.6.16

4 कात्यायन श्रौत०। 24.1-2

5 कात्यायन श्रौत०। 24.1.5-7, वहीं आश्वलायन श्रौतसूत्र। 9.1.8-14

6 कात्यायन श्रौत०। 24.3.34

7 जैमिनि श्रौतसूत्र। 8.1.8, वहीं- आश्वलायन श्रौतसूत्र। 9.7.1, वहीं - कात्यायन श्रौत०। 24.4.2

वाले कतिपय सत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे आदित्यानामयन[1], अंगिरानामयन, कुंण्डपायिनामयन[2], सर्पाणामयन, त्रैवार्षिक अर्थात जो तीन वर्षों वाला, द्वादशवार्षिक अर्थात बारह वर्षों वाला, षट्त्रिंशद्वार्षिक अर्थात छत्तीस वर्षों वाला, शतसम्वत्सर[3] सौ सम्वत्सरों वाला तथा सहस्रसम्वत्सर अर्थात हजार सम्वत्सर वाला, सारस्वत अर्थात पवित्र नदी सरस्वती के तट पर किए जाने वाला सत्र आदि अनेक सत्र कहे गये हैं जो कि 1 वर्ष से अधिक अवधि वाले हैं। गवाम् अयन एक सांवत्सरिक सत्र है जो 30 दिनों वाले 12 मासों तक चलता रहता है। इसके अनेक अंग हैं जैसे -

(1) प्रायणीय अतिरात्र आरम्भिक दिन, चतुर्विंश दिन, उक्थ पाँच मास, जिनमें प्रत्येक में चार अभिप्लव षडह तथा एक पृष्ठ्य षडह पाए जाते हैं, प्रत्येक मास 30 दिनों का माना जाता है। तीन अभिप्लव एवं एक पृष्ठ्य अभिजित् अग्निष्टोम तथा तीन स्वरसाम दिन = 28 दिन ये सभी दिन मिलकर 30 दिन वाले छह मास होते हैं।[4]

(2) विषुवत् या मध्य दिन एकविंशस्तोम, जबकि अतिग्राह्य सोम-पात्र सूर्य तथा किसी अपराधी को दिया जाता है।[5]

(3) तीन स्वरसाम दिन जब स्वर नामक सामों का गायन होता है, विश्वजित दिन अग्निष्टोम एक पृष्ठ्य तथा तीन अभिप्लव षडह आरम्भ में एक पृष्ठ्य तथा चार अभिप्लव षडह वाले, चार मास, तीन अभिप्लव षडह एक गोष्टोम (अग्निष्टोम), एक आयुष्टोम (उक्थ्य), एक दशरात्र दश दिन, महाव्रत दिन (अग्निष्टोम), उदयनीय (अतिरात्र) = 30 दिन ये सभी दिन 6 मास होते हैं।[6]

उक्त गवाम अयन साम्वत्सरिक सत्र का सम्पादन विभिन्न प्रकार के फलों के लिए किया जाता है। जैसे - सन्तति, सम्पत्ति, उच्च स्थिति अथवा स्वर्ग आदि के लिए किया जाता है।[7] दीक्षा जिस दिन ली जाती है उसके विषय में सूत्र ग्रन्थों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अपने-अपने कई मत हैं। ऐतरेय के अनुसार गवाम अयन

1 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 12.1.1
2 आश्वलायन श्रौतसूत्र। वहीं 12.4.1
3 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 12.5.18
4 ताण्ड्य०। 24.20.1
5 आश्वलायन श्रौतसूत्र। 9.1.2-6, एवं 7.2-12
6 शतपथ ब्राह्मण। 14.5.18-40, एवं 21.15
7 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 21.15.1, वहीं सत्याषाढ 16.5.14

का सम्पादन माघ या फाल्गुन में किया जाना चाहिए।[1] आपस्तंभ[2] एवं सत्याषाढ[3] के मत में माघ अथवा चैत्र की पूर्णिमा के 4 दिन पूर्व इसकी दीक्षा लेने चाहिए। वहीं जैमिनी और कात्यायन के मतानुसार माघ मास की पूर्णिमा के 4 दिन पूर्व अर्थात एकादशी को दीक्षा लेनी चाहिए।[4]

5.16 दिशाओं के आधार पर यज्ञों का विधान

यजुर्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ एवं यज्ञपरक अनेक उद्धरण विस्तृत रूप से प्राप्त होते हैं यागिक क्रियाकलापों के कथन दिशाओं के सन्दर्भ में अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार यहाँ दिशाओं का यज्ञों से सम्बन्ध देखा जाता है उस दृष्टि से यदि दिशाओं का ज्ञान महर्षियों को नहीं होता तो निश्चय ही यज्ञों के क्रियाकलाप अपूर्ण ही रह जाते। इसलिए दिशाओं का अग्निहोत्र-यज्ञ के लिए, अश्वमेध- यज्ञ के लिए, वाजपेय-यज्ञ के लिए, पशुबन्ध-यज्ञ के लिए, वेदी के लिए, यजमान के लिए, यजमान द्वारा दी जाने वाली यज्ञों में हवि के लिए तथा यज्ञ में उपस्थित हुए ऋत्विजोंके लिए, यहाँ तक की स्वर्ग तथा इच्छित कामनाओं की प्राप्ति के लिए दिशाओं का विधान किया गया है। यथा- दिशाएँ अग्निहोत्र यज्ञ की परिधि है।[5] अग्निहोत्र का द्वार द्वार उत्तर की ओर होता है।[6] अश्वमेध यज्ञ करने वाला यजमान सभी दिशाओं को जीताता है।[7] वहीं प्रजापति ने ने वाजपेय यज्ञ द्वारा ऊर्ध्व दिशा को प्राप्त किया।[8] वहीं पशुबन्ध के विषय में कहा है कि पशुबन्ध यज्ञ में चार हाथ लंबे यूप से दिशाओं को जीतता है।[9] इसी प्रकार अन्य यागिक क्रियाओं के विषय में दिशाओं के लिए कहा गया है। जैसे - पूर्वाभिमुख होकर यजमान का अभिषेक करता है।[10] पूर्वाभिमुख होकर वेदी बनाई जाती

---

1 ऐतरेय ब्राह्मण। 19.4

2 आपस्तम्भ श्रौतसूत्र। 21.15.5-6, सत्याषाढ 16.5.16-17

3 सत्याषाढ 16.5.16-17

4 कात्यायन श्रौत०। 13.1.18, वहीं जैमिनि श्रौतसूत्र 6.5.30-37

5 दिश :। परिधयः। तै० ब्रा० 2.1.5.2

6 उत्तरतो वा अग्निहोत्रस्य द्वारं। शतपथ ब्राह्मण 2.3.3.14

7 तस्मादश्वमेधयाजी सर्वा दिशोऽभिजयति....। वहीं, श० ब्रा० 13.1.2.3

8 तद्ये ह स्म पुरा वाजपेयेन यजन्ते।
एतां ह स्मैवोर्ध्वा दिशमुत्क्रामन्ति...। श० ब्रा०5.1.1.6-7

9 श० ब्रा० वहीं, 11.74.1

10 तं वै प्राञ्चं तिाठन्तमभिषिञ्चति। श० ब्रा० 5.4.2.1

है।[1] उत्तर एवं पूर्व में अश्व हवि, पश्चिम में गोमृग हवि तथा दक्षिण में पशु हवि रखनी चाहिए।[2] ऋत्विजों का यज्ञ यज्ञ में अत्यधिक महत्त्व होता है इसलिए यज्ञ के पुरोहितों के रूप में दिशाओं को ऋत्विज मानकर उनका वर्णन किया गया है।[3] जहाँ पूर्व को होता, दक्षिण को ब्रह्मा, पश्चिम को अध्वर्यु तथा उत्तर को उद्गाता कहा गया है।[4]

5.17 वैदिक पाकयज्ञों में वर्णित गृह कृत्य

5.17.1 चैत्री गृह कृत्य

चैत्री जो गृहकृत्य किया जाता है वह चैत्र मास की पूर्णिमा को होता है।[5] वैखानस के अनुसार उस दिन अर्थात चैत्र मास की पूर्णिमा को घर स्वच्छ एवं अलंकृत किया जाता है। यह कार्य विशेष रूप से पति-पत्नी के लिए होता है जिसमें पति-पत्नी नए वस्त्र पुष्प आदि से अलंकृत होकर अग्नि में घृत की धारा से आहुति देते हैं तथा देवों के लिए पात्र में पका हुआ चावल लिया जाता है।[6] उसको देने के लिए ऋग्वेद[7] में तथा यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता[8] में प्रस्तुत मन्त्रों के साथ घृत की आहुतियाँ दी जाती हैं और तत्पश्चात जो पके हुए चावल हैं उनको मिश्रित करके मधु, माधव, शुक्र, शुचि, नभः, नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य आदि वैदिक मासों[9] को तथा ऋतुओं[10], औषधियों, औषधिपतियों, श्रीपति और विष्णु[11] को आहुतियाँ दी जाती हैं। उसके पश्चात अन्न की स्तुति करने के साथ पका हुआ चैत्र्य भोजन ब्राह्मणों को देखकर फिर उसके बाद लोगों के साथ में स्वयं खा लिया जाता है।

---

1 श० ब्रा० वहीं, 7.4.1.44

2 तैत्तिरीय ब्राह्मण। 3.8.20.3-4

3 दिश ऋत्विजो। श० ब्रा० 12.8.2.36

4 प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्यध्वर्योरुदीच्युगातुस्तदेव...। श० ब्रा० 13.5.4.24, वहीं- 13.6.2.18,

5 गौतम गृह्यसूत्र। 8.19

6 वैखानस गृह्यसूत्र। 4.8

7 श्रिये जातः श्रिय आ निरियाय श्रियं वयो जरितृभ्यो'दधाति।
श्रियं वसाना अमृतत्त्वमायन्भवन्ति सत्या समिथा मितद्रौ'॥ ऋग्वेद 9.94.4

8 ग्रीष्मो हेमन्तः। तै० 5.7.2.4

9 तैत्तिरीय संहिता 1.4.14.1

10 तै० सं० वहीं 5.7.2.4

11 वैष्णवम। तै० सं 1.2.13.3

5.17.2 श्रावणी अथवा श्रवणाकृत्य

श्रावणी अथवा श्रवणा कर्म इनके नाम से ही यह प्रतीत होता है कि यह श्रावण मास में किया जाने वाला कर्म है और यह दोनों कृत्य श्रावण की पूर्णमासी को सम्पादित किए जाते हैं। इन दोनों के विषय में गृहसूत्रों में जैसे आश्वलायन[1], पास्कर[2], गोभिल[3], शांखायन[4], भारद्वाज[5], आपस्तंभ आदि इन सभी में प्राप्त होते हैं। वहीं आश्वलायन[6] में इनके विषय में वर्णन मिलता है कि 'एक नए घड़े में भुने हुए जौ रख कर के उसे एक नए सिक्के पर बलि देने के लिए चम्मच के साथ रख दिया जाता है। जो जौ के साथ भुना व अन्न का आधा भाग है उसे घृत में मिला दिया जाता है फिर सूर्यास्त के समय स्थालीपाक भोजन का निर्माण किया जाता है। मृतपात्र पर एक रोटी पकाई जाती है तथा इन को ऋग्वेद के 4 मन्त्रों के साथ भोजन की आहुतियाँ दी जाती हैं।[7] घृत में रोटी डुबोकर ऋग्वेद[8] के मन्त्र के साथ सारा घृत जिसमें रोटी डुबाई गयी थी हवन में डाल दिया जाता है।

5.17.3 आश्वयुजी कृत्य

गौतम ने अपने 40 संस्कारों के अन्तर्गत सात पाक यज्ञों को माना है और वहीं उन सात पाकयज्ञों में आश्वयुजी की भी गणना की गई है।[9] वहीं आश्वलायन ने इस आश्वयुजी कृत्य का उल्लेख किया है जहाँ उन्होंने कहा है कि आश्वयुज अर्थात आश्विन की पूर्णिमा को आश्वयुजी कृत्य किया जाता है। उस दिन घर को सुसज्जित तथा अलंकृत करके स्नान किया जाता है स्नान के पश्चात श्वेत वस्त्र धारण करके पका हुआ भोजन ''पशुपतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहा'' आदि मन्त्र के साथ पशुपति को अर्पित कर देना चाहिए।[10] वहीं शांखायन गृह्यसूत्र का मत है कि इस कृत्य में घृत की आहुतियाँ अश्विनौ, अश्वयुक नक्षत्र के दोनों तारों, आश्विन की पूर्णिमा,

---

1 आश्वलायन गृ० सू०। 2.1.1-15
2 पास्कर गृ० सू०। 2.14
3 गोभिल गृ० सू०। 3.7.1-23
4 शांखायन गृ० सू०। 4.15
5 भारद्वाज गृ० सू०। 2.1
6 आश्वलायन गृ० सू०। वहीं 2.1.1-15
7 ऋग्वेद संहिता। 1.189.1-4
8 ऋग्वेद संहिता। 1.189.1-5
9 गौतम गृह्यसूत्र। 8.19
10 आश्वलायन गृह्यसूत्र। 2.2.1-3

शरद एवं पशुपति को दी जानी चाहिए; वहीं आज्य का दान ऋग्वेद के मन्त्र के साथ देना चाहिए।[1] वहीं पारस्कर गृह्यसूत्र में इस कृत्य को 'पृषातकाः'[2] कहा है और गोभिल गृह्यसूत्र ने इसका 'पृषातक'[3] नाम से उल्लेख किया है। है।

5.17.4 अग्रहायणी कृत्य

गौतम ने अपने 40 संस्कारों के अन्तर्गत सात पाकयज्ञों को माना है और वहीं उन सात पाकयज्ञों के अन्तर्गत आने वाला आग्रहायणी कृत्य को कहा गया है। वहीं इसके विषय में कहते हैं कि मार्गशीर्ष जिसे अगहन भी कहा गया है की पूर्णमासी को आग्रहायणी कहा जाता है। अतः उस दिन जो कृत्य सम्पादित हो उसे वही संज्ञा मिलती है।[4] शांखायन के अनुसार 'श्रावणी' श्रावण मास की पूर्णिमा से लोग पृथ्वी पर सोना छोड़ देते हैं, क्योंकि सर्प-दंश का डर रहता है[5] वहीं कुछ लोग आग्रहायणी एवं प्रत्यवरोहण को दो विशिष्ट कृत्य मानते हैं, जिनमें प्रथम मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को किया जाता है तथा दूसरे कृत्य को हेमन्त ऋतु की प्रथम रात्रि को किया जाता है।[6] इस कृत्य के काल एवं विधि के विषय में अन्य गृह्य सूत्रों में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। जैसे खादिर[7], गोभिल[8], मानव[9], भारद्वाज[10], आपस्तम्ब[11], बौधायन[12] आदि सभी ने प्रत्यवरोहण कृत्य कृत्य का उल्लेख किया है जो कि सभी ऋतुओं के आरम्भ में तथा अधिवास (मलमास) में किया जाता है।

5.17.5 शूलगव कृत्य

शूलगव नामक यह कृत्य आरम्भ में शिव को बैल का मांस देने से सम्बन्धित था। वहीं अन्य व्याख्याकारो नें जैसे नारायण ने कहा है शूल का अर्थ वह है जो नुकीला दण्ड रखे अर्थात शिव जिनको 'शूली'

---

1 शांखायन गृह्यसूत्र। 4.16
2 पारस्कर गृह्यसूत्र। 2.16
3 गोभिल गृह्यसूत्र। 3.8.1
4 गौतम गृह्यसूत्र। 8.19
5 शांखायन गृह्यसूत्र। 4.15.22
6 आपस्तम्भ गृह्य सू०। 19.3-5, वहीं 8.12
7 खादिर गृह्यसूत्र। 3.3.1-26
8 गोभिल गृह्यसूत्र। 3.9
9 मानव गृह्यसूत्र। 2.7.1-5
10 भारद्वाज गृह्यसूत्र। 2.2
11 आपस्तम्ब गृह्यसूत्र। 2.17.1
12 बौधायन गृह्यसूत्र। 2.10

कहा जाता है। इसलिए इस यज्ञ में बैल को यज्ञपशु के रूप में शूली रुद्र को दिया जाता है। वहीं हरदत्त का मानना है कि इसमें बैल पर शिव के दण्ड का चिन्ह अंकित होता है।[1] इस कृत्य का वर्णन सभी गृह्यसूत्रों में किया गया है यथा - आश्वलायन, बौधायन, हिरण्यकेशि, भारद्वाज, पास्कर आदि[2], वहीं बौधायन में बैल के न मिलने पर बकरा बकरा या भेड़ा दिया जा सकता है या फिर ईशान के लिए केवल स्थालीपाक पर्याप्त है।[3] शूलगव कृत्य के काल व व समय के विषय में अनेक मत हैं आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार यह शरद या बसंत के में आद्रा नक्षत्र में किया जाता था।[4] परन्तु वहीं बौधायन के मतानुसार यह मार्गशीर्ष की पूर्णिमा या आद्रा नक्षत्र में सम्पादित किया जाना चाहिए।[5] वहीं मानवगृह्य सूत्र के अनुसार रुद्र के अनुरंजन के लिए शरद ऋतु में शूलगव कृत्य किया जाता है।[6]

5.18 वैदिक संहिताओं में दानादि कर्म विधान

दान देने की विधि के बारे में हमें सर्वप्रथम वेदों से ही पता चलता है पहले से ही वहाँ दान का अर्थ स्पष्ट कर दिया गया था। याग होम एवं दान इन तीनों का वैदिक संहिताओं, सूत्र ग्रन्थों तथा स्मृतियों में विशेष महत्त्व बताया गया है। इन तीनों में बस इतना अन्तर है याग में देवता के लिए वैदिक मन्त्रों के साथ कुछ वस्तुओं का त्याग होता है, वहीं होम में अपने किसी वस्तु की आहुति किसी देवता के लिए अग्नि में दी जाती है, तथा दान में किसी दूसरे को अपनी वस्तु का स्वामी बना दिया जाता है और यह दान दान लेने की स्वीकृति मानसिक, वाचिक या शारीरिक किसी भी रूप से हो सकती है।[7] वहीं (याज्ञवल्क्य) मिताक्षरा का कहना है कि शारीरिक अर्थात कायिक स्वीकृति एक हाथ में ले लेने या छू देने से हो जाती है।[8] मनु के

---

1 महामहोपाध्याय पी.वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, अध्याय 24, पृ० 445

2 आश्वलायन गृ० सू० 4.9, वहीं बौधायन गृ० सू० 2.7, वहीं हिरण्यकेशि गृ० सू० 2.8-9, वहीं भारद्वाज गृ० सू० 2.8-10, वहीं पास्कर गृ० सू० 3.8

3 बौधायन गृह्यसूत्र। 2.7.26-27

4 आश्वलायन गृह्यसूत्र। 4.9.2

5 बौधायन गृह्यसूत्र। 2.7.1-2

6 मानवगृह्य सूत्र। 2.5.1-6

7 एष च यजिः यद्रव्यं देवतामुद्दिश्य मन्त्रेण त्यज्यते। जैमिनी 4.2.28, एवं शबर भा० 7.1.5, 9.4.32

8 एष च यजिः यद्रव्यं देवतामुद्दिश्य मन्त्रेण त्यज्यते। जैमिनि ७।११५ की व्याख्या में शबर। स्वस्वत्वनिवृत्तिः परस्वत्वापादनं च दानम्। परस्वत्वापावनं च परो यदि स्वीकरोति तवा सम्पद्यते नान्यया। स्वीकारश्च विविधः। मानसो बाचिकः कायिकश्चेति। मिताक्षरा, याज्ञवल्क्य 2, 27।

कथनानुसार कृतयुग अर्थात सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर एवं कलयुग में धार्मिक जीवन के प्रमुख रूप क्रम से तप, आध्यात्मिक ज्ञान, यज्ञ एवं दान बताए गए हैं।[1]

अगर हम दान के विषय में ऋग्वेद में देखें तो वहाँ हमें अनेक प्रकार के दानों एवं दाताओं के विषय में उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक काल में दान की महत्ता के रूप में जो विशेष प्रचलित थे उनमें गायों का दान, रथों का दान, अश्वों का दान, ऊंटों का दान यहाँ तक की नारियों (दासियों) का दान एवं भोजन आदि दान का विशिष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।[2] ऋग्वेद के तीन अलग-अलग स्थानों पर यह वर्णन है कि जो गायों या दक्षिणा का दान करता है वह स्वर्ग में उच्च स्थान पर जाता है, वहीं जो अश्व का दान करता है वह सूर्य लोक में निवास करता है, जो स्वर्ण का दानी है वह देवता होता है और जो परिधान का दान करता है वह दीर्घ जीवन का लाभ उठाता है।[3] मनु ने भी यही कहा है कि गोदान करने वाला सूर्य लोक में जाता है। वहीं ऋग्वेद ऐतरेय ब्राह्मण में सोने का दान, पृथ्वी दान एवं पशु के दान का उल्लेख किया है।[4] वही यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी सोने, परिधान, गाय, मनुष्य, पर्यंक तथा अन्य कई प्रकार की वस्तुओं के दान का संकेत मिलता है।[5] वहीं गौतम के मतानुसार अपराधों अपराधों के प्रायश्चित के लिए अश्व के दान विधान हो एसी चर्चा की गयी है।[6] वहीं शतपथ ब्राह्मण के मतानुसार देव दो प्रकार के होते हैं; स्वर्ग के देव एवं मानव देव अर्थात वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हीं दोनों में यज्ञ का विभाजन होता है, अर्थात आहुतियाँ देवों को मिलती हैं तथा दक्षिणा मानव देव (वेदज्ञ ब्राह्मणों) को दी जाती है।[7] वहीं तैत्तिरीय संहिता में उल्लेख है कि जब व्यक्ति अपना सर्वस्व दान कर लेता है तो वह भी उसकी एक बड़ी तपस्या है।[8]

---

[1] तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते !
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ मनुस्मृति 1, 86

[2] ऋग्वेद 1.125, वहीं 6.47.22-25,
ऋ० 7.18.22-25, वहीं 8.5.37-49,
ऋग्वेद 8.6.46-48, वहीं 8.46.21-24,
वहीं 8.68.14-19

[3] ऋग्वेद। 10.107.2, 7

[4] ऐतरेय ब्राह्मण। 39.6-7, एवं 30.9

[5] तैत्तिरीय ब्राह्मण। 2.2.5

[6] गौतम धर्मसूत्र। 1916

[7] शतपथ ब्राह्मण। 2.2.10.6

[8] तैत्तिरीय संहिता। 6.1.6.3

दान के अंग

पी. वी काणे ने देवलस्मृति में उल्लिखित दान के छः अंगों का उल्लेख किया है[1] जिनमें

1. दाता,
2. प्रतिग्रहीता,
3. श्रद्धा,
4. धर्मयुक्त देया अर्थात उचित ढंग से प्राप्त धन,
5. उचित काल
6. उचित देश अर्थात स्थान। इनमें प्रथम चार का स्पष्ट उल्लेख मनुस्मृति मेधातिथि ने भी किया है।

5.18.1 दान कर्म का उचित समय

दान के विषय में अर्थात दान कब किया जाए, दान देने का समय अथवा दिन कौन सा हो, कौन सा समय शुभ होता है अथवा किस समय नही देना चाहिए इन सब विषयों में बहुत से नियम बने हुए हैं। एवं याज्ञवल्क्य मतानुसार प्रतिदिन दान कर्म के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट अवसरों पर दान कर्म करना अत्यधिक सफल एवं पुण्यदाई माना जाता है।[2] लघु-शातातप ने इस विषय में लिखा है कि अयनों सूर्य के उत्तरायण एवं दक्षिणायन के प्रथम दिन में, षडशीति के प्रारम्भ में सूर्य-चन्द्र ग्रहणों के समय दान अवश्य देना चाहिए क्योंकि इन अवसरों के दान अक्षय फलों के दाता माने जाते हैं।[3] वहीं महाभारत के वन पर्व का भी यही कथन है।[4] अमावस्या के दिन, तिथिक्षय में, विषुव के दिन (जब रात-दिन बराबर हों) एवं व्यतिपात के दिन दान करने से क्रमशः सौ गुना, सहस्र गुना, लाख गुना एवं अक्षय फल देने वाला होता है।[5] वहीं सम्वर्त के मतानुसार अयन,

---

1 महामहोपाध्याय पी.वी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, अध्याय 25, पृ० 449

2 याज्ञवल्क्य। 1.203

3 अयनादौ सदा दद्याद् द्रव्यमिष्टं गृहे वसन्।
षडशीतिमुखे चैव विमुक्ते चन्द्रसूर्ययोः ॥ लघुशातातप (अपरार्क, पृ० 291)।

4 अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च।
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते।। महाभारत, वन पर्व 200, 125

5 शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रं तु दिनक्षये।
विषुवे शतसाहस्रम व्यतीपाते त्वानन्तकम।। लघुशातातप 150

अयन, विषुव, व्यतिपात, दिनक्षय, द्वादशी, संक्रान्ति में दिया हुआ दान अक्षय फल प्रदान करने वाला होता है। वहीं इनके अतिरिक्त रविवार का दिन स्नान, जप-होम, ब्राह्मण भोजन, उपवास एवं दान के लिए उपयुक्त ठहराया है।[1] वहीं विष्णुधर्म सूत्र में वर्ष की पूर्णिमाओं के दिन विभिन्न प्रकार के पदार्थों के दान करने से उत्पन्न होने वाले फलों के विषय में चर्चा की गई है।[2] महाभारत अनुशासन पर्व में कृतिका आदि 27 नक्षत्रों में किए जाने वाले दानों का उल्लेख किया गया है।[3] सभी शास्त्रों में एक सामान्य नियम बताया है कि रात्रि में दान नहीं देना चाहिए। परन्तु वहीं कुछ अन्य अपवाद प्राप्त होते हैं जैसे अत्री ने लिखा है कि ग्रहणों, विवाहों, सक्रान्तियों एवं पुत्ररत्न लाभ के अवसर पर रात्रि में भी दान दिए अथवा लिए जा सकते हैं।[4] दान के विषय में हमें शिलालेखों में भी उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनमें दान का समय कब होना चाहिए, दान किस दिन देना चाहिए। एक-दो उदाहरण के रूप में जैसे - राष्ट्रकूट मन्नराज का तिवरखेड़ ताम्र पत्रों एवं शिलालेखों में 'सूर्य ग्रहण के अवसर पर भूमि एवं ग्रामों के दान की चर्चा हुई है।[5] वहीं अमोघ वर्ष का संजन- पत्र इसमें अयनो उत्तरायण एवं दक्षिणायन के अवसर पर होने वाले दान के लिए कहा गया है।[6]

5.19 तुलनात्मक विश्लेषण

इस अध्याय में वर्णित वैदिक यज्ञों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा तत्सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्रग्रन्थों एवं वेदाङ्ग (आर्च, यजुष एवं अथर्व) ज्योतिष, तीनों संहिताओं में प्राप्त यज्ञ परक क्रियाओं का ज्योतिषीय दृष्टिकोण से उल्लेख किया गया है, तीनों संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में समान रूप से यज्ञ को प्रजापति तथा प्रजापति से उत्पन्न होने वाला और प्रजापति स्वरूप ही माना गया है। यहाँ श्रौत यज्ञों के विषय में मुख्य रूप से चर्चा की गई हैं। उन सभी श्रौत यज्ञ में अग्निचय, अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, अग्न्याधान, सोम यज्ञ, निरूढ पशुबन्ध, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, दान आदि कर्म सभी श्रौत यज्ञों के विषय में तीनों

---

1 श्रावणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके।
यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते।। वृद्ध मनु, अपरार्क पृ० 426
वहीं, संवर्तक - 208-209

2 विष्णुधर्म सूत्र। 89

3 महाभारत अनुशासन पर्व। अध्याय – 64

4 अत्रि संहिता। पद्य- 327

5 एपिग्रैफिया इण्डिका, जिल्द 11, पृ० 279, वहीं, इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, जिल्द 6, पृ० 73, सन् 613

6 इण्डियन एण्टिक्वेरी, जिल्द 12, पृ० 193

वैदिक संहिता में यज्ञ का विधान ज्योतिषीय दृष्टि से किया गया है प्रचुर मात्रा में इनके उद्धरण हमें संहिताओं में प्राप्त होते हैं। यहाँ तक की यज्ञों की संज्ञाएँ निश्चित नक्षत्रों के नामों पर, तिथियों के नामों पर, निश्चित मास, निश्चित सम्वत्सर, निश्चित पक्ष, आदि के नामों पर रखा गया है। जिससे ऋग्ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में समान रूप से हमें यज्ञों का विधान देखने को मिलता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

- अग्निपुराण - व्या० झा, तारिणीश, त्रिपाठी, घनश्याम, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1998
- अथर्ववेदसंहिता - (सायणभाष्यसमेत), विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 6 खण्ड
- अथर्ववेद - संपा ० सरस्वती, दयानन्द, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली, वि ० सं ० 1934
- अष्टाध्यायी - पाणिनि, व्या ० - झा, नरेश, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2006
- आथर्वण - ज्योतिषम् - संपा ० दत्त, भागवद, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, 1924
- आथर्वण ज्योतिष - (' देवदत्त - प्रभा ' हिन्दी - टीकोपेतम्), सं ० एवं टीका ० प्रयाग नारायण मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2003
- आपस्तम्भ धर्मसूत्र – व्या ० पाण्डेय, उमेशचन्द्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 1969
- आर्यभटीयम् - आर्यभट, व्या ० - केने . एच ., ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1874
- आश्वलायनगृह्यसूत्र भाष्यम् - सं० के०पी० ईठल, द अड्यार लाईब्रेरी ऐन्ड रिसर्च सेन्टर, अड्यार, मद्रास, 1980
- आश्वलायन श्रौतसूत्रम् - नारायणकृत वृत्ति, संपा० - मिश्र, मण्डन, श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली, 1984
- आपस्तम्ब धर्मसूत्रम् - (श्रीमद्हरदत्तमिश्रविरचितया उज्ज्वलाख्यया वृत्त्या संवलितम्), व्या० उमेशचन्द्रपाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1969
- ईशावास्योपनिषद् - सं० एवं व्या० - शशि तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2002
- ईशादि नौ उपनिषद् - व्या० गोयन्दका, हरिकृष्ण दास, गीता प्रेस, गोरखपुर, वि ० सं० 2059
- ऋग्वेदभाष्यभूमिका - (श्रीमद्दयानन्दसरस्वती निर्मिता), आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 2003,
- ऋग्वेदभाष्यभूमिका - (सायणाचार्यकृता) हिन्दी व्याख्या, हरिदत्त शास्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1972

- ऋग्वेदभाष्यभूमिका - (i) पाण्डेय, श्रीकान्त, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, प्र ० सं ० 1985 (ii) शौनक प्रणीत, संपा ० - त्रिपाठी, रामप्रसाद, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1986
- ऋग्वेदसंहिता - सायणभाष्यसमेत, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1-5 भाग, 1963-65
- ऋग्वेद – प्रातिशाख्य -(उव्वट भाष्य - संवलितम्), अनु०- वीरेन्द्र कुमार वर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1986
- ऋग्वेद का सुबोध भाष्य - श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड, गुजरात, 1978
- ऋग्वेद - (i) दयानन्द भाष्य, संपा ० मीमांसक, युधिष्ठिर, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा (ii) संपा० - मोक्षमूलर (प्रथम भाग), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृ० सं० 1964 (iii) अनु० व्या० एवं संपा० कम्बोज, जियालाल (प्रथम) मण्डल), विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्र ० सं ० 2004
- ऐतरेय ब्राह्मणम् - (श्रीमत्सायणाचार्यकृत - 'वेदप्रकाश'- भाष्येण सहितम्), सं० एवं अनु० - सुधाकर मालवीयः, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथमोभागः, 1980
- ऐतरेय आरण्यक - व्या० - कीथ, ए.बी. मास्टर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1981
- ऐतरेयब्राह्मण - (सुखप्रदानाख्यवृत्ति सहितम्), नाग प्रकाशक, दिल्ली, तीन - भाग, 1991
- कपिष्ठल कठ संहिता -संपा ० रघुवीर, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1968
- काठकसंहिता - श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड, गुजरात, 1983 :
- काण्वसंहिता - श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी नगर, बलसाड प्रदेश, गुजरात, 1983
- कालमाधव - सं०- ब्रजकिशोर स्वाई, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005
- कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय – संहिता - (श्रीमत् सायणाचार्य विरचित - भाष्य समेता), श्रीलालबहादुरशास्त्री केन्द्रीय संस्कृतविद्यापीठम्, परमेश्वराननद - शास्त्री, सं० मण्डन मिश्र, नई दिल्ली, प्रथमो भागः, 1981

- कृष्णयजुर्वेदीय तैतिरीय संहिता - संपा० - आर.एल. कश्यप, श्री अरविन्दो कपाली शास्त्री इन्स्टीट्यूट ऑफ वैदिक कलचर, बंगलौर, 2003
- कौटिल्य अर्थशास्त्रम् - कौटिल्य, व्या० - वाचस्पति, गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1962
- गोपथ ब्राह्मण भाष्यम् - भाषा त्रिवेदी, क्षेमकरणदास, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1993
- छन्दसूत्रम - भाष्य० - शर्मा, अखिलानन्द, अनु० विरजानन्ददैवकरणि, आचार्य धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री प्राच्यविद्यापीठ, नई दिल्ली, 1965
- छान्दोग्योपनिषद् - भाष्य० शर्मा, शिवशंकर, हरियाणा साहित्य संस्थान, रोहतक, प्र०सं० 2000
- जैमिनीयब्राह्मणम् - सं० रघुवीर एवं लोकेशचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986
- तन्त्रसिद्धान्तरत्नावली - काशी हिन्दू महाविद्यालय, वाराणसी, 1997
- ताण्डयब्राह्मण - सायण भाष्य सहित, भूमिका व टिप्पणि सहित शास्त्री, ए . चिन्नस्वामी द्वारा सम्पादित, वाराणसी, 1936
- तैत्तिरीयोपनिषद् - सानुवाद शाङ्कर भाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं ० 2019
- तैत्तिरीय ब्राह्मण - सायणभाष्यसहित (3 भाग), आनन्दाश्रम, पुणे, 1934
- तैत्तिरीय संहिता - सपा० - कश्यप, आर.एल., श्री अरविन्दो कपाली शास्त्री, इंस्टीट्यूट ऑफ वैदिक कलचर, बंगलौर, 2004
- तैत्तिरीयारण्यकम् - (श्रीमत्सायणाचार्यविरचित भाष्यसमेतम्), संशोधक - बाबाशास्त्री फडके, आनन्दाश्रम संस्कृतग्रन्थावलिः, प्रथमो - द्वितीयो भाग, 1981
- तैत्तिरीय ब्राह्मण - (भट्टभास्करमिश्रभाष्य सहितम्), सं० आर० शामा शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, भाग -2, पुनर्मुद्रित, 1985
- तैत्तिरीय ब्राह्मण - (भट्टभास्करमिश्रभाष्य सहितम्), सं० - ए० महादेव शास्त्री एवं एल० श्रीनिवासाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, भाग- 3-4, पुनर्मुद्रित, 1985

- तैत्तिरीयसंहिता - (भट्टभास्कर - सायणाचार्य विरचित भाष्य सहित), वैदिक - संशोधन मण्डल, पूना -9, प्रथमखण्डस्य द्वितीयोभागः (प्रथम - काण्डे प्रपाठका : 5-8), 1972
- धर्मसिन्धु - टीका०- राजवैद्य रविदत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2004
- नारद संहिता - नारदऋषि, संपा० - शर्मा, वसतिराम, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई, वि०सं० 1994
- निरुक्त - यास्काचार्य, संपा० शास्त्री, छज्जूराम, मेहरचन्द्र लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1985
- निरुक्तम् - (दुर्गाचार्य संस्कृत टीका), (भगीरथशास्त्रिणा हिन्दी व्याख्या) मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तकालय, दिल्ली, 1964
- पञ्चविंश ब्राह्मण - सायणभाष्यसहित, तिरूपति, 1967
- पञ्चसिद्धान्तिका - वराहमिहिर, टीका० शर्मा, सत्यदेव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2009
- पारस्कर गृह्यसूत्र - व्या०- शास्त्री, हरिदत्त (दो खण्डों में), भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1972
- पाटी गणित -श्रीधराचार्यकृत, संपा० शुक्ला, कृपाशंकर, गणित ज्योतिष विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 1959
- पाणिनीयशिक्षा - सत्यप्रकाश दुबे एवं शम्भु दयाल पाण्डेय, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2004
- ब्रह्माण्डमहापुराणम् - सं० के०वी० शर्मणा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1983
- बृहत्संहिता - वराहमिहिर, टीका ० मिश्र सुरेशचन्द्र, रंजन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, वि ० सं ० 1997
- बृहज्जातकम् - केदारदत्त जोशी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1994 :
- बृहदारण्यकोपनिषत् - (आनन्दगिरिकृतटीकासंवलित - शाङ्करभाष्य समेता), सखारामत्मज एवं रामचन्द्रशास्त्रिणा, वाणीविलास संस्कृत पुस्तकालयः, काशी, वि०सं० 2011
- बृहद्देवता - अनु० - रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी, 1963
- बौधायनगृह्यसूत्रम् - आर० शामा शास्त्री, पाणिनी, अनसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 1982

- बौधायनधर्मसूत्रम् - (श्रीगोविन्दस्वामिप्र णीतविवरणसमेत), चित्रस्वामिशास्त्री एवं उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी, 1972
- भगवद् गीता - भाष्य० - सिद्धान्तालङ्कार, सत्यव्रत, विजय कृष्ण लखनपात, नई दिल्ली
- भविष्य पुराण - संपा० शर्मा, श्रीराम, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1968
- मनुस्मृति - आचार्य मनुकृत, व्या० - उर्मिला रुस्तगी . जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005
- मनुस्मृति - अनु० - उर्मिला रुस्तगी, जे०पी० पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, द्वितायोध्याय 2002; द्वादशोऽध्याय 2004
- महाभारत - संपा० सातवलकर, दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, भारत मुद्रणालय, बलसाड (गुजरात) 1978
- महाभाष्य - पतञ्जलि कृत, अनु० शास्त्री, चारूदेव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, सं० 2025
- मार्कण्डेय पुराण - अग्रवाल, वासुदेवशरण, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1962
- माण्डूक्योपनिषद् - गौड़पादीय कारिका, शाङ्करभाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं ० 2029
- माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम् - (श्रीमत्सायणाचार्यविरचितवेदार्थभाष्य), सं० - युगल किशोरमिश्रः, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी, प्रथमो भागः, 2004
- मीमांसादर्शनम् - (शबरमुनिविरचित भाष्येणानुगतम्), सं० महाप्रभुलाल- गोस्वामिना, तारा बुक एजेंसी, वाराणसी, द्वितीयो भागः, वि०सं० 2044
- मुण्डकोपनिषद् - जियालाल काम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1992
- मुहूर्तगणपति - टीका०- नर्वदेश्वर तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2003
- मुहूर्तचिन्तामणि - सं० - ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2000
- मुहूर्त्त चिन्तामणि - रामाचार्य, व्या० जोशी, केदारदत्त, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1982
- मुहूर्तपारिजात - सं० सीताराम झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006

- मुण्डकोपनिषद् - शाङ्करभाष्य तथा हिन्दी व्याख्या सहित तिवारी, शशि, मेहरचन्द्र लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982
- मैत्रायणी संहिता - श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, बलसाड, गुजरात, 1983
- यजुर्वेद - सरस्वती, दयानंद, दयानंद संस्थान, नई दिल्ली, वि०सं० 1934
- यजुर्वेद - श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, वेदनगर, बरेली, 1976
- यजुर्वेदीय काठक संहिता - संपा० सातवलेकर, पाददामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (गुजरात प्रान्त) चतु० सं० 1983
- याज्ञवल्क्यस्मृति - सं० गङ्गासागरराय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1998
- रामायण - वाल्मीकि, टीका० - सरस्वती, जगदीश्वरानन्द गोविन्दराम, हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, दिल्ली, 1988
- लगध ज्योतिष लगध, व्या० - शर्मा, पुनीता, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2008
- लाट्यायन श्रौतसूत्र - सं० आनन्दचन्द्रवेदान्तवागीशेन, मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1982
- लीलावती - भास्कराचार्य, व्या० - झा, लषणलाल चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2001
- व्याकरणमहाभाष्यम् - सं० वेदव्रत स्नातक सिद्धान्त शिरोमणि, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल, हरियाणा, 2000
- वशिष्ठ संहिता - वशिष्ट संपा० शास्त्री, गिरजाशङ्कर, ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, प्रयाग, 2006
- वाक्यपदीयम् - भर्तृहरि, व्या० शर्मा, रघुनाथ, सरस्वती ग्रन्थमाला सीरिज, निर्देशक अनुसंधान संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी 1976
- वाल्मीकि रामायण - (1) वाल्मीकि, सपा० आर्य, रवि प्रकाश, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2004 .

- वाजसनेयी संहिता - महीधर भाष्य सहित, सम्पा० - वेबर, ए ., निर्णय सागर संस्करण, बम्बई, 1912
- वायुपुराण - आप्टे, हरिनारायण, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1905
- वाजसनेयी-माध्यन्दिन शुक्ल-यजुर्वेद-संहिता - (श्रीमदुवाचार्य श्रीमहीधराचार्य कृतभाष्येण च समन्विता), सं० - जगदीशलाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1971
- विष्णुमहापुराणम् - सं० थानेशचन्द्र उप्रैति, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथमोभागः, 2003
- वेदाङ्ग ज्योतिष - व्या० मिश्र, सुरेशचन्द्र, रंजन पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2005
- वेदाङ्गज्योतिषम् - व्या०- शिवराज कौण्डिन्न्यायन :, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2005
- वैदिक ज्योतिष - संपा० - शास्त्री, गिरिजाशङ्कर, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, वि० सं० 2065
- शतपथब्राह्मणम् - (श्रीमत्सायणाचार्यविरचितवेदार्थप्रकाशाख्य व्याख्यासमेतम्, श्रीहरिस्वामिभाष्यसमेतम्), ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, देहली, पाँच भाग, पुनर्मुद्रित, 1987
- शतपथ ब्राह्मण - सं० एवं अनु० - चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1973
- शाखायनब्राह्मणम् - सं० गङ्गासागरराय:, रत्ना पब्लिकेशन्स्, वाराणसी, 1987
- शाखायन श्रौतसूत्रम् - आनर्तीयगोविन्दभाष्य सहित (2 भाग), दिल्ली, 1989
- शुक्लयजुर्वेद संहिता - उवट तथा महीधर भाष्य सहित, हिन्दी व्या० - शास्त्री, रामकृष्ण, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1992
- शुक्लयजुर्वेदसंहिता - (श्रीमदुवटाचार्य श्रीमहीधराचार्यकृतभाष्येण च संवलिता) व्याख्या राम किष्ण शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,1992
- श्वेताश्वतरोपनिषद् - सं० एवं व्या०- तुलसीराम शर्मा, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2001
- सर्वानुक्रमणी - राजेन्द्र नाणावटी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2001
- सारावली - मुरलीधर चतुर्वेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- सामवेद संहिता - टीका० सातवलेकर, दामोदर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, I चतु० स० "

- सिद्धान्त दर्पण - (1) चन्द्रशेखर सिंह सामन्त कृत, अनु०- अरुण कुमार उपाध्याय, नाग प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1996
- सिद्धान्तबिन्दु - मधुसूदन सरस्वती, संपा० पन्त, श्रीकृष्ण, अच्युत ग्रन्थमाला) कार्यालय, काशी, 1932
- सिद्धान्त शिरोमणि - व्या० – शर्मा, सत्यदेव (भाग I. II) चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० 2007 .
- सुश्रुतसंहिता - अनु०- अत्रिदेव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968
- सूर्यसिद्धान्त - व्या०- गणपतिलाल शर्मा, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2007
- सूर्य सिद्धान्त - संपा० - पाण्डेय, रामचन्द्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2004
- श्रीमद्भागवतपुराण - (भाषा टीका), रामतेजपाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1986

सहायक ग्रन्थ

- उपाध्याय, बलदेव - प्राचीन भारतीय गणित, विज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978
- उपाध्याय, बलदेव - वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 2006
- उपाध्याय, बलदेव - संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1994
- उपाध्याय, बलदेव - वेदभाष्यभूमिकासंग्रह (सायणाचार्यविरचितानां) स्ववेदभाष्यभूमिकानां संग्रह :), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1985
- उपाध्याय बलदेव व चौबे व्रज बिहारी - संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रथम खण्ड- वेद, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1996
- उपाध्याय बलदेव व पाण्डेय ओम प्रकाश - संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, द्वितीय खण्ड - वेदाङ्ग, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997
- उर्वी - यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के प्रमुख आख्यानों का समीक्षात्मक अध्ययन, जे० पी . पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1994

- ऋषि, उमाशङ्कर शर्मा - संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी . 1994
- कपूर, गौरीशंकर - नक्षत्र फल दर्पण, रंजन पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 1993
- कपूर, दीपक - खगोल एवं गणित ज्योतिष, रंजन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997
- कात्यायन, महर्षि अभय - अथर्ववेदीयज्यौतिषम्, भ्रमभंजनी- हिन्दी टिका, चौखम्बा, सुरभारती प्रकाशन, 2004
- काश्यप अर्जुन चौबे (अनु०) - पाण्डुरंग वामन काणे (मूल), धर्मशास्त्र का · इतिहास, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ, भाग-4, 1973
- कीथ, ए.बी. - संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनुवादक शास्त्री मंगलदेव, मोतीलाल बनारसीदास, 1986
- कुमार , शशिप्रभा - कालतत्त्व चिन्तन, जे० पी० पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1997
- गुप्त, रामेश्वर दयाल - वैदिक वाङ्मय में विज्ञान, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, भरतपुरी, उज्जैन, 1997
- गैरोला, वाचस्पति - संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003
- गौड़, रघुनन्दन प्रसाद - नाक्षत्र ज्योतिष, मनोज पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1997
- जैन, विमल प्रसाद - ज्योतिषीय गणित एवं खगोल शास्त्र, एल्फा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2007
- जोशी, देवीदत्त - सुगम ज्योतिष, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2000
- झारखण्डी, शिवनाथ - भारतीय ज्योतिष, शंकर बालकृष्ण दीक्षित (मूल), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2002
- तिवारी, शशि - वैदिक अध्ययन, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2004
- तिवारी, शशि - संस्कृत साहित्य का इतिहास, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1999
- तिवारी शशि - सूर्य देवता (वैदिक और वेदोंत्तर संस्कृत सूर्यस्तुतियों में), मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1994

- द्विवेदी, कपिलदेव - वेदों में विज्ञान विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (उ० प्र०) . [सं० 2006
- दत्त, विभूतिभूषण तथा सिंह, अवधेश नारायण - हिन्दी गणित शास्त्र का इतिहास, प्रकाशन ब्यूरो, लखनऊ, 1956
- दहाल, लोकमणि - भारतीयज्योतिषशास्त्रस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003
- दीक्षित, शंकरबालकृष्ण - भारतीय ज्योतिष, अनुवादक - झारखण्डी, शिवनाथ, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1963
- धीर, अपर्णा - यजुर्वेदीय ब्राह्मणों में ज्योतिष के तत्त्व. प्रतिभा प्रकाशन, 2013
- पाण्डेय ओम प्रकाश - वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 2005
- प्रसाद, गोरख - भारतीय ज्योतिष का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004
- पाण्डेय, दीपनारायण - प्राचीन भारत के युग चक्र, उर्मिला पब्लिकेशन्स, जॉनपुर . 1993
- मिश्र सुरेशचन्द्र - ज्योतिषसर्वस्व, रंजन पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2004,
- मिश्र वीरेन्द्र कुमार - कृष्णयजुर्वेद : एक अध्ययन (कपिष्ठल कठ संहिता के विशेष सन्दर्भ में), प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1990
- मुळे, गुणाकर - भारतीय अङ्क पद्धति की कहानी, राजकमल प्रकाशन, पटना, 1975
- राय, रामकुमार (अनु०) - मैकडौनेल और कीथ (मूल), वैदिक इण्डेक्स, भाग, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, वि० सं० 2018
- विद्यालंकार, सरोज ' दीक्षा ' - ऐतरेय एवं तैत्तिरीय ब्राह्मणों के निर्वचन, नाग प्रकाशक, दिल्ली, 1989
- वेदालंकार, जयदेव - वैदिक साहित्य का इतिहास, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1996
- शर्मा, उर्मिला देवी - शतपथ ब्राह्मण एक सांस्कृतिक अध्ययन, मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1982
- शर्मा, विनोद कुमार - ज्योतिर्विज्ञानामृतम, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2004

- शर्मा, उमाशङ्कर - संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी 1999
- शर्मा, के.एल. - वेदाङ्ग, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, पंजाब, 1983
- शर्मा, अपर्णा - भारतीय संवतो का इतिहास, एस० एस० पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994
- शर्मा, कुन्दनलाल - वेदाङ्ग वैदिक वाङ्मय का वृहद इतिहास, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1985
- शास्त्री गिरिजा शङ्कर - वैदिक ज्योतिष, ज्योतिष कर्मकाण्ड एवं अध्यात्म शोध संस्थान, प्रयाग, संवत्-2060
- शास्त्री, नेमिचन्द्र - भारतीय ज्योतिष, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2004 .
- श्रीमाली, राधाकृष्ण - नक्षत्र विज्ञान, डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा०) लि०, नई दिल्ली, 1998
- शास्त्री, रूपकिशोर - सामवेदीय ब्राह्मण - दार्शनिक अध्ययन, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1990.
- शुक्ल, दुर्गाप्रसाद - ज्योतिषकौमुदी, मेघ प्रकाशन, दिल्ली, 2004
- सिंह, देवकीनन्दन - ज्योतिष रत्नाकर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005
- Aryabhatiya Aryabhata, With the Commentary of Bhaskara and Someavara, edited by Shukla, Kripa Shankar, Indian National Science Academy, New Delhi, 1976
- Vedavyas E. - Astronomical Dating of the Mahabharata War, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1986
- Vedanga Jyotish of Lagadha in its RK & Yajus Recensions with English trans & notes by Prof. T.S. Kuppanna Sastri, ed . by K.V. Sharma, India National Science Academy, New Delhi, 1985

कोश ग्रन्थ संस्कृत हिन्दी

- आप्टे, वामन शिवराम - संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1933

- जैन, उदयचन्द्र - बृहद संस्कृत - हिन्दी शब्द - कोष (भाग -2), न्यू भारती बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, प्र० सं० 2006
- देव, राजा राधाकान्त - शब्दकल्पद्रुमः, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1987
- दैवज्ञ, मुकुन्द - ज्योतिषशब्दकोषः, भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम, वि० सं० 2024
- शर्मा, हरिदत्त - ज्योतिष विश्वकोश सुबोध पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2000
- सिंह अमर, अमरकोष (महेश्वर कृत टीका समेत), (संशोधक) नारायण राम आचार्य, भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली, 2004

English

- Apte, Vama Shivram - The Practical Sanskrit English Dictionary, Motilal Banarsidass, Delhi, 1985
- Apte, Vama Shivram - The Students English Sanskrit Dictionary, Mrs. Radhabai Atmaram Sagoon Bookseller and Publishers, Bombay, 1893
- Arthur, Macdonell - A Sanskrit English Dictionary, Longmans Green and Co., London, 1893
- Oxford Dictionary, Oxford University Press, New York, 2003
- Webster, Thomas - Illustrated Oxford Dictionary, Oxford University Press, New York, 2006

Websites

- http://www.ulib.org
- http://www.wikipedia.org
- http://www.tamilbrahman.org

ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तःसम्बन्ध

दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक
डॉ. उमाशंकर
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

शोधार्थी
प्रवीण ममगाई

परामर्शदाता
डॉ. राजीव रंजन
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

परामर्शदाता
डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज
पूर्व विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक

संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
2022

उपसंहार

प्रस्तुत सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध के उपसंहार रूप में यहाँ कुछ मुख्य विन्दुओं का उल्लेख किया गया है। जिनके माध्यम से सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध के सार को उसी प्रकार समझ सकेंगे जिस प्रकार एक चावल के दाने के स्पर्श से सम्पूर्ण पके हुए भोजन का ज्ञान होता है। यहाँ वैदिक साहित्य में उल्लिखित ज्योतिषीय विषय के आधार पर तीनों ऋग ज्योतिष, याजुष ज्योतिष तथा अथर्व ज्योतिष जो ज्योतिषीय विषय विद्यमान है उनके आधार पर तीनों में परस्पर सम्बन्ध दिखाने का प्रयास किया गया है। जो कि तीनों ज्योतिषीय विषय पाठकों के सामने नवीन रूप में एक साथ प्रस्तुत कर सके इसी आधार पर शोधार्थी ने **"ऋग्यजुर्वेद ज्योतिष एवं आथर्वण ज्योतिष का अन्तः सम्बन्ध"** शीर्षक शोध-प्रबन्ध रूप में चुना। वेदाङ्गोत्तर काल में ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थों की रचनाएँ हुयी परन्तु वेदाङ्ग के समय तक केवल एक लगढ़कृत लगध ज्योतिष ही ऐसा ग्रन्थ था जो ज्योतिष शास्त्र का मूल और प्रमाणिक ग्रन्थ था। वेदाङ्ग ज्योतिष से पूर्व ज्योतिष विद्या का समूर्ण ज्ञान मूल वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं वेदाङ्ग साहित्य में इतस्ततः प्रचुर मात्र में बिखरा हुआ था। जिसका साहित्यिक रूप हमें वेदाङ्ग ज्योतिष के रूप में प्राप्त होता है।

वैदिक संहिताओं में सूर्य का उल्लेख प्रचुर मात्रा मिलता है। यद्यपि यहाँ सूर्य का ज्योतिष शास्त्र में वर्णित सूर्यग्रह के सामान ग्रह कहने का उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋगसंहिता, याजुष संहिता एवं अथर्व संहिता में वर्णित सुर्यपरक ऋचाएॅ निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय सूर्य रूपी ग्रह की मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक जगह सूर्य के लिए कहा गया है कि सम्पूर्ण जगत सूर्य से घिरा हुआ है और यही हमें ऋग्वेद के उस मन्त्र में देखने को मिलती है जहाँ सूर्य को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियामक बताया गया है अर्थात पूरे ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य स्थित है और पूरा जगत उस सूर्य से घिरा हुआ है। जब ज्योतिष में खगोलीय सौरमण्डल को देखते हैं तो वहाँ भी सूर्य सभी ग्रहों से घिरा हुआ है और सभी के मध्य में स्थित रहता है। इस प्रकार से सभी में साम्यता देखी जा सकती है।

वैदिक संहिताओं में "आदित्य" शब्द का उल्लेख प्रचुर मात्रा में किया गया है। सभी ने इसे सूर्य का ही पर्यायवाची माना है वहीं आदित्यों की संख्याओं तथा नामों में कुछ भेद भी देखने को मिलता है। जैसे

ऋग्वेद में आदित्यों की संख्या छः तथा सात बतायी गयी है वहीं यजुर्वेद में द्वादश आदित्यों का उल्लेख प्राप्त होता है और अथर्व में देखें तो वहाँ आदित्यों को अष्ट आदित्य कहा गया है जो की सत्य से अष्टमी को उत्पन्न हुए। इस प्रकार से उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में चन्द्रमा का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है। यद्यपि यहाँ चन्द्रमा को ज्योतिष-शास्त्र के समान चन्द्रमा का ग्रह के रूप में उल्लेख प्राप्त नही होता तथापि ऋग, यजु, अथर्व में वर्णित चन्द्रमा परक मन्त्र निश्चय ही ज्योतिष शास्त्रीय चन्द्रग्रह रूपी मूल पृष्ठभूमि को तैयार करती है। वहीं साम्यता देखें तो तीनों ऋगसंहिता, यजुर्वेदसंहिता एवं अथर्ववेद संहिता में चन्द्रमा को सूर्य पर आधारित कहा है और चन्द्रमा को सूर्य से प्रकाशित होने वाला बताया गया है। तीनो में चन्द्रमा को देवत्त्वरूप प्रदान किया गया है वहीं चन्द्रमा को तीनों वेदों में तिथियों का आधार और निर्माण कर्ता बताया गया है। वैदिक मुनियों ने अपने यज्ञ प्रयोजन की सिद्धि के लिए तिथियों के नाम रखे थे जिनके लिए वे अनुमति, राका, सिनीवाली, कुहू आदि नाम का प्रयोग करते थे। वहीं पूर्णमासी और अमावस्या देवत्त्वरूप में वर्णनं किया गया है और इनमें वैदिक ऋषियों ने दर्श पौर्णमास याग का विधान किया है जो कि काल विधान रूपी ज्योतिष शास्त्र के आधार पर निर्धारित तिथियों के आधार पर ही सम्भव है जो तिथियों का निर्धारण ज्योतिष चन्द्रमा की घटती बढती कलाओं के आधार पर करता हैं जिसके फलस्वरूप वेदाङ्गादि ग्रन्थों में हमें प्रतिपदा से लेकर पञ्चदशी अर्थात पूर्णिमा/अमावस्या तक की सम्पूर्ण तिथियों का उल्लेख प्राप्त होता है। जहाँ वैदिक मूल संहिताओं में सूर्य चन्द्र परक अनेक मन्त्र एक साथ पढ़े गये हैं वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में सूर्य चन्द्रमा के एक साथ आने पर पञ्चसंवत्सरात्मक युग का आरम्भ होता है। इस प्रकार से देखें तो ऋग याजुष अथर्व तीनों वैदिक ग्रन्थों में प्रतिपादित चन्द्र ग्रह सामान रूप से उल्लेख किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि तिथियाँ, अमावस्या पूर्णिमा और चन्द्रादि ग्रहों का तीनों मूल संहिताओं में समान रूप से इतस्ततः प्रचुर मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है जिनका विस्तृत रूप वेदाङ्गादि ज्योतिष ग्रन्थों में परिलक्षित होता है।

वेदों में जिन पञ्चदेवों (ग्रहों) की और संकेत किया गया है उनमें मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये सभी माने गये हैं जहाँ ऋग्वेद में इन पाँच ग्रहों का संकेत पञ्चदेवों की ओर किया गया है जो पञ्चदेव यदाकदा आकाश में भ्रमण करते हुए दिखयी देते हैं इन्हीं पञ्चदेवों को यजुर्वेद में अनेक विशेषणों से

सम्बोधित किया गया है, और इन्हीं पञ्चदेवों का प्रथम बार मगल, बुध शनि आदि संज्ञाएँ पूर्ण रूप से अथर्ववेद में हमें दिखाई देती है यहाँ नवग्रहों का उल्लेख मिलता है। जिनमें चन्द्रमा, बुध, आदित्य(सूर्य), राहू, मृत्यु अर्थात शनि-केतु तथा रुद्र से मंगल और तिग्मतेजसः से गुरु एवं शुक्र की ओर संकेत किया गया है। विशेष रूप से बृहस्पति और शुक्रग्रह का वर्णन हमें तीनों वेदों में सामान रूप से मिलता हैं वेदाङ्ग ज्योतिष में हमें बृहस्पति के आधार पर बार्हस्पत्य सम्वत्सरों उल्लेख प्राप्त होता है वहीं अगर राहू और केतु ग्रह को देखें तो तीनों ऋग, यजु और अथर्ववेद में इनका अन्धकार स्वरूप माना गया है जो कि परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में छाया ग्रहों के रूप में स्वीकार किये जाते हैं, राहू को तीनों वेदों में स्वर्भानु नाम से सम्बोधित किया जाता हैं जो कि सूर्य को आच्छादित कर देता है यही सूर्य का आच्छादित हो जाना ज्योतिष की परिभाषा में राहू द्वारा सूर्य को ग्रसित कर लेना है जिसे ज्योतिष शास्त्र में सूर्यग्रहण की संज्ञा दी जाती है इस प्रकार से हमें तीनों वेदों में सामान रूप से ग्रहों का उल्लेख प्राप्त इससे यहाँ स्पष्ट हो जाता है कि वैदक ऋषियों को अवश्य ही ज्योतिषीय खगोल विद्या के ग्रह रूपी मूल पदार्थों का ज्ञान था। प्रस्तुत अध्याय में ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वर्णित ज्योतिषीय तत्त्वों यथा नवग्रहों के संक्षिप्त विवेचन के साथ साथ नक्षत्र, ऋतु, मास, अहोरात्र, दिशा तथा मुहुर्तादि के विषय में संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। वेदाङ्ग ज्योतिष तथा परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में विस्तार को प्राप्त होने वाले ज्योतिषीय तत्त्व तीनों वेदों में प्राप्त ज्योतिष विषयक तत्त्वों के आधार पर इनमें (ऋगज्योतिष, यजुर्वेद ज्योतिष, अथर्व ज्योतिष) तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करता हैं।

जब हम नक्षत्रों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में देखते हैं तो वहाँ हमें सभी सत्ताईस - अट्ठाईस नक्षत्रों का उल्लेख मिलता है। जहाँ ऋग्वेद में 34 प्रकार के ज्योतिष पिण्डों के विषय में 27 नक्षत्रों का संकेत मिलता है और वहाँ कुछ ही नक्षत्रों का उल्लेख किया जाता है। वही नक्षत्र जिनका संकेत ऋग्वेद में मिलता है उन सभी सत्ताईस नक्षत्रों की संज्ञा सहित यजुर्वेद में पूर्णरूप से उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ हमें नक्षत्रों का देवताओं के आधार पर तथा गति के आधार पर वर्गीकरण देखने को मिलता है जहाँ ऋग, यजुर्वेद में नक्षत्रों के अर्थो का प्रयोग मिलता है वहीं अथर्ववेद में अट्ठाईस नक्षत्रों के साथ साथ उनके मनवांछित फल की कामना करते हुए नक्षत्रों की स्तुति की गयी है। वहीं हमें नक्षत्रों के नामों में भी कुछ भेद देखने को मिलता है जहाँ ऋग्वेद में अघासु और अर्जुनी है वहीं अथर्ववेद में इनके स्थान पर मघासु तथा फाल्गुनी का प्रयोग

हुआ है ऋग्वेद के ' अर्जुनी ' का अथर्ववेद में ' फाल्गुनीषु ' शब्द में हुए परिवर्तन का समाधान शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट होता है। यहाँ वर्णन है कि फाल्गुनी नक्षत्रों का अर्जुनी नाम इन्द्र के गुप्त नाम पर पड़ा है। ये फाल्गुनी नक्षत्र इन्द्र के नक्षत्र हैं और इन्द्र का नाम अर्जुन भी है। जहाँ जहाँ ऋग्वेद में लगभग दस बार नक्षत्र शब्द का प्रयोग हुआ है वहीं अथर्ववेद में सम्पूर्ण दो सूक्तों में नक्षत्रों के देवता नक्षत्राणि है।

लगधकृत ऋग्याजुषवेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों का स्वरुप वैदिक नक्षत्रों से किंचित भिन्न है यहाँ नक्षत्रों के "जो" "द्रा" "खे" आदि रूप मिलते हैं जो कि नक्षत्रों के ही आदि मध्य तथा अन्त्य वर्ण हैं। जैसे आद्रा नक्षत्र के लिए द्रा शब्द का प्रयोग किया गया है (अश्विनौ) आश्वयुजौ के लिए "जौ" का प्रयोग किया गया इसी प्रकार यहाँ सभी नक्षत्रों का उल्लेख किया गया है जिनका यहाँ देवताओं के साथ उल्लेख प्राप्त होता है वहीं अथर्ववेदाङ्ग ज्योतिष में यद्यपि नक्षत्रों के नामों का उल्लेख नहीं मिलता तथापि इसमें सत्ताईस (27) नक्षत्रों के तीन तीन भाग करके उनकी नौ उपाधियों के नामों की चर्चा अवश्य की गई है सत्ताईस नक्षत्रों के क्रमशः नौ विभाग हैं - जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम्य, प्रत्वर, साधक, नैधन, मित्र तथा परमैत्र ये नक्षत्रों के 9 विभाग किये गए हैं। वहीं नक्षत्रों का जन्म, कर्म, आधानादि तथा उत्तम, मध्यम, अधम आदि वर्ग किये गये हैं और साथ ही साथ उनमें किये जाने वाले कार्यों अथवा प्राप्त होने वाले शुभाशुभ फलों का विवेचन किया गया है। वहीं एक नक्षत्र में होने वाले अनेक ताराओं का उल्लेख मिलता है यद्यपि अथर्व ज्योतिष में नक्षत्रों के नाम नहीं है परन्तु मूल अथर्ववेद संहिता में इनके नामों का उल्लेख अवश्य मिलता है जो अथर्व ज्योतिष का आधार है तात्पर्य यह है कि जो नक्षत्रों का वर्णन हमें ऋग यजुर्वेद ज्योतिष में मिलता है उन्ही नक्षत्रों का उल्लेख हमें अथर्व ज्योतिष में मिलता है अथर्ववेद में नक्षत्रों का फलित होने के कारण ये परवर्ती ज्योतिष ग्रन्थों में फलित का आधार बनते हैं।

28 नक्षत्रों के स्वरूप, प्रभाव, स्थिति, फल आदि का उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, वेदाङ्ग ज्योतिष एवं वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों के आधार पर किया गया है वैदिक - काल में वसन्त सम्पात कृत्तिका नक्षत्र में होता था इसलिए कृत्तिका प्रथम नक्षत्र था। नक्षत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया था। प्रथम देव नक्षत्र तथा दूसरा भाग यम नक्षत्र कहा जाता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखा गया है कृत्तिका से विशाखा तक 14 नक्षत्र देव नक्षत्र कहे जाते हैं तथा अनुराधा से भरणी तक 14 नक्षत्र यम नक्षत्र माने जाते

हैं। जहाँ यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता में सभी नक्षत्रों के देवताओं का उल्लेख मिलता है वहीं तैत्तिरीय ब्राह्मण में देवताओं की संज्ञाओं में अन्तर देखने को मिलता है। अथर्ववेद संहिता की बात करें तो यहाँ सभी नक्षत्रों के नामों के साथ साथ उनसे प्रार्थना और फल प्राप्ति की कामना की गयी है। इन सभी संहिताओं से नक्षत्रों के भिन्न रूप वेदाङ्ग ज्योतिष में देखने को मिलते हैं। जहाँ नक्षत्रों के देवता तो एक जैसे हैं परन्तु यहाँ नक्षत्रों का सांकेतिक रूप प्राप्त होता है। नक्षत्रों की आकृति के विषय में सभी नक्षरों में भिन्नता देखने को मिलती है क्योंकि सभी नक्षत्रों के ताराओं की संख्या अलग-अलग अलग है। ऋग, यजु, अथर्व एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में नक्षत्रों की तुलना की जाये तो वहाँ समानता अधिक देखने को मिलती है कुछ कुछ स्थानों में अन्तर देखने को मिलता है।

युग कालमान की एक ऐसी इकाई है जो सूक्ष्म और दीर्घ दोनों के लिए कही जा सकती है वेदों में हमें युग के लिए देवयुग, पितृयुग, मानुषयुग आदि का उल्लेख मिलता है। वहीं दिवस रात्रि के योग के लिए भी युग कहा गया है, कहीं पाँच, दश तथा सौ वर्षों की अवधि के लिए भी युग कहा गया है। वहीं ऋग्वेद में प्रयुक्त "त्रियुगम्" शब्द को सायणाचार्य ने अपने भाष्य में कृत, त्रेता तथा द्वापर इन तीन युगों के रूप में ग्रहण किया है साथ ही साथ वसन्त, वर्षा और शरद इन तीनों ऋतुओं के रूप में भी तीनों युगों का अर्थ ग्रहण किया है। वहीं अगर हम यजुर्वेद में देखें तो वहाँ भी ऋग्वेद के समान ही "पितरों के साथ साथ कृत, त्रेता तथा द्वापर हमारा रक्षण करें, इस प्रकार का उल्लेख है। यहाँ कृतादि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद में युगारम्भ जिस मास में, जिस पक्ष में तथा जिस तिथि को होता है उनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। वहीं दूसरी तरफ ऋग, याजुष एवं अथर्व ज्योतिष में पञ्चसंवत्सरात्मक युग पद्धति का उल्लेख प्राप्त होता है जो पहले से ही मूल ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्व में उल्लिखित हैं। इन्ही को बाद में महर्षि लगध द्वारा कालगणना का आधार बनाया गया। जहाँ मूल ऋग्वेद में केवल सम्वत्सरों का नामोल्लेख मिलता है वहीं मूल याजुष में देवताओं के आधार पर उन्ही पञ्च सम्वत्सरों का उल्लेख मिलता है इस प्रकार से तीनो ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में युगादि सम्वत्सरों का समान रूप से उल्लेख मिलता है जो एकदूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं।

तीनों मूल संहिताओं तथा वेदाङ्ग आदि ज्योतिष गन्थों में अयन का अर्थ गमनशील तथा चलना किया गया हैं। सभी में यह कहा गया है की जब सूर्य उत्तर की ओर गमन करता है तब उत्तरायण होता हो तथा

दक्षिण की ओर गमन करता है तब दक्षिणायन होता है। वहीं उत्तरायण को देवताओं का दिन माना जाता है और दक्षिणायन को पितरों का दिन माना गया है। वही दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि मानी गई है और उत्तरायण को पितरों की रात्रि मानी जाती है। ऋतु में भी वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा यह देवताओं की ऋतु मानी गई है। इन छः माह उत्तर में और शरद, हेमन्त तथा शिशिर यह पितरों या फिर असुरों की ऋतु में मानी गई है इनमें छः माह सूर्य दक्षिण में होता है। इस प्रकार तीनों वैदिक ज्योतिष ग्रन्थों का मत अयन के विषय में सामान है।

इस प्रकार से जब हम ज्योतिषीय तत्त्व ऋतु के विषय में देखते हैं तो ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद और यहाँ तक कि वेदाङ्ग ज्योतिष इन सभी में ऋतु विषयक कुछ बिन्दु एक ही लक्ष्य को इंगित करते हैं। और कहीं ना कहीं ऋतुओं का ज्ञान ऋग्वेद से प्रारम्भ होकर वेदाङ्ग तथा वेदाङ्गोत्तर ज्योतिष ग्रन्थों में अपना विस्तृत रूप प्राप्त करता है। जहाँ ऋग्वेद में ऋतु के अर्थ को एक निश्चित कालावधि के रूप में लिया गया है। वहीं यजुर्वेद में देखें तो वहाँ हमें "ऋतुवः" "ऋतुना" "ऋतुभिः" आदि शब्द कालवाची अर्थ में दिखाई देते हैं। और यही ऋतुवाची बहुवचनान्त शब्द हमें अथर्व में भी प्राप्त होते है। ऋतुओं आधार सूर्य तथा चन्द्र दोनों को माना गया है। जहाँ संहिताओं में सूर्य से ही सम्पूर्ण ऋतुचक्र परिभ्रमण करता है वहीं चन्द्रमा सभी ऋतुओं को एक साथ मिलाकर सम्वत्सर (वर्ष) को बांधे रखता है। सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित दोनों प्रकार की ऋतुओं के ज्ञान से हमारे वैदिक ऋषि भली-भांति परिचित थे और यही सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित वैदिक ऋतुएँ वेदाङ्ग काल में सौर ऋतु तथा चान्द्र ऋतुओं के नाम से प्रचलित हो जाती हैं और यहाँ हमें ऋतुओं का विधान नक्षत्रों के आधार पर भी देखने को मिलता है। जहाँ वेदों में ऋतुओं का मूल सूर्य की गति को बताया गया है वहीं वेदाङ्ग ज्योतिष में कहा गया है कि सूर्य के पूरे 4 नक्षत्रों और पञ्चम नक्षत्र के आधे भाग के भोग काल को सौर ऋतु कहते हैं। अर्थात सूर्य प्रतिदिन 1 अंश चलता है और एक नक्षत्र का मान 13 अंश 20 कला होता है। एक नक्षत्र में चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण का मान 13.20 होता है।

इस प्रकार - 13°20 + 13°20 + 13°20 + 13°20 + 6°40 = 60°00

60°00 नक्षत्र मान = 1 सौर ऋतु

सूर्य की दैनिक गति 1° अंश

इसी प्रकार, 60°00 अंश = 60 दिवस

इसी प्रकार 60 दिवसों का = 1 सौर ऋतु,

इस प्रकार से हम सौर ऋतुओं का मान ज्ञात कर सकते हैं।

वैदिक काल में 30 दिनों का एक मास ग्रहण किया जाता था। अगर हम ऋतुओं के (मुख) प्रारम्भ की बात करें तो सभी ऋग्वेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में वसन्त से ही ऋतुओं का आरम्भ माना जाता है परन्तु तैत्तिरीय का एक मन्त्र हैं ऋतु पात्र के दोनों ओर मुख हैं इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि ऋतु का मुख कौन सा है। इससे यहाँ ऋतुओं का प्रारम्भ कौनसी ऋतु से होगा इस विषय में शंका की गयी है।

यदि मास के विषय में विचार इन सभी वैदक संहिताओं और ज्योतिष ग्रन्थों में करें तो हम यही पायेंगे कहीं मल्मास है, कही अर्धमास, कही सौरमास, कही चन्द्रमास, कही नक्षत्रमास तथा कहीं सावन मास ही है। परन्तु ये सभी एक दूसरे के ही पूरक हैं और एक दूसरे से अभिन्न सम्बन्ध युक्त हैं। ऋग्वेद में देखा जाए तो वहाँ मास सूर्य तथा चन्द्र पर आधारित हैं। कहीं सूर्य को मासों का कर्ता बताया गया है कहीं चन्द्रमा के उन्नति अवनति के आधार पर तथा पूर्णिमान्त अमान्त के आधार पर मासों का निर्धारण किया गया है। परन्तु वहाँ मास काल के एक अवयव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ऋग्वेद में हमें मासों का ज्ञान केवल चन्द्र और सूर्य के द्वारा ही होता था। वहाँ मासों के नाम स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं थे परन्तु वेदों का कार्य यज्ञ विधानादि करना है। यज्ञ विधान आदि का विस्तृत कार्य हमें यजुर्वेद में प्राप्त होता है। इसलिए यागादि क्रियाओं को करने के लिए काल के अवयव रूपी मास की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पड़ी। जिसके कारण यजुर्वेद में मास केवल सूर्य और चन्द्र के नाम पर ही आधारित न हो करके उन सूर्य और चन्द्र के काल परिमाण को द्वादश भागों में विभक्त करके उनके मधु माधवादि नाम रखे गये जिनसे वे अलग-अलग मासों के नाम से प्रचलित हो गए। इन्ही द्वादश मासों के विषय में हमें पूर्व में ही ऋग्वेद में “द्वादश प्रधयश्च” और “द्वादशारं न हि तज्जराय” आदि मन्त्रों के द्वारा सूर्य द्वादश मासों का निर्माण सांकेतिक रूप में प्राप्त हो जाता है, जो धीरे-धीरे करके वेदाङ्ग काल में सौर मास चन्द्रमा मास नाम से प्रचलित हो जाते हैं। जिनके मूल बिन्दु वेदों में ही उल्लिखित हैं। वेदाङ्ग काल में चान्द्र और सौर के अलावा सावन और नाक्षत्र मासों का भी वर्णन किया गया है जो कि नक्षत्रों पर तथा सावन तिथियों पर आधारित हैं।

वेदों में हमें पक्ष का उल्लेख शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष के रूप में कहीं भी नहीं मिलता परन्तु वहाँ मासान्त के आधार पर पूर्वपक्ष और परपक्ष (उत्तरपक्ष) का उल्लेख अवश्य मिलता है वहीं दोनों पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष के दिवस और रात्रियों के नाम प्राप्त होते हैं। वेदों में उल्लेख है कि पूर्व पक्ष में देवता उत्पन्न हुए और अपर पक्ष में असुर उत्पन्न। वहीं मुहूर्त-पारिजात में शुक्ल पक्ष देव प्रदान होने से देवकर्मों में तथा कृष्णपक्ष पितरों के लिए मान्य होने के कारण कृष्णपक्ष में पितृकर्मों का विधान किया गया है। तात्पर्य यह हुआ कि शुक्लपक्ष में सभी प्रकार से शुभ कार्यों को किया जा सकता है और कृष्ण पक्ष में केवल पितृदेवों से सम्बन्धित पितृ कार्यों का विधान किया जा सकता है।

वेद-वेदाङ्ग ज्योतिष में मुहूर्त का बहुलता से प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में हमें "मुहूर्त" शब्द क्षणभर के अर्थ में मिलता है। अहोरात्र तीस मुहूर्तों वाला कहा गया है जिसमें पन्द्रह दिन के मुहूर्त तथा पन्द्रह रात्रि के मुहूर्त माने गये हैं। जहाँ हमें यजुर्वेद में अहोरात्र के तीस मुहूर्तों का वर्णन प्राप्त होता है वहीं हमें तीस मुहूर्तों के अवयव रूप में पन्द्रह प्रतिमुहुर्तों (क्षुद्रमुहूर्त) के नामों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। वहीं ऋग, याजुष ज्योतिष में आचार्य लगध ने मुहूर्त के परिमाण को कला, नाड़ी तथा घटी के द्वारा वर्णित किया है। अथर्व ज्योतिष में भी 15 दिवस तथा 15 रात्रि मुहूर्तों का उल्लेख किया गया है। यहाँ मुहूर्त के परिमाण का मापन सूर्य प्रकाश के द्वारा शङ्कु प्रमाण कहा गया है। शङ्कु अर्थात दण्ड, जब प्रातः सूर्योदय होता है तब समतल भूमि पर एक बारह अंगुल लम्बाई वाला शङ्कु को सीधा स्थापित करना चाहिए। जिसके परिणाम स्वरूप अथर्व ज्योतिष में वर्णित रौद्रादि दिवस के पन्द्रह मुहूर्तों को जाना जाता है। इस प्रकार से अथर्व ज्योतिष में मुहूर्तों की विधि बताई गयी है तीनों ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में मुहूर्त काल की सूक्ष्म इकाई के रूप में बताया गया है। जिसमें शुभ अशुभ मुहूर्तों का वर्णन किया गया है। माङ्गलिक कार्यों का विधान किया गया है। वेद-वेदाङ्ग ज्योतिष का मुख्य प्रयोजन यागादि कर्म करना जिसके लिए महर्षियों ने ऋग, याजुष, अथर्व ज्योतिष में सामान रूप से मुहूर्तों का विधान बताया है।

ऋग, यजुर्वेद, अथर्व वेद संहिता एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में प्रचुर मात्रा में गणनात्मक और कलात्मक रूप में संख्याओं का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को रथ चक्र के रूप में प्रस्तुत कर वहाँ अलग-अलग संख्याओं का उल्लेख किया गया है। पृथ्वी के अपारत्त्व के विषय में वर्णन प्राप्त होता है जहाँ की

गणितीय संक्रिया गुणज का प्रयोग किया गया है पृथ्वी को वहाँ इन्द्र के प्रभाव से 10 गुना छोटा बताया गया है। वही ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में हमें पुरुष के अंगों का लाक्षणिक रूप में सहस्त्र आदि संख्याओं का उल्लेख मिलता है और इस पृथ्वी से उस विराट पुरुष को दस अंगुल ऊपर बताया गया है। इस प्रकार से अनेकों उद्धरण हमें गणना के रूप में तथा संख्याओं के रूप में ऋग्वेद में प्राप्त होते हैं। वहीं जब यजुर्वेद में देखते हैं तो वहाँ हमें संख्याएँ सम्वत्सर के सन्दर्भ में, मास के सन्दर्भ में,ऋतुओं के सन्दर्भ में, तिथि के सन्दर्भ में तथा नक्षत्रों के सन्दर्भ में तथा कही आयु तो कही यज्ञों के सन्दर्भ में देखने को मिलता है। यजुर्वेद में ही हमें सम संख्याओं के रूप में, विषम संख्याओं के रूप में, अर्द्ध संख्याओं के रूप में, एक अंकात्मक द्विअंकात्मक तथा तीन अंकात्मक संख्याओं के रूप मे तथा गुणात्मक रूप में अनेक संख्याओं का उल्लेख मिलता है। वहीं दशमलव पद्धति, इकाई से लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्याओं का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार हम अथर्ववेद में देखे तो अथर्ववेद में भी हमें शतम्, सहस्त्र आदि संख्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है। यहाँ हमें ग्यारह का पहाड़ा विपरीत रूप में देखने को मिलता है। इस प्रकार से हमें तीनों संहिताओं में वैदिक गणना पद्धति का समान रूप से उल्लेख प्राप्त होता है जो कि वैदिक ज्योतिष का अद्वितीय भाग है।

वैदिक गणित का प्रथम स्वरूप काल गणना के रूप में वेदाङ्ग ज्योतिष में देखने को मिलता है। इसीलिए हमें ऋग ज्योतिष याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में अनेक गणितीय सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। वेदाङ्ग के तीनों ज्योतिष ग्रन्थों में हमें संकलन (जोड़), व्यकलन (घटा), गुणज (गुणा) तथा भाग आदि तथा त्रैराशिक नियम और उद्धरण प्रचुरता से देखने को मिलते हैं इन तीनों वेदाङ्ग ज्योतिष ग्रन्थों में हमें एक अंकात्मक, द्वि अंकात्मक तथा तीन अंको वाली संख्याओं का उल्लेख विशेष रुप से प्राप्त होता है। इन सभी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि तीनों वैदिक संहिताओं में वैदिक गणित ज्योतिष का समान रूप से उल्लेख किया गया है। वहीं वेदाङ्ग के तीनों ऋग, याजुष तथा अथर्व ज्योतिष ग्रन्थों में भी गणितीय प्रक्रियाओं का समान रूप से उल्लेख किया गया है। जिससे यह कहना उचित ही होगा कि तीनों ऋग ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष बाहरी आकृति एवं संज्ञा से तो भिन्न-भिन्न प्रतीत हो सकते हैं परन्तु उनके गहन अध्ययन उनके विश्लेषण तथा उनके विषयों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों ज्योतिष ग्रन्थ ग्रन्थ समान है। समान रूप से उनके विषय हैं। कदाचित ऋषियों तथा लेखकों के मत में

अन्तर हो सकता है परन्तु कुछ हद तक तीनों ज्योतिष ग्रन्थ एवं तीनों मूल वैदिक संहिताओं में ज्योतिषीय तत्त्व समान रूप से विद्यमान है। तथा एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

इस अध्याय में वर्णित वैदिक यज्ञों के विषय में ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा तत्सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों, सूत्रग्रन्थों एवं वेदाङ्ग (आर्च, यजुष एवं अथर्व) ज्योतिष, तीनों संहिताओं में प्राप्त यज्ञ परक क्रियाओं का ज्योतिषीय दृष्टिकोण से उल्लेख किया गया है। तीनों संहिताओं एवं वेदाङ्ग ज्योतिष में समान रूप से यज्ञ को प्रजापति तथा प्रजापति से उत्पन्न होने वाला और प्रजापति स्वरूप ही माना गया है। यहाँ श्रौत यज्ञों के विषय में मुख्य रूप से चर्चा की गई हैं। उन सभी श्रौत यज्ञ में अग्निचय, अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, अग्न्याधान, सोम यज्ञ, निरूढ पशुबन्ध, राजसूर् यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, दान आदि कर्म सभी श्रौत यज्ञों के विषय में तीनों वैदिक संहिताओं में यज्ञ का विधान ज्योतिषीय दृष्टि से किया गया है। प्रचुर मात्रा में इनके उद्धरण हमें संहिताओं में प्राप्त होते हैं। यहाँ तक की यज्ञों की संज्ञाएँ निश्चित नक्षत्रों के नामों पर, तिथियों के नामों पर, निश्चित मास, निश्चित सम्वत्सर, निश्चित पक्ष आदि के नामों पर रखा गया है। जिससे ऋग्ज्योतिष, याजुष ज्योतिष एवं अथर्व ज्योतिष में समान रूप से हमें यज्ञों का विधान देखने को मिलता है।

तीनों वेदों में प्रचलित, वैदिक-यज्ञ पद्धति के विषय में बताया गया है। इसमें श्रौत याग के तीनों- सोम यज्ञ, पाकयज्ञ तथा हविर्यग्य के विषय में बताया गया है। इन तीनों से इतर कुछ अन्य मुख्य यज्ञों के विषय में उल्लेख किया गया हैं जो ज्योतिषीय दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है उन सभी का यहाँ वर्णन किया गया है।

ऋग्वेद में यज्ञ में प्रज्वलित होने वाली अग्नि को मनुष्यों द्वारा तीन स्थानों पर प्रज्वलित करने वाला बताया है। जिनका सम्बन्ध तीन ऋतुओं से कहा गया है। वहीं ऋग्वेद में गार्हपत्य नामक अग्नि का वर्णन किया गया है जो ऋतुओं के साथ तीन प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करता है। वहीं तीनों सवनों प्रातः सवन, मध्यान्ह सवन एवं तृतीय सवन सोमरस निकालने के लिए बताया गया है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में जिन भी यज्ञों का विधान किया गया है उन सभी यज्ञों को किसी न किसी प्रकार ज्योतिषीय विधान के साथ जोड़ा गया है। कहीं यज्ञों को ऋतु के आधार पर, कहीं नक्षत्रों के

आधार पर, कहीं सूर्य - चन्द्रादि ग्रहों के आधार पर, कहीं दिशाओं के आधार पर और कहीं मुहूर्त आदि के आधार पर अनेक प्रकार से यज्ञों का विधान बताया गया है।

जैसे अग्न्याधान करने के लिए ज्योतिष विदित सात नक्षत्रों का उपयोग मिलता है। जिन सात नक्षत्रों में अग्न्याधान का विधान किया जा सकता है उनमें से कृतिका, रोहणी, मृगशीर्ष, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराभाद्रपद आदि नक्षत्रों को बताया गया है। वही वैदिक स्रोत यज्ञों में ऋतु के आधार पर चार वर्णों के लिए अलग-अलग ऋतु का विधान किया गया है। यथा ब्राह्मण के लिए वसन्त ऋतु में अग्नि आधान, क्षत्रिय के लिए ग्रीष्म ऋतु में अग्न्याधान, वैश्य के लिए वर्षा ऋतु में अग्न्याधान का विधान किया गया है।

वहीं अग्निहोत्र का सम्बन्ध अहोरात्र से बताया गया है और अहोरात्र के विषय में ज्योतिष से ज्ञान होते हैं। जैसे अग्निहोत्र प्रातः एवं सायंतन् दो बार सन्यासी को जीवन पर्यन्त करना चाहिए। अग्निहोत्र विशेष रूप से जो अनजाने में हुए पाप हैं उनके नाश के लिए किया जाता है। यथा प्रातः काल में अग्निहोत्र रात्रि कृत पापों की क्षीणता के लिए तथा सायंकाल में अग्निहोत्र दिन में किये गये पापों के क्षीणता के लिए बताया है। अग्निहोत्र का समय विशेष रूप से सन्धि काल में बताया गया है। जब प्रथम नक्षत्र तारा आकाश में दिखाई पड़े या रात्रि के प्रथम व द्वितीय प्रहर में या फिर प्रातः जब सूर्य के मण्डल का एक अंश दिखाई पड़े, जब सूर्य ऊपर आ चुका हो, इस प्रकार से गृहस्थ को सन्ध्या पूजा के उपरान्त ही अग्निहोत्र को करना चाहिए। ऐसा विधान अग्निहोत्रियों के लिए कहा गया है।

दर्शपौर्णमास यज्ञ का विधान ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद सभी में अत्यधिक उल्लेख प्राप्त होता है। पौर्णमास यज्ञ का विधान पूर्णमासी तिथि के आधार पर तथा दर्श यज्ञ का विधान अमावस्या के आधार पर किया गया है। इन्ही पूर्णमासी और अमावस्या दोनों ही तिथियों का ज्योतिष में विशेष महत्त्व है। वही वेदों में चातुर्मास यज्ञ के लिए सम्वत्सर का सम्बोधन किया गया है। वर्ष में तीन बार यज्ञ करने से तात्पर्य है कि जो वर्ष में तीन बार यज्ञ किया जाए वही चातुर्मास यज्ञ है। जिसे एक सम्वत्सर रूपी यज्ञ कहा जाता है। सम्वत्सर अर्थात एक वर्ष, एक वर्ष (सम्वत्सर) में बारह मास होते हैं। चार-चार मास में एक-एक यज्ञ होने से उन्हें चातुर्मास तथा एक संवत्सरात्मक यज्ञ माना जाता है।

वैदिक श्रौत सूत्रों के अनुसार अग्निष्टोम प्रत्येक वर्ष के वसन्त ऋतु में अमावस्या या फिर पूर्णिमा के दिन किया जाता है।

श्रौत सूत्रों में राजसूय यज्ञ का विधान है। यह फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में प्रथम दिन किया जाता है जिसमें यजमान पवित्र नामक सोम यज्ञ के लिए दीक्षा लेता है। यह यज्ञ अग्निष्टोम की विधि के समान ही किया जाता है। वही ज्योतिष के आधार पर अश्वमेध यज्ञ के विषय में भी वैदिक श्रौत सूत्रों में अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं। अश्वमेध यज्ञ को फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष के आठवें दिन या जेष्ठ मास के इन्हीं दिनों अथवा आषाढ़ मास के दिनों में अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ किया जाना चाहिए ऐसा कहा गया है।

अन्य स्थान पर चैत्र मास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ को प्रारम्भ करने का विधान भी बताया गया है। वहीं संहिताओं में ज्योतिष विदित दिशाओं के आधार पर यज्ञों का विधान मिलता है। दिशाओं के लिए कहा गया है कि यह दिशाएँ अग्निहोत्र यज्ञ की परिधि हैं। जब यजमान अग्निहोत्र करता है तो उसका मुख उत्तर की ओर होता है। अश्वमेध को करने वाला यजमान सभी दिशाओं को जीतने वाला बताया गया है। वही वाजपेय यज्ञ के द्वारा प्रजापति को ऊर्ध्वा दिशा की और प्राप्त होने वाला बताया गया है। इसी प्रकार अनेक याज्ञिक क्रियाओं के विषय में भी दिशाओं को आधार माना गया है। जैसे पूर्वाभिमुख होकर वेदी बनाई जानी चाहिए, उत्तर एवं पूर्व दिशा की ओर अश्व हवि, पश्चिम दिशा में गोमृग हवि तथा दक्षिण दिशा में पशु हवि रखने के लिए कहा जाता है। वहीं यज्ञ में जितने ऋत्विजों का वर्णन आता है उन ऋत्विजों का विधान भी दिशाओं के आधार पर किया गया है। जैसे जहाँ पूर्व दिशा है वह "होता" है, दक्षिण को ब्रह्मा, पश्चिम को अध्वर्यु तथा उत्तर उद्गाता कहा गया है। इस प्रकार से दिशाओं के आधार पर यज्ञ के अनेक विधान देखने को मिलते हैं जो कि ज्योतिष की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक पाकयज्ञों में किए जाने वाले गृह कृत्य भी ज्योतिषीय नक्षत्रों के नामों से सम्बोधित किए जाते हैं। जो कि हमें वैदिक श्रौतसूत्रों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। उनमें से चैत्री गृह कृत्य चित्रा नक्षत्र के आधार पर, चैत्र मास की पूर्णिमा को होता है। वहीं श्रावणी अथवा श्रवणा कृत्य यह श्रावण मास में किया जाने वाला कर्म है। यह श्रावण पूर्णिमासी को सम्पादित किया जाता है। वही अन्य अश्वयुजी नामक गृह कृत्य गौतम ने अपने 40 संस्कारों के अन्तर्गत सात पाक यज्ञों को माना है उन्हीं साथ पाक यज्ञों में आश्वयुजी कृत्य

की गणना भी की गयी है। अश्वयुज अर्थात अश्विनी नक्षत्र, अश्वयुज का आयोजन आश्विन मास में पूर्णिमा को किया जाता है। इस प्रकार से ऋग, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद इन तीनों के श्रौत सूत्रों के आधार पर तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर यहाँ यज्ञों का उल्लेख किया गया है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों एकमत होकर यज्ञों का विधान करते हैं परन्तु कहीं-कहीं ऋषियों के मत में अन्तर देखने को अवश्य मिलता है। तीनों वेदों में ज्योतिषीय दृष्टिकोण से जो विश्लेषण किया गया है उसके आधार पर स्थूल एवं सूक्ष्म रूप में तीनों वेदों में प्राप्त ज्योतिषीय तत्त्व एक समान वैदिक कृत्यों का विधान करते हैं।